सहायक ग्रन्थों की सूची

लेखक	ग्रन्थ
श्री राहुल सांकृत्यायन	१. विश्व की रूप-रेखा
,,	२. मानव समाज
,,	३. दर्शन दिग्दर्शन
प्रो० रामेश्वर गुप्ता	४. मानव की कहानी
श्री जयचन्द्र विद्यालंकार	५. इतिहास प्रवेश
संस्कृत वाङ्मय के सहायक ग्रंथ	६. उपनिषदें—तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक
,,	७. वैशेषिक दर्शन
,,	८. प्रशस्तपाद भाष्य (वै० दर्शन)
,,	९. सर्वदर्शन-संग्रह
,,	१०. ऋग्वेद संहिता
,,	११. महाभारत
,,	१२. कौटल्य अर्थशास्त्र
श्री यशपाल	१३. मार्क्सवाद
श्री योगेन्द्रनाथ गुप्त	१४. शिशु-भारती (बंगला)
(ब्रिटिश ऐण्ड फारेन बाइबल सोसायटी, इलाहाबाद)	१५. बाइबल (हिन्दी)
D. N. Paul	१६. The Hindu Philosophy
Arthur Mee	१७. Book Of Knowledge
H, G. Wells	१८. The Outline Of History
,,	१९. A Short History Of the World
S. A. Dange	२०. India, From Primitive Communism to Slavery
Lincoln Barnett	२१. The Universe an Dr. Einst

मानव

(उत्पत्ति, स्थिति और विकास)

❀

बलभद्र ठाकुर

❀

ग्रामोत्थान विद्यापीठ
संगरिया (राजस्थान)

ज्ञानके प्यासे बालकों को
सस्नेह—

लेखककी अन्य कृतियाँ

(मौलिक)

१. भूमिका		उपन्यास
२. पुनर्जन्म		"
३. राधा और राजन		"
४. देवताओंके देशमें	(प्रेसमें)	"
५. अंडमन-निकोबारकी झाँकी	"	यात्रा
६. बोलती रेखाएँ	"	संस्मरण

(अनुवादित)

१. गृहदाह	(उपन्यास)	बंगलासे
२. दत्ता	"	"
३. चरित्रहीन	"	"
४. श्रीकांत	"	"
५. बिंदूका बच्चा	(कहानी)	"
६. कप्तानकी कन्या	(उपन्यास)	रूसीसे
७. निराश प्रणयी	"	"
८. रूसी कहानियाँ	"	"
९. विश्व-नागरिक गाँधी	(जीवनी)	अंग्रेजीसे

(संगृहीत व संपादित)

१. अफ्रीका महाद्वीप और उसके निवासी (प्रेसमें)
२. अमेरिका " " " " "
३. राष्ट्रभाषा-प्रचार-सर्वसंग्रह
४. भारतीय वाङ्मय

दो शब्द

विद्वानों का अनुमान है कि आज से लगभग दो अरब वर्ष पहले पृथ्वी उत्पन्न हुई और लगभग पाँच लाख वर्ष पूर्व मनुष्य। इस लम्बी अवधि में परिवर्तन का प्रवाह निरन्तर जारी रहा; आज भी जारी है; और सदा जारी रहेगा। दो अरब वर्ष पूर्व जिस रूप में पृथ्वी उत्पन्न हुई थी, आज उसका रूप वही नहीं है। बड़ा परिवर्तन हुआ है, और होता जा रहा है। पृथ्वी के हर प्राणी, हर वस्तु इस परिवर्तन के नियम से बँधे हुए हैं। मनुष्य भी इस नियम का अपवाद नहीं है।

विद्वानों की खोज और शोध ने यह सिद्ध कर दिया है कि पाँच लाख वर्ष पहले के मनुष्य और आज के मनुष्य में बड़ा अन्तर है। इतनी दूर की बात तो दूर, कुछ हजार वर्ष पहले के और आज के मानव में जो विशाल अन्तर आ गया है; आचार, विचार और व्यवहार में जो कोसों की दूरी दिखाई दे रही है, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। और यह तो हम सबों के सामने प्रतिदिन घटित होने वाली बात है कि किस प्रकार मानव-समाज आज परिवर्तन की तीव्र तरङ्गों से खेलता हुआ नई दिशाओं, नये मार्गों और नये तौर-तरीकों की ओर बढ़ता जा रहा है, बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। तात्पर्य यह कि परिवर्तन और निर्माण जगत् का अकाट्य नियम है।

इस छोटी-सी पुस्तक में मानव-समाज के लाखों वर्षों के परिवर्तन और निर्माण की कहानी है। विद्वानों ने अनेक प्रकार से इस कहानी को कहने की कोशिश की है। यह बड़ी लम्बी कहानी है, बड़ी रोचक भी। मेरा प्रयत्न रहा है कि विभिन्न विद्वानों द्वारा कही हुई इस लम्बी कहानी को बिल्कुल छोटी बनाकर आपके सामने पेश किया जाय, ताकि बड़ी आसानी

से, थोड़े समय में, थोड़े श्रम से इस कहानी के हर आवश्यक अंग की संक्षिप्त जानकारी आप प्राप्त कर सकें।

मैट्रिक तक के छात्रों और पढ़े-लिखे लोगों को ध्यान में रखकर यह पुस्तक लिखी गई है। यथासंभव भाषा को सरल और शैली को सुबोध बनाने की कोशिश की गई है।

इस पुस्तक को तैयार करने में जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है उनके लेखकों एवं प्रकाशकों का मैं परम कृतज्ञ हूँ। उन सबकी सूची पुस्तक के आरंभ में दे दी गई है।

अन्त में मैं "ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया" के संचालक स्वामी केशवानन्दजी महाराज का भी परम आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा एवं दी हुई सुविधा से इस पुस्तक की रचना की जा सकी है।

ग्रामोत्थान विद्यापीठ,
संगरिया (राजस्थान)
१५-४-५२

—बलभद्र ठाकुर
(साहित्याचार्य, सर्वदर्शन-शास्त्री)

मानव

(उत्पत्ति, स्थिति और विकास)

विषय-सूची

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

सृष्टि के सम्बन्ध में दार्शनिक और धार्मिक मान्यताएँ

चौथा अध्याय

ादि मानव

पाँचवाँ अध्याय

मानव की चेतना और संस्कृति का क्रमिक विकास

छठा अध्याय

मानव-समाज के विकास की ऐतिहासिक धारा

सातवाँ अध्याय

पृथ्वी और उसके मूल तत्त्व

[१]

यह पृथ्वी, जिसपर हम रहते हैं :—

हम पृथ्वी के प्राणी हैं। इसके ऊपरी रूप को हम आँखों से देखते हैं। बड़े-बड़े पहाड़; ऊँची-ऊँची चोटियाँ; झरने, झील, सरोवर और नदियाँ; कोसों तक फैले लहलहाते मैदान और दूर-दूर तक चिल-चिलाते रेगिस्तान; समुद्र की लहराती अपार नीली जल-राशि व उसके द्वीप और महाद्वीप यह सब पृथ्वी है। इन सबको हम पृथ्वी कहते हैं। किन्तु वास्तव में यह पृथ्वी है क्या चीज ? कैसे, कहाँ से आई ? इसका स्वभाव क्या है, स्वरूप क्या है ? इसके बनाने वाले मूल तत्त्व क्या हैं ? इसके बने या उत्पन्न हुए कितने वर्ष बीत चुके ?—इत्यादि प्रश्न मनुष्य के मन में तब से चकराने आरम्भ हुए जबसे उसमें चेतना का, सोचने और समझने का माद्दा उत्पन्न हुआ। मनुष्य जब पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ, भय और आश्चर्य की आँखों से अपने आस-पास की चीजों को वह देखने लगा। पीढ़ी-दर-पीढ़ी हजारों वर्षों तक वह भय, आश्चर्य, भूख, प्यास, और नींद की स्थिति से ऊपर नहीं उठ सका। लेकिन पृथ्वी के अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य में एक विशेष गुण-धर्म है सोचने और समझने का माद्दा। सो, उसने अन्य अनेक विषयों की तरह इस पृथ्वी के सम्बन्ध में भी सोचना आरम्भ किया। शुरू-शुरू में उसने इस पृथ्वी को चिपटी कहा; चौरस कहा; स्थिर, अनन्त और अनादि भी कहा। ईश्वर की सत्ता का विश्वास दृढ़ होने पर इसे ईश्वर की बनाई हुई भी माना। शेषनाग की फण पर; कछुए, या हाथी की पीठ पर टिकी हुई भी बताया। ९६२

इस सम्बन्ध में संसार के विभिन्न देशों की पौराणिक कल्पनाओं और मान्यताओं के बारे में कुछ बता देना अप्रासंगिक न होगा—

भारतवर्ष के पौराणिक मत के अनुसार चार, आठ अथवा दस हाथियों के दाँतों के ऊपर यह पृथ्वी टिकी हुई है और ये हाथी एक कछुए के पीठ पर खड़े हुए हैं। इसी कछुए को भगवान का कच्छप-अवतार माना गया है। और यह कछुआ समुद्र में बैठा या तैरता रहता है। और यह पृथ्वी थाली के समान आकार में गोल और चिपटी है। और इस पृथ्वी के ऊपर ठीक बीच में 'सुमेरु' नाम का पर्वत है। इसी सुमेरु पर्वत पर स्वर्ग बसा हुआ है जहाँ इन्द्र आदि देवताओं का निवास है। और
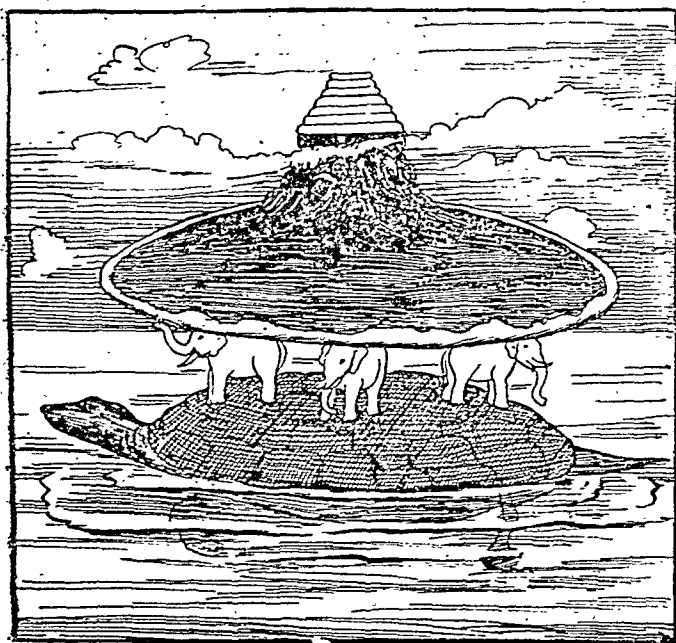
पृथ्वी के सम्बन्ध में भारत की पौराणिक मान्यता

सूर्य अपने सात घोड़ों वाले रथ पर सवार होकर प्रतिदिन इसी सुमेरु के चारों ओर चक्कर लगाया करता है। इसके अलावा भारतीय पुराणों का एक दूसरा मत यह भी है कि यह पृथ्वी कछुए या हाथियों के दाँत पर स्थित न होकर सहस्र फणा वाले शेषनाग की फणों पर टिकी हुई है।

किन्तु प्राचीन मिस्र देश के लोगों की इस सम्बन्ध में कुछ और ही मान्यता थी। उन्होंने मान रखा था कि पृथ्वी-देवता चित्त होकर सोया हुआ है और उसके ऊपर आकाश-देवी गोल-मटोल हो, औंधे मुँह-सी होकर बैठी हुई है। और सूर्य-देवता नाव पर बैठकर आकाश-देवी की पीठ पर से पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र को जाकर पृथ्वी-देवता के सिरहाने जा पहुँचता है। फिर पृथ्वी-देवता अपना हाथ बढ़ाकर सूर्य को खींचकर पूर्वाचल पर्वत के शिखर पर ले आता है। वहाँ से वह (सूर्य) फिर नाव पर सवार
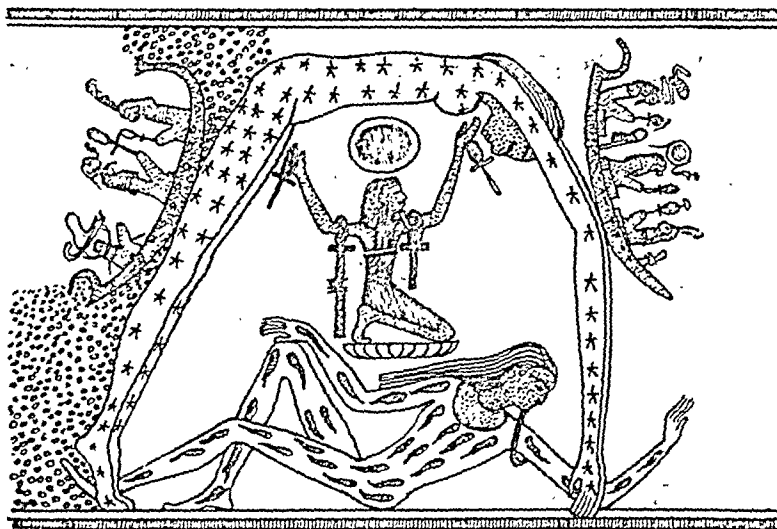
पृथ्वी के सम्बन्ध में मिश्र की पुरानी मान्यता

होकर पूर्व समुद्र को पार करता है। और किनारे पहुँचकर आकाश-देवी की पीठ पर चहल-कदमी करने लगता है।

लेकिन इस सम्बन्ध में प्राचीन युनान की पौराणिक कल्पना बिल्कुल भिन्न थी। उनके मत से युनान (ग्रीक) देश और भूमध्य-सागर पृथ्वी के ठीक बीच में हैं। और पृथ्वी चारों ओर से अटलांटिक महासागर से घिरी हुई है। युनान के उत्तर में 'ओलिम्पस' नामक पर्वत पर युनान का प्रधान देवता 'जुपीटर' दूसरे देवताओं के साथ निवास करता था। और इसी जुपीटर की आज्ञा से सूर्य-देवता (अपोलो) रथ पर सवार होकर प्रतिदिन आकाश का चक्कर लगाकर फिर वापस आता था। वह इतना थक जाता कि थकावट दूर करने के निमित्त अटलांटिक महासागर में वह गोते लगा देता। और जब तक वह पानी के भीतर गोते लगाये रहता तब तक रात रहती, और जब तक आकाश का चक्कर लगाता, तब तक दिन रहता।
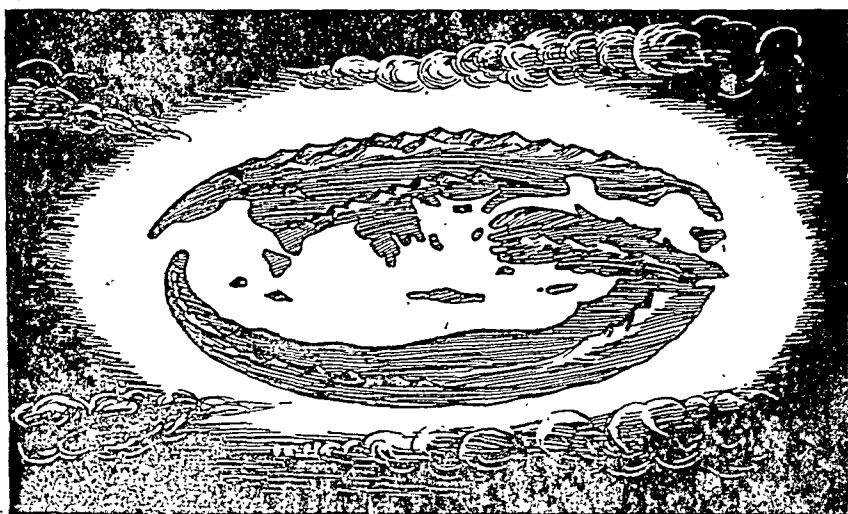
पृथ्वी के सम्बन्ध में प्राचीन युनानियों की कल्पना

इस प्रकार की धारणाएँ और मान्यताएँ पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों और देशों में हजारों वर्षों तक जारी रहीं, और आज भी बहुत कुछ जारी हैं। लेकिन मनुष्य का मस्तिष्क भी अपना सोचना जारी रखता है। समय-समय पर मनुष्य-समाज में विशेष प्रकार की प्रतिभाएँ पैदा होती रहीं जो सत्य के रहस्यों को ढूँढने में लगी रहीं। अन्त में इन खोजी विद्वानों ने निश्चित किया कि यह पृथ्वी गोल है, गतिशील है। पृथ्वी की गोलाई और गति-शीलता का यह सिद्धांत आरंभ में लोगों को खटका, इस पर बहुत वाद-विवाद हुए, लेकिन अन्त में विद्वानों ने इस मत को मान लिया।

इस सिद्धांत के मान्य बन जाने के बाद भी इस सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धान होते रहे। ठीक है,—यह पृथ्वी गोल है, चलती भी है। लेकिन इस गोलाई का विस्तार कितना है, वजन कितना है, उसकी चाल में तेजी कितनी है, वह कैसे किस प्रकार चला करती है, उसका स्वभाव क्या है, धर्म क्या है? इत्यादि प्रश्नों पर भी काफी खोज और शोध हुए हैं। अब तक की इन खोजों और शोधों के आधार पर यह माना जाता है कि यह पृथ्वी गोल है, पूरी गोल नहीं बल्कि दोनों सिरों पर नारंगी-सी, जरा चिपटी-सी है। इसका व्यास (फैलाव) लगभग ८ हजार मील है और घेरा लगभग २५ हजार मील और वजन है करीब १७० हजार शंख मन। इसी से इस पृथ्वी की विशालता का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि इसका कुल क्षेत्रफल—१६ करोड़ ६६ लाख ४० हजार वर्गमील है जिसमें एक चौथाई भाग जमीन है, और शेष तीन चौथाई भाग जल। लेकिन इससे भी अधिक आश्चर्य-कारक है इसकी चाल की रफ्तार, अर्थात् प्रति घण्टे ६५ हजार मील की चाल से यह पृथ्वी अपने पथ पर दौड़ा करती है! पृथ्वी के दौड़ने का यह रास्ता सूर्य के चारों ओर अंडे के आकार का है।

इस रास्ते को 'पृथ्वी की कक्षा' कहा जाता है। इस सारी कक्षा को पार करने में उसे ३६५ ¼ दिन लग जाते हैं। यही हमारा वर्ष है, अर्थात् जितने समय में पृथ्वी अपनी कक्षा पर सूर्य की एक परिक्रमा पूरी कर लेती है, उतना समय हमारा वर्ष माना जाता है। लेकिन यह पृथ्वी अपने पथ पर रेल गाड़ी की तरह सीधी दौड़ नहीं लगाती बल्कि अपनी धुरी पर लट्टू की तरह स्वयं घूमती भी रहती है। यह घूमने की चाल भी बड़ी ही तेज है। १०४० ½ मील प्रति घंटे की चाल से इसे एक चक्कर पूरा करने में पूरे २४ घण्टे लग जाते हैं। अपनी धुरी पर घूमते और कक्षा पर दौड़ते समय पृथ्वी का जितना भाग सूर्य के सामने पड़ता है वहाँ उस समय दिन रहता है और जितना भाग सूर्य से ओझल रहता है वहाँ रात रहती है। तात्पर्य यह हुआ कि दिन, रात और वर्ष के बनाने में जहाँ पृथ्वी की चाल का बड़ा हाथ है वहाँ सूर्य भी एक मुख्य और प्रबल कारण है। फिर प्रश्न उठता है कि--

यह सूर्य क्या है? :—

इस सूर्य को हम प्रतिदिन देखा करते हैं। प्रातःकाल पूर्व दिशा में अपनी लाल-लाल किरणें बिखेरता हुआ जब वह एकाएक क्षितिज के छोर पर प्रकट होता है, और धीरे-धीरे अपनी लाली को समेटता, आकाश पर चढ़ता अपनी रूपहली किरणों से संसार को स्वच्छ बना छोड़ता है, और फिर जब संध्या को पश्चिम दिशा में अपनी लाली को फैलाता हुआ एकाएक क्षितिज में छिप जाता है, कितना मनोहर और मनभावन होता है वह दृश्य! सूर्य हमें दीखता है एक गोल-गोल चमकीली छोटी-सी चीज। फिर यह कैसे सम्भव है कि इस छोटी-सी चीज के इर्द-गिर्द पृथ्वी जैसी विशाल वस्तु चक्कर काटे, जबकि स्वयं पृथ्वी भी ऊपर से

गतिहीन ही प्रतीत होती है? लेकिन यह तो हुआ हमारी वाहर की आँखों का अंदाजा, और इन वाहर की आँखों का अन्दाजा भी तभी सही होता है जब उन्हें भीतर की—मस्तिष्क की—आँखों का सहयोग प्राप्त हो। मनुष्य के मस्तिष्क ने सोचा, विचारा और नये-नये यंत्रों का आविष्कार किया। ये यन्त्र मानो मनुष्य के मस्तिष्क की आँखें हैं, जिनके द्वारा वस्तुओं के विशाल-से-विशाल और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रहस्यों का पता लगाने में वड़ी सहायता मिली है। इन यंत्ररूपी नेत्रों की गति इतनी तेज है, इनकी पहुँच इतनी दूर है जहाँ कि इन वाहरी आँखों की पहुँच की आशा ही नहीं की जा सकती।

यह सूर्य, जो हमें आकाश में चलता हुआ एक छोटा-सा पिंड दिखाई देता है, वास्तव में छोटा पिंड नहीं है। वल्कि इतना विशाल है कि हमारी इस विशाल पृथ्वी से भी १३ लाख-गुना वड़ा है। पृथ्वी से अत्यन्त दूर होने के कारण ही वह अत्यन्त छोटा दिखाई देता है। क्योंकि हमारे इन चर्म-चक्षुओं में इतना सामर्थ्य नहीं कि उसके द्वारा हम दूर की चीजों के सही आकार-प्रकार का सही पता लगा लें। यन्त्र की आँखों से वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि इस सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से लगभग सौ-गुना वड़ा है। यह सूर्य आग का धधकता हुआ एक भयानक गोला है। इसके ताप का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि इसकी किरणें ६ करोड़ ३० लाख मील दूर से चलकर पृथ्वी पर पहुँचते-पहुँचते हमारे लिए गर्मियों में असह्य वन जाती हैं। वह पृथ्वी से भी तेज चला करता है। पृथ्वी की ही तरह सूर्य की भी एक निश्चित कक्षा है जिस पर वह ६७ हजार मील प्रति घण्टे की चाल से चला करता है। वह दिन-रात, हर घड़ी, हर पल दौड़ता रहता है। न वह साँस लेता है, न विश्राम। और इस दौड़ने में उसके कई दूसरे साथी हैं जो अथक-अटूट गति से उसके

पीछे-पीछे भागते रहते हैं। सूर्य के इन साथियों को 'ग्रह' कहा जाता है। पृथ्वी भी इन ग्रहों में से एक है।

पृथ्वी और अन्य ग्रहों की उत्पत्ति :—

लेकिन अब प्रश्न उठता है कि सूर्य के ये साथी ग्रह कहाँ से, कैसे आ गये? वे क्यों कर पृथ्वी के पीछे भागने लगे? उनके नाम क्या हैं? उनके रूप क्या हैं? सो, इस सम्बन्ध में भी वैज्ञानिकों ने पता लगाया। उन्होंने बताया कि सूर्य भी एक तारा है। इस विशाल आकाश में सूर्य की तरह के अरबों-खरबों दूसरे तारे हैं। वे भी अपनी कक्षा में उसी प्रचंड गति से चला करते हैं जिस गति से सूर्य अपनी कक्षा में। अनुमान है कि अब से लगभग दो अरब वर्ष पूर्व, संयोग से कोई एक बहुत बड़ा तारा सूर्य के निकट से गुजरा। उसकी गति बड़ी ही प्रचण्ड थी। उसके झोंके से सूर्य के पिण्ड में खलबली पैदा हो गई, तेजकी तरंगें उठ खड़ी हुई। जिस प्रकार पूर्णिमा की रात को पूर्ण-चन्द्र के आकर्षण से समुद्र में ज्वार की तरंगें उठा करती हैं वैसी ही दशा इस समय इस धधकते हुए सूर्य-पिण्ड की भी हो गई। फलस्वरूप सूर्य-पिण्ड में से छलक-छलक कर आग के दहकते गोले उसके इर्द-गिर्द बिखर पड़े। वह तारा अपने रास्ते चला गया, किन्तु सूर्य के पेट से निकले हुए वे गोले सूर्य के ही चारों ओर चक्कर काटने लगे। क्योंकि सूर्य की गति इतनी तेज है कि उसके वेग की चपेट में बँधकर वे सब-के-सब आज भी उसी प्रकार सूर्य की परिक्रमा करते जा रहे हैं। इन्हीं चक्कर काटते टुकड़ों को 'ग्रह' कहा जाता है। इन्हीं में से पृथ्वी भी एक है। अब तक ऐसे नौ ग्रहों का पता लग चुका है। उनके नाम हैं—पृथ्वी, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, वारुणी (इउरेनास), वरुण (नेपचून) और यम (प्लूटो)। बृहस्पति इनमें सब से बड़ा है, मंगल सबसे छोटा और पृथ्वी मझोले माप की है।

सौर-परिवार :—

तो, इससे निश्चित हुआ कि सूर्य ही सब ग्रहों का जनक है, इस पृथ्वी का भी। लेकिन सबका जनक स्वयं यह सूर्य कैसे पैदा हुआ, कहाँ से आया? इसके पैदा हुए कितने वर्ष बीत चुके? इत्यादि प्रश्नों के समाधान के प्रयत्न भी वैज्ञानिकों ने किए हैं। उनका कहना है कि आकाश में भाप के रूप में अनेक बड़े-बड़े पिण्ड बिखरे पड़े हैं। इसी किसी एक पिण्ड में से किसी एक समय किसी एक घटना के वश यह सूर्य भी बाहर आगया। सम्भव है उस घटना के घटित हुए पाँच अरब वर्ष बीत चुके हों। लेकिन यह सब अनुमान ही अनुमान है। अभी निश्चित रूप से कुछ निर्णय नहीं किया जा सका है। यह सूर्य एक बड़े परिवार का सदस्य है। घोर अन्धेरी रात में आकाश के बीचों-बीच तारों का एक घना-लम्बा रास्ता-सा बना दिखाई देता है। मानो आकाश के घने-नीले
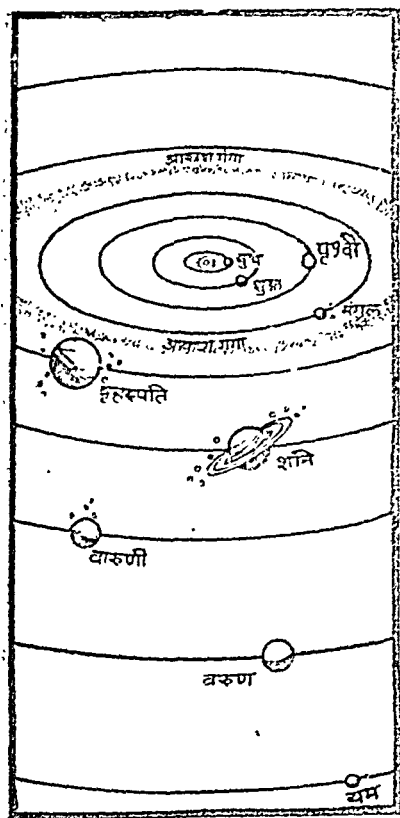
सौर-परिवार

पट पर किसी ने बड़े तरतीब से स्वच्छ बालू के चमकीले दाने बिखेर दिए हों। इसे 'आकाश-गंगा'(Milky-way) कहते हैं। यह 'आकाश-गंगा' अरबों-खरबों नक्षत्रों (तारों) का एक झुंड है, एक मण्डल है। हमारा यह सूर्य इसी नक्षत्र-मण्डल का एक सदस्य है। इसे ही 'सौर-परिवार' (सूर्य का परिवार) कहते हैं। अनुमान है कि आकाश में ऐसे अरबों-खरबों नक्षत्र-मंडल हैं और एक-एक नक्षत्र-मंडल एक-दूसरे से अरबों-खरबों मील दूर है। सोचिए कि कितना बड़ा विशाल है यह आकाश!

पृथ्वी का उपग्रह चन्द्रमा :—

यह आकाश बड़ा विशाल है। इतना विशाल कि बुद्धि की पहुँच से बाहर। इसके अरबों-खरबों असंख्य नक्षत्रों में से कुछ का ही सही पता वैज्ञानिक अब तक लगा पाए हैं। हमने ग्रहों के बारे में कुछ कहा और इनके जनक सूर्य के बारे में भी। लेकिन आकाश पर विचरने वाले पिंडों में जो हमारा सब से समीपी है, पड़ोस में है, जो सबको प्रिय लगता है, अपनी स्वच्छ-सफेद किरणों से रात की कालिमा धो-धो कर सारी दुनिया पर अमृत की वर्षा करता है; अब उसके बारे में कुछ जानिए। उसे हम चन्द्रमा कहते हैं। जिस प्रकार हम सब पृथ्वी के पुत्र हैं, उसी प्रकार यह चन्द्रमा पृथ्वी का लाड़ला है। जिस प्रकार सूर्य के पेट में खलबली पैदा होने से उसमें से पृथ्वी और अन्य ग्रह बाहर छलक आए, उसी प्रकार किसी समय पृथ्वी के पेट में विक्षोभ होने के कारण उसमें से चन्द्रमा बाहर निकल आया। चन्द्रमा का पिण्ड पृथ्वी के पिण्ड का पाँचवाँ हिस्सा है और उसका व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग एक चौथाई है, अर्थात् २२०० मील। वह पृथ्वी से २ लाख ३८ हजार ८४० मील दूर है। वैज्ञानिकों ने दूरबीन से चन्द्रमा को देखकर बताया है कि न वहाँ हवा है,

न बादल, न किसी प्रकार के जीव ही। लेकिन भविष्य में इस चन्द्रलोक की सैर करने की बात भी सोची जाने लगी है। वहाँ तक उड़ान के लिए एक नए ढंग का विमान बनाने की बात भी की जा रही है। और कुछ अतिशय उत्साही लोग तो अभी से उस 'विमान' में अपने-अपने स्थान भी सुरक्षित कराने लग पड़े हैं।

पर्वत और समुद्र :—

हाँ, तो अब तक हम दूर की बातें करते रहे। अब हमें नजदीक की बातें करनी हैं—इस पृथ्वी पर की बातें। हम में से बहुतों ने इस पृथ्वी पर सैकड़ों-हजारों मील तक फैले बड़े-बड़े पहाड़ों को, ऊँची-ऊँची चोटियों को देखा होगा, और बहुतों को यह सौभाग्य भी प्राप्त है कि वे पहाड़ी प्रदेशों में ही पैदा हुए हैं। उन में बहुतों ने जीवन में कभी मैदानी इलाका देखा भी नहीं है। दिन-रात उनकी नजरों के सामने ऊँचे पहाड़ और ऊँची चोटियाँ रहा करती हैं। और इसी प्रकार हम में से बहुतों ने समुद्र देखा होगा; समुद्र के किनारे जन्म लिया होगा; दिशाओं के ओर-छोर तक लहराता हुआ जल का वह नीला विस्तार देखा होगा; उसकी ऊँची-ऊँची उठती लहरों में स्नान किया होगा; बड़े-बड़े जहाजों में बैठकर दिनों और महीनों तक समुद्री दुनिया में रहते हुए दुनिया भर की सैर की होगी। ऊँचे पहाड़ों की यात्रा और समुद्री संसार की सैर के समय रह-रह कर मन में आश्चर्य और विस्मय की तरंगें उठा करती हैं। मन रह-रह कर अपने-आपसे कुछ कहता है, पूछता है—'यह सब क्या है? यह किसकी माया है? किस अगम-अगोचर तत्त्व ने इस आश्चर्यजनक सत्य का निर्माण किया? तब मनुष्य में जिज्ञासा की—जानने की भूख पैदा होती है। वह तत्त्व (असलियत) की तह तक पहुँचने की कोशिश करता है। वह रहस्य के पर्दे को चीर कर सचाई का पता लगाता

है, लगाने का प्रयत्न करता है। इस पर्वत और समुद्र के सम्बन्ध में भी वैज्ञानिकों ने नीचे लिखे अनुसार पता लगाया है:—

सूर्य-पिंड से छलक कर अगल होते समय ये सारे-के-सारे ग्रह गैस के दहकते गोले थे। यह पृथ्वी भी तब गैस का एक दहकता गोला ही थी। लेकिन बाद में धीरे-धीरे पृथ्वी में ठंढापन आने लगा। दूसरे ग्रह भी ठंढे होने लगे। पृथ्वी-पिंड के दहकते गैस ठंढा होते-होते पहले तरल बने, फिर बाद में ठोस। वे ठंढा और ठोस बने हुए गैस ही पृथ्वी की सतह हैं। वह ठोस बना हुआ गैस ही पृथ्वी की मिट्टी है, पहाड़ भी है। लेकिन पृथ्वी के बहुत भीतर का भाग आज भी ठोस नहीं बन पाया। वह बहुत तरल और गरम कहा जाता है। जब यह पृथ्वी ठोस बनने लगी तो उसके ठोस बने हुए ऊपरी हिस्से का आघात जब-तब भीतर के गैसीय हिस्से पर होने लगा था। फलस्वरूप भीतर का गैसीय हिस्सा पोला होने के कारण कहीं पचक कर नीचे धस जाता था और कहीं उभर कर ऊँचा हो जाता था। ये धसे और उभरे हुए हिस्से बाद में ठोस बन कर बड़े-बड़े पहाड़ और बड़े-बड़े गड्ढे बन गये। जब पृथ्वी का ऊपरी हिस्सा ठंडा हो गया, उसके ऊपर (आकाश में) भाप के रूप में अब भी पानी का एक बहुत बड़ा परिमाण मौजूद था। वह भी ठंढा होकर पृथ्वी पर गिरने लगा। इसी पानी से वे सारे-के-सारे गड्ढे भर गये और उन्हीं भरे हुए गड्ढों को बाद में मनुष्य ने 'समुद्र' नाम दे दिया।

विशालता में सूक्ष्मता (प्रोटन और एलेक्ट्रन):—

अब तक हमने मोटे तौर पर पृथ्वी की बात जान ली, अन्य ग्रहों की बात भी और इन सबके जनक सूर्य के सम्बन्ध में भी कुछ जानकारी प्राप्त कर ही ली। जरा सोचिए तो! २५ हजार मील घेरा तो अकेले इस पृथ्वी का ही है; और इस जैसे अनेकों

ग्रह सूर्य के चतुर्दिक् चक्कर काटते हैं; और पृथ्वी से भी तेरह लाख गुना बड़ा यह सूर्य है; और इस सूर्य जैसे अरबों-खरबों नक्षत्रों का एक-एक नक्षत्र-मण्डल है; और ऐसे अरबों-खरबों नक्षत्र-मण्डल इस सारे आकाश में बिखरे पड़े हैं। कितना विशाल है यह आकाश, और कितना विशाल है यह विश्व ! इस विशालता की कल्पना करते भी माथा चकराने लगता है। लेकिन यह विश्व जितना विशाल है, उतना ही सूक्ष्म भी है। जिस प्रकार इसकी विशालता की कल्पना करते माथा चकराता है, उसी प्रकार इसकी सूक्ष्मता की कल्पना करते भी। लेकिन मनुष्य का मस्तिष्क जब रूढ़ियों और अंध-विश्वासों से आजाद होकर सत्य की खोज में दौड़ लगाता है, उसकी सारी बाधा, सारा संकोच दूर हो जाता है। जिस प्रकार वह अनन्त-विशालता की ओर दौड़ पड़ा है उसी प्रकार अनन्त-सूक्ष्मता की ओर भी। जाने कब उसकी यह दौड़ समाप्त होगी, और कब वह 'अथ' और 'इति' का आलिंगन कर सकेगा ? इस प्रश्न पर जाने कब तक गहरा प्रश्न-चिह्न लगा रहेगा ?

जब मानव का मस्तिष्क विशालता से सूक्ष्मता की ओर दौड़ पड़ा, और प्रत्येक वस्तु का विभाग-पर-विभाग करते जिस अन्तिम सूक्ष्मता पर पहुँचकर वह जा रुका उसे हमने 'परमाणु' नाम दे डाला। परम + अणु इन दो शब्दों से परमाणु शब्द बना है। अणु का अर्थ होता है 'सूक्ष्म टुकड़ा या सूक्ष्म-कण'। परम का अर्थ होता है—'अत्यन्त'। इस प्रकार 'परमाणु' शब्द का अर्थ हुआ अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ा या कण। यह परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि यदि दस करोड़ परमाणुओं को एक-पर-एक सजा कर रख दिया जाय तो उनका कुल माप एक इंच से अधिक नहीं होगा। हर वस्तु के परमाणु अलग-अलग होते हैं। इन्हीं परमाणुओं से यह सारा संसार बना है। यह परमाणु ही सब का मूल तत्त्व है।

आज से हजारों वर्ष पहले भारतवर्ष में महर्षि कणाद ने इस मूल तत्त्व 'परमाणु' की कल्पना की और युनान में महर्षि देमोक्रितु ने। सृष्टि के सम्बन्ध की यह हजारों वर्ष पुरानी कल्पना आज के विज्ञान-प्रधान युग में भी मान्य है। किन्तु आज के वैज्ञानिक इस सूक्ष्मता को भी पार कर चुके हैं। वे इससे भी आगे बढ़ चुके हैं। उन्होंने आधुनिकतम हथियारों की मदद से 'परमाणु' के किले को तोड़ कर 'परम परमाणु' का भी पता लगा लिया है। जब परमाणु को तोड़ा गया तो उसके भीतर भी अनेक सूक्ष्मतर कण पाये गये। इन तोड़े गये कणों में बिजली की शक्ति पाई गई। जिस प्रकार बिजली में 'धनात्मक' और 'ऋणात्मक' दो जाति के कण पाये जाते हैं, उसी प्रकार परमाणुओं में भी इन दो जाति के कण पाये गये। अंग्रेजी में 'धनात्मक' को 'पोजिटिव' (Positive) कहते हैं और ऋणात्मक को 'नेगिटिव (Negative)। परमाणुओं के इस धनात्मक कण को अंग्रेजी में प्रोटन (Proton) कहा जाता है और हिन्दी में उसे 'नाभि-कण' कहते है और 'प्राणु' भी। ऋणात्मक कण को अंग्रेजी में 'एलेक्ट्रन' (Electron) कहते हैं और हिन्दी में उसे 'विद्युत्कण' या 'विद्युत्परमाणु' कहेंगे। जिस प्रकार बिजली में धनात्मक कण ऋणात्मक कणों को अपनी ओर खींचते रहते हैं, उसी प्रकार परमाणु के केन्द्र में स्थित यह नाभि-कण अपने चारों ओर बड़े वेग से दौड़ते हुए विद्युत्कणों को अपनी ओर खींचता रहता है। इन विद्युत्कणों की दौड़ भी बड़ी ही तेज होती है। वे प्रति सेकेंड लगभग १३५० मील की चाल से अपने नाभि-कण (Proton) के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। एक-एक परमाणु में अनेक नाभि-कण और अनेक विद्युत्कण होते हैं।

तो, इस प्रकार एक-एक परमाणु अपने-आप में एक संसार है।

जिस प्रकार आकाश में सूर्य है, वह बड़े वेग से चल रहा है, और उसके चारों ओर पृथ्वी आदि ग्रह अपनी-अपनी कक्षा पर बड़ी तेजी से दौड़ लगाए जा रहे हैं, इसी प्रकार परमाणु के भीतर नाभि-कण है, परमाणु के साथ वह भी गति-शील है, और इसके चारों ओर अपनी-अपनी कक्षाओं पर विद्युत्कण (Electron) बड़े वेग से दौड़ते जा रहे हैं। तो इसका मतलब यह हुआ कि इस सारे संसार में, चाहे वह आकाश का विशाल संसार हो अथवा परमाणु का सूक्ष्म संसार, कहीं भी स्थिरता नहीं है। इस सारे विश्व-ब्रह्माण्ड के कण-कण में गति और प्रगति है, बिजली के इन्हीं शक्तिमय सूक्ष्म कणों का अथक-अटूट नर्तन है। हमें जो इस विश्व में स्थिरता दिखाई दे रही है वह भ्रम के सिवा और कुछ नहीं है।

पृथ्वी पर मनुष्य का आगमन

[२]

महिमाशाली मनुष्य :—

पिछले अध्याय में हम पृथ्वी और पृथ्वी के मूल तत्त्वों पर प्रकाश डाल आए हैं। हम थोड़े में समझा आए हैं कि यह पृथ्वी क्या है; पृथ्वी की छाती पर खड़े हो आकाश से बातें करते ये ऊँचे-ऊँचे पहाड़ क्या हैं; और सैंकड़ों-हजारों मील ज़मीन पर लहराता और घहराता हुआ अगम-अथाह पानी का यह नीला
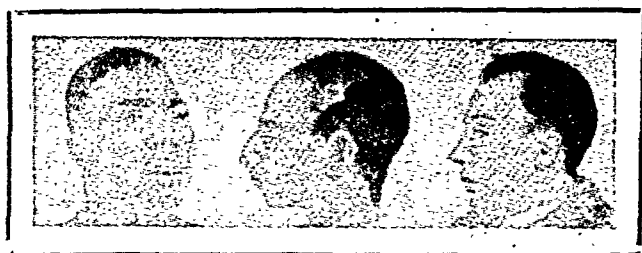
मनुष्य की प्रमुख जातितों के नमूने—सेमिटिक, आलपाइन और आइबेरिन

विस्तार क्या है जिसे हम 'समुद्र' कह कर पुकारते हैं? लेकिन केवल इतने से ही हमारे जानने की भूख समाप्त नहीं हो जाती। प्रकृति ने जिस मनुष्य को बुद्धि दी है, सोचने और विचारने की शक्ति दी है, वह आँखों से देखी जाने वाली हर वस्तु की मूल सचाई तक पहुँचने की, उसे समझने की कोशिश करता है। इस पृथ्वी पर असंख्य चीजें मौजूद हैं। इतनी चीजें कि उन सबका ठीक-ठीक गिना जाना आज भी आसान नहीं बन पाया। मोटे तौर पर दो प्रकार की चीजें देखी जाती हैं—स्थावर और जंगम अर्थात् अचेतन और चेतन। अचेतन उन चीजों को कहते हैं जिन में चेतना

नहीं होती, अर्थात् उनमें सुख-दुख आदि के अनुभव की शक्ति नहीं होती। वे जड़ होते हैं, जैसे पत्थर-पहाड़ आदि।

मंगोल मानव

चेतन चीजों में चेतना होती है; सुख-दुख के अनुभव की शक्ति होती है; वे चलती-फिरती भी हैं; अर्थात् जिनमें प्राण होता है, जिन्हें हम जीव कहा करते हैं। इन जीवों के भी अनेक भेद हैं— जल-चर, स्थल-चर, और आकाश-चर आदि। और इन सभी प्रकार के जीवों में 'मनुष्य' नाम का जीव सब से श्रेष्ठ कहा जाता है, सबसे समझदार और बुद्धिमान माना जाता

आर्य मानव

है। उसमें यह समझदारी और बुद्धिमानी का गुण ही उसे अन्य जीवों से श्रेष्ठ साबित करता है। वह अन्य जीवों की तरह केवल

नीग्रो मानव

भूख, भय, निद्रा और बच्चे पैदा करने के स्वभाव से ही जुड़ा नहीं होता, बल्कि वह बड़े-बड़े ऊँचे आदर्श की, धर्म और सदाचार की, नीति और अनीति की बातें भी किया करता है।

आस्ट्रेलियाई मानव

वह *प्रकृति को वश में करना चाहता है, प्रकृति की हरकतों पर काबू पाना चाहता है, अपने आप पर अधिकार करना चाहता है। उसने बड़े-बड़े नगर बसाए, बड़े-बड़े समाज बनाए और बिगाड़े भी। उसने जल और थल का रौंद डाला, और आज विज्ञान की मदद से आकाश और पाताल को भी वह रौंद रहा है। आज वह अपनेको सर्व-शक्तिमान, सर्व-महान समझने लगा है।

लेकिन यह सर्व-शक्तिमान और सर्व-महान मानव इस धरा-धाम पर आया कैसे, जबकि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि यह पृथ्वी सूर्य के पेट से निकलते समय आग का एक धधकता गोला के अतिरिक्त और कुछ न थी? पृथ्वी का जो वर्तमान स्वरूप हम देख रहे हैं, उसके बनने में लाखों-करोड़ों वर्ष लग चुके हैं। उसे उत्पन्न हुए दो अरब वर्ष से भी अधिकका अनुमान आज लगाया जा रहा है। फिर इतने विशाल अरसे के बीच कब, किस समय और किस तरह यह मनुष्य इस पृथ्वी पर पैदा हुआ? पैदा होने के समय उसकी दशा क्या थी? आज के मानव और आदि-मानव में अन्तर क्या था, समानता क्या थी?—इत्यादि प्रश्न स्वभावतः वैज्ञानिकों और विचारकों के मन में उठे और उन्होंने उन्हें हल करने की कोशिश भी की।

अब हम संक्षेप में सर्वमान्य आधुनिक वैज्ञानिक मत के अनुसार इस पृथ्वी पर मनुष्य के आगमन की बात बतायेंगे। प्राणि-शास्त्रियों (Biologist) और भूगर्भ-शास्त्रियों (Geologist) ने

---

*उन सभी वस्तुओं के समूह को 'प्रकृति' कहते हैं जो अपने-आप उत्पन्न होती हैं। अर्थात् जिनके बनाने या उत्पन्न करने में मनुष्य का हाथ नहीं होता। जैसे—जंगल, पहाड़, समुद्र, नदी, नाला, झरना, झील, चाँद, सूरज और तारे आदि। इन सभी को प्रकृति कहेंगे अथवा प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण 'प्राकृतिक' कहेंगे।

वर्षों के शोध और खोज के बाद यह निश्चित किया है कि आज से लगभग ५० करोड़ वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर एक विशेष प्रकार का भौतिक और रासायनिक वातावरण (परिस्थिति) उत्पन्न हुआ। इस वातावरण में कुछ ऐसे तत्त्व उपस्थित हो गये जिनमें 'प्राण' उत्पन्न करने की शक्ति मौजूद थी। प्राण उत्पन्न करने वाले उन तत्त्वों का आपस में संयोग भी हो गया। फलस्वरूप पृथ्वी पर प्राण अकुलाने लगे। उन प्राणों का उत्तरोत्तर विकास होता गया और उनसे भिन्न-भिन्न जीवों की सृष्टि होती गई।

इस पृथ्वी में न जाने कितने रासायनिक तत्त्व मौजूद हैं। अब तक वैज्ञानिकों ने ९२ या इससे कुछ अधिक तत्त्वों का पता लगाया है। तत्त्वों की कसौटी यह मानी गई है कि वे अपने-आप में बिल्कुल खालिश होते हैं, उनमें किसी भी अन्य पदार्थ की रंचमात्र भी मिलावट नहीं होती। जैसे, 'हाइड्रोजन' और 'ऑक्सीजन' तत्त्व अपने-आप में खालिश हैं, लेकिन इन्हीं दोनों का जब आपस में संयोग होता है ये पानी बन जाते हैं। इन दोनों ही तत्त्वों में न गंध है, न रस है, न कोई रंग। ये आँखों से देखे भी नहीं जा सकते। किन्तु हाइड्रोजन के दो परमाणु और आक्सीजन के एक परमाणु का यदि किसी तरह संयोग हो जाय तो इनसे सर्वथा भिन्न गुण वाले पदार्थ 'पानी' की उत्पत्ति हो जाती है। (आधुनिक वैज्ञानिक पानी को तत्त्व नहीं मानते, बल्कि द्रव पदार्थ मानते हैं)। इसी प्रकार 'रेडियम' एक तत्त्व है, और 'शीशा' भी एक तत्व है। सभी तत्त्वों का अलग-अलग वजन है। रेडियम के परमाणु में ८८ प्रोटन और ८२ एलेक्ट्रन होते हैं। हम पहले ही बता आए हैं कि एलेक्ट्रन अपनी निश्चित कक्षा पर प्रोटन के चारों ओर दौड़ लगाते रहते हैं। लेकिन रेडियम के एलेक्ट्रन अपनी कक्षा से बाहर भी बिखरते रहते हैं। बिखरते-बिखरते

किसी समय रेडियम में प्रोटनों और एलेक्ट्रनों की कुछ कमी पड़ जाती है, रेडियम का वजन भी कम हो जाता है, और तब वही रेडियम एक . क शीशा बन जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि एलेक्ट्रनों के हेर-फेर या कमी-वेशी से एक तत्त्व किसी दूसरे तत्त्व के रूप में भी बदल जाता है। फिर ऐसा मानने और अनुमानने में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता कि पृथ्वी के [illegible] रासायनिक तत्त्वों में किसी विशेष समय में कोई विशेष रासायनिक परिवर्तन हो गया, जिससे कि इस प्राणि-हीन पृथ्वी पर प्राण का आगमन भी संभव हो सका। और आगे चलकर मनुष्य जैसे प्राणी का यहाँ प्रादुर्भाव भी संभव हुआ।

मनुष्य तथा अन्य जीवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तरह-तरह की धार्मिक और दार्शनिक मान्यताएँ हैं जिनके सम्बन्ध में हम अगले अध्याय में बतायेंगे। काफी समय तक ये ही मान्यताएँ मानव-समाज में मान्य बनी रहीं। आज भी मान्य हैं, किन्तु आज के चिन्तकों, विचारकों और शिक्षितों का बहुमत अब इन मान्यताओं के पक्ष में नहीं रहा। अब वह इस सम्बन्ध में विकासवाद की प्रणाली को स्वीकार कर चुका है। विकासवाद के मुख्य आचार्य चार्ल्स डार्विन इंग्लैंड में पैदा हुए थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उन्होंने इस सम्बन्ध में Origin Of Species (जातियों का मूल), तथा Descent Of Man (मानव का अवतार) ये दो पुस्तकें लिखकर एक बड़ी हल-चल पैदा कर दी थी। विरोध का तूफान उठ खड़ा हुआ, किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, डार्विन के विकासवाद के सत्य के समक्ष विद्वानों का माथा झुकता गया। ठीक है, किन्तु अब आप यह जानना चाहेंगे कि—

यह विकासवाद क्या चीज है?:—

संक्षेप में यह भी जान लीजिए! विकास-वाद के

अनुसार जीवों की जितनी भी जातियाँ हैं वे सब-की-सब अपने से कम जीव-कोश वाले जीवों से विकसित हुई हैं। यह जीव-कोश (Life-shell) एक ऐसी सूक्ष्म पेटारी है जिसके भीतर प्राण बैठा होता है। यह जीव-कोश जीवन का किला है। एक या अनेक जीव-कोशों को मिलाकर भिन्न-भिन्न जाति के भिन्न-भिन्न जीवों की सृष्टि हुआ करती है। इस संसार में एक जीव-कोश वाले प्राणी भी हैं, अनेक जीव-कोश वाले भी। लेकिन यह जीव-कोश स्वयं क्या चीज है इस सम्बन्ध में हम आगे बतायेंगे। अभी तो इतना ही जान लीजिए कि यह भिन्न-भिन्न भौतिक तत्त्वों के मेल से बना हुआ एक रासायनिक योग है। अब हम संक्षेप में प्राणियों के विकास के ढंग के सम्बन्ध में बता रहे हैं:—

(क) आनुवंशिकता—प्रत्येक प्राणी में आनुवंशिकता होती है। आनुवंशिकता का मतलब होता है प्रत्येक प्राणी में रहने वाला वह विशेष गुण-धर्म जिसके बल पर उस प्राणी का वंश यानी उस प्राणी की आल-औलाद आगे चलती रहती है। जैसे मनुष्य से मनुष्य ही पैदा होता है, हाथी से हाथी ही, घोड़े से घोड़ा ही और गदहे से गदहा ही। उत्पत्ति का यह सिलसिला पीढ़ी-दर-पीढ़ी चालू रहता है। और संसार के भिन्न-भिन्न भागों में यह जो देखा जाता है कि मनुष्य में गोरी जाति के माता-पिता से गोरी ही सन्तान पैदा होती है, पीली जाति के माँ-बाप से पीली ही, और भूरी तथा काली जाति के माता-पिता से भूरी तथा काली ही वह सीं आनुवंशिकता के बल पर ही। मनुष्य की तरह दूसरे प्राणियों में भी तरह-तरह की नस्लें (जातियाँ) हुआ करती हैं। किसी विशेष जाति के घोड़ा-घोड़ी से उस जाति के ही घोड़ा-घोड़ी पैदा होंगे, और किसी विशेष जाति की गाय या भैंस से उस जाति की ही गाय या भैंस पैदा होगी। यह सब आनुवंशिकता की ही करामात है, आनुवंशिकता का ही चमत्कार है।

(ख) जाति-परिवर्तन —लेकिन अब यहाँ यह पूछा जा सकता है कि एक ही जाति के प्राणी के जो तरह-तरह की नस्लें या जातियाँ देखी जाती हैं, सो क्यों ? क्यों नहीं सभी मनुष्य एक ही तरह के, एक ही शक्ल-सूरत के, एक ही गुण और स्वभाव के होते हैं ? क्यों नहीं सभी हाथी-घोड़े तथा दूसरे सभी प्राणी एक ही शक्ल-सूरत, एक ही आकार-प्रकार और एक ही गुण और स्वभाव के होते हैं ? लाखों-करोड़ों मनुष्यों में, अरबों-खरबों दूसरे प्राणियों में परस्पर बड़ी भिन्नता दिखाई देती है। परस्पर एक विशेष ढंग की समानता के होते हुए भी परस्पर कुछ ऐसी भिन्नता उनमें मौजूद होती है जिसके कारण शक्ल-सूरत में या गुण-स्वभाव में एक दूसरे से वे हू-बहू नहीं मिल पाते। सो क्यों ?

इस प्रकार के प्रश्नों पर भी प्राणि-शास्त्रियों ने विचारा है। उनका कहना है कि जाति-जातिमें, व्यक्ति-व्यक्ति में जो इस प्रकार की भिन्नता देखी जाती है उसमें भी विशेष कारण है। यह तो हम बता ही चुके हैं कि मनुष्य से मनुष्य ही और हाथी-घोड़े आदि से हाथी-घोड़े आदि ही जो उत्पन्न होते हैं उसमें आनुवंशिकता की करामात है। किन्तु व्यक्तिगत और जातिगत जो भिन्नता देखी जाती है उसे हम वातावरण या परिस्थिति की करामात कह सकते हैं। वातावरण और परिस्थिति में क्षण-क्षण परिवर्तन होता रहता है। वह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि वह हमें महसूस भी नहीं होता, और इस परिवर्तन का असर मूल बीज (जनक-बीज) पर भी पड़ता रहता है जिसके कारण उन बीजों से पैदा होने वाली सन्तानों में भी सूक्ष्म परिवर्तन आता रहता है। यह सूक्ष्म परिवर्तन ही व्यक्ति या जाति में एक प्रकार की नवीनता लाता रहता है। यह नवीनता धीरे-धीरे अज्ञात रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होती रहती है, और किसी समय वातावरण में एकाएक किसी विशेष भौतिक-रासायनिक परिवर्तन के फलस्वरूप उस

व्यक्ति या जाति की पहली जाति को बदल कर एक बिल्कुल नई जाति बना देती है। इसी को 'जाति-परिवर्तन' कहते हैं। फिर इस नई जाति की परम्परा नये सिरे से पीढ़ी-दर-पीढ़ी शुरू हो जाती है।

लेकिन इसका यह मतलब कदापि नहीं कि जिस जाति में यह परिवर्तन हुआ, वह उस जाति में सारी पृथ्वी भर के लिए हुआ। यह तो केवल वहीं हो सकेगा जहाँ परिवर्तन के अनुकूल विशेष भौतिक और रासायनिक वातावरण उपस्थित हो जायगा। जहाँ यह विशेष रासायनिक वातावरण पैदा नहीं हुआ वहाँ तो पूर्व जाति की ही परम्परा चालू रहती है। और यही कारण है कि इस पृथ्वी पर जहाँ-तहाँ आज वे आदिम जीव-जातियाँ भी पाई जाती हैं, जो मनुष्य जाति से लाखों वर्ष पहले पैदा हुईं, और क्रमशः उन्हीं जीव-जातियों में से सबसे बाद में विकसित हुई यह मनुष्य जाति भी पाई जाती है, और इस मनुष्य जाति में भी इसकी अनेक उपजातियाँ—आर्य, मंगोल, नेग्रिटो आदि भी पाई जा रही हैं।

(ग) **प्राकृतिक निर्वाचन**—हमने आनुवंशिकता और जाति-परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ जान लिया। अब विकास के एक अन्य मुख्य कारण 'प्राकृतिक निर्वाचन' के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। प्राकृतिक निर्वाचन अर्थात् प्रकृति द्वारा चुनाव, जिसका तात्पर्य है कि इस विकास के सिलसिले में प्राणियों की अनेक जातियाँ पैदा होती रहती हैं; इनमें से जो प्रकृति के अनुकूल बैठती हैं, जो अपने आस-पास के वातावरण को बर्दाश्त कर लेती हैं, वे बची रहती हैं, उनकी आल-औलाद आगे चलती रहती है, और जो प्रकृति के अनुकूल नहीं बैठतीं वे विनष्ट हो जाती हैं। इसी को प्राकृतिक-निर्वाचन कहते हैं, अर्थात् प्रकृति उन जीवों को जीने के लिए चुन लेती है जो उसके अनुकूल साबित होते हैं, और उन जीवों पर ज़रा भी दया नहीं दिखाती

जो उसके अनुकूल नहीं पड़ते, यानी अपने आस-पासके वातावरण को बर्दाश्त नहीं करते। उदाहरण के तौर पर :—

(१) वर्षा ऋतु में कई प्रकार के कीड़े पैदा होते हैं। वे नाना रंग के होते हैं। कुछ का रंग तो वहाँ की मिट्टी जैसा होता है; कुछ का रंग वहाँ के हरे पत्तों से मिलता-जुलता है; और कुछ का वृक्षों की छाल से भी मिलता है। उनके ये रंग अपने समान रंग वाले स्थानों में उनके शत्रुओं से उनकी रक्षा करते हैं। ये रंग मानो उनके कवच बने हुए होते हैं।

(२) और इसी प्रकार काले रंग की किसी सूखी जमीन में एक कीड़ा रहा करता था। समय बदल गया। वह सूखी जमीन हरी-भरी बन गई। उस कीड़े के जनक-बीज (मूल बीज) में धीरे धीरे परिवर्तन होते रहे। उससे लाल, पीले, काले और हरे रंग के बच्चे पैदा होते रहे। उस हरे वातावरण में लाल, पीले और काले रंग के कीड़ों को उन्हें खाने वाले पक्षी या दूसरे जन्तु बड़ी आसानी से देख लेते; फिर उन्हें खा लेते। लेकिन हरे रंग के कीड़े हरे पौधों और वृक्षों के हरे पत्तों में छिपकर अपने को अपने शत्रुओं की निगाह से बचा लेते। ये हरे कीड़े वातावरण के अनुकूल बैठे, इस लिए प्रकृति ने उन्हें जीने के लिए चुन लिया। फिर उन्हीं हरे कीड़ों की संतान आगे बढ़ने लगी।

(३) और इसी प्रकार किसी एक स्थान में पीढ़ियों से सफेद रंग के कीड़े रहा करते थे। उस स्थान का वातावरण उनके शत्रुओं से बचाव में उन कीड़ों की सहायता करता था। फिर बाद में उसी स्थान पर बड़ी-बड़ी मिलें, कल-कारखाने खड़े हो गये। चिमनियों के धुँए और कोयले के सम्पर्क से वहाँ की जमीन धीरे-धीरे काली बनने लगी। इस काली जमीन पर उन सफेद कीड़ों का रूप बड़ी आसानी से दिखाई दे जाता था। इन कीड़ों के खाने वाले बहुतेरे पक्षी वहाँ आकाश में मुँह बाये उड़ा करते थे। वे एक-

एक कर उन कीड़ों को खाने लगे। अब वे कीड़े अपने बचाव के लिए उस वातावरण से संघर्ष करने लगे। इस संघर्ष के फलस्वरूप उन कीड़ों में से कुछ की जाति ही बदल गई, अर्थात् उनका रंग सफ़ेद से काला बन गया। अब ये काले रंग के कीड़े बड़ी आसानी से उस काली जमीन में—उस काले वातावरण में अपने दुश्मनों की निगाहों से बचे रह सकते थे। अब इन काले कीड़ों की जो एक नई जाति बनी उसकी आल-औलाद भी पैदा होनी शुरू हो गई। क्योंकि यह कालापन ऊपर से नहीं आया था, बल्कि उन कीड़ों के जनक-बीज में ही उस प्रकार का परिवर्तन हो गया था। लेकिन जिन कीड़ों का रंग सफ़ेद ही बना रहा, जिनकी जाति में परिवर्तन नहीं हुआ वे एक-एक कर विनष्ट होते गये, अपने शत्रुओं के मुख में प्रविष्ट होते गये। ये काले रंग के कीड़े वहाँ के वातावरण के, वहाँ की प्रकृति के अनुकूल बैठे, इसलिए वे बचे रहे। प्रकृति ने उन्हें जीने के लिए चुन लिया।

इस प्रकार संक्षेप में विकास के मुख्य तरीकों पर प्रकाश डाल दिया गया। यह भी बताया जा चुका है कि जीवों की सभी जातियाँ अपने से कम जीव-कोश वाली जातियों से विकसित हुई हैं। विकास हमेशा नीचे से ऊपर की ओर होता है। ज्यों-ज्यों यह जीव नीचे से ऊपर की ओर विकास करता जाता है, त्यों-त्यों वह अधिक पेचीदा बनता जाता है। क्योंकि जिन जीवों में जितने ही अधिक जीव-कोश होंगे, उनमें उतना ही अधिक पेचीदा-पन भी होगा, और इस अधिक पेचीदा-पन के साथ उत्तरोत्तर अधिक अनुभव की क्षमता भी उत्पन्न होती रहेगी। अन्य सभी जीवों की अपेक्षा मनुष्य के शरीर में जीव-कोशों की संख्या अधिक पाई जाती है। जीव-कोशों की यह अधिकता ही मनुष्य को अनुभव और बोध, विचार और वितर्क की विलक्षण प्रतिभा प्रदान करती है। यह जीव-कोशों का ही चमत्कार है कि वे भिन्न-भिन्न तौर-तरीके से

962

संगठित होकर भिन्न-भिन्न जाति के जीवों और वनस्पतियों को उत्पन्न करते रहते हैं। फिर आप अवश्य जानना चाहेंगे कि इस प्रकार की विलक्षण शक्ति वाले ये—

जीव कोश क्या हैं ? :—

हम पहले बता आए हैं कि जीव-कोश(Life-shell)एक ऐसी सूक्ष्म पेटारी है जिसके भीतर प्राण बैठा होता है। यह प्राण की पेटारी इतनी सूक्ष्म होती है कि बिना अणु-वीक्षण यंत्र की मदद के इन नंगी आँखों से उसे देख पाना बड़ा कठिन है। इसकी सूक्ष्मता का अन्दाजा तो इसी से लगा सकते हैं कि यदि दस हजार जीव-कोशों को एक-पर-एक सजा कर रख दिया जाय तो उनकी कुल लम्बाई एक इंच से अधिक नहीं होगी। इस संसार में अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी भी हैं और अत्यन्त विशाल और विकराल भी। उन सब की काया के महल इन्हीं जीव-कोशों की ईंटों से तैयार होते रहते हैं। लेकिन स्वयं काया के महल की इन ईंटों का निर्माण कैसे हुआ ? किस प्रकार, किस दशा में उनमें वह विलक्षण शक्ति आ गई कि उसके आधार पर यह सारा जीव-संसार बन गया ? स्वभावतः ऐसे प्रश्न भी हमारे मस्तिष्क में उठा करेंगे और हम उनके सही समाधान भी ढूँढ़ना चाहेंगे।

हम जान चुके हैं कि संसार के सारे पदार्थ मूल रूप में बिजली के धनात्मक और ऋणात्मक कणों से बने हुए हैं, जिन्हें अंग्रेजी में प्रोटन और एलेक्ट्रन तथा हिन्दी में 'नाभि-कण' और 'विद्युत्कण' कहा जाता है। बिजली के इन्हीं कणों के परस्पर संयोग होने से वे भौतिक-रासायनिक पदार्थ भी बने जो इस सारी सृष्टि के मूल तत्त्व माने जाते हैं, जिनकी संख्या अब तक ९२ मानी जाती है। इन्हीं ९२ तत्त्वों में से 'हाइड्रोजन' सबसे पहला और सूक्ष्म तत्त्व माना गया है। एक प्रोटन और एक एलेक्ट्रन का आपस में संयोग होने पर हाइड्रोजन तत्त्व बनता है। हाइड्रोजन में

परमाणु भी एक ही होता है। और ८८ प्रोटनों तथा ८३ एलेक्ट्रनों का परस्पर संयोग होने पर रेडियम तत्त्व के परमाणु बन जाते हैं। इस रेडियम तत्त्व में २२६ परमाणु होते हैं। इसी प्रकार सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, शीशा आदि अलग-अलग तत्त्व हैं, और इनके परमाणुओं की संख्या भी अलग-अलग निश्चित है। और हर तत्त्व के परमाणु में प्रोटनों और एलेक्ट्रनों की संख्या भी निश्चित है।

तो इससे यह पता चला कि हर छोटी-बड़ी वस्तु के निर्माण के लिए प्रकृति द्वारा एक निश्चित मात्रा होती है, एक निश्चित योग (मिलावट) होता है। इन निश्चित मात्राओं और योगों के द्वारा ही भिन्न-भिन्न पदार्थों का प्रादुर्भाव होता है, विकास होता है। और यह प्राण की पेटारी भी इसी नियम के अनुसार बनी हुई बताई गई है। अब हम संक्षेप में उस तरीके को बतायेंगे जिसके द्वारा इस प्राण की पेटारी का निर्माण होता है:—

प्रकृति के राज्य में किसी समय वातावरण में एक ऐसा परिवर्तन आ गया कि कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और ऑक्सीजन इन भौतिक-रासायनिक तत्त्वों का आपस में संयोग हो गया। और इस संयोग के होते ही एक बिल्कुल नया पदार्थ बन गया जिसे वैज्ञानिकों ने 'कार्बन-कम्पाउण्ड' यह नाम दिया है। यह कार्बन-कम्पाउण्ड अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ होता है, ऊपर से चिप-चिपासा। इसके बिल्कुल भीतर में—इसके केन्द्र में एक बहुत ठोस हिस्सा होता है जिसे 'नाभि-कण' कहते हैं। इसी नाभि-कण में प्राण बैठा होता है।

इस नाभि-कण को अंग्रेजी में 'प्रोटोप्लाज्म' (Protoplazm) कहते हैं और हिन्दी में 'जीवन शरीर'। और इस जीवन-शरीर को चारों ओर से घेरे हुए बाहर का जो चिप-चिपासा भाग होता है उसे अंग्रेजी में 'क्रिप्टोप्लाज्म' (Criptoplazm) कहते हैं और हिन्दी में 'आहार-शरीर'। जीवन-शरीर और आहार-शरीर

के बीच में एक खाली जगह होती है। इस खाली जगह में कार्बन-कम्पाउण्ड के अणु-गुच्छ (अणुओं का गुच्छा) चला करते हैं। ये अणु-गुच्छ नाभि-कण के चारों ओर एक व्यूह-सा बनाए रहते हैं। इनकी गति के द्वारा एक प्रकार की गर्मी पैदा होती रहती है, और इस गर्मी के द्वारा आहार-शरीर से रस निकल-निकलकर जीवन-शरीर में पहुँचता रहता है। अर्थात् इस आहार-शरीर से नाभि-कण में बैठे प्राण को खुराक मिलती रहती है। तो, इससे यह स्पष्ट हुआ कि आहार-शरीर और जीवन-शरीर के बीच अणु-गुच्छों की गति द्वारा जो रासायनिक कार्य होता रहता है, उसी से प्राण को प्रति पल नया जीवन प्राप्त होता रहता है। और फलस्वरूप प्राण का अखण्ड दीपक जलता रहता है। प्राण की इसी पेटारी को 'जीव-कोश' कहा करते हैं।

लेकिन, फिर यह प्रश्न किया जा सकता है कि स्वयं यह प्राण कैसे पैदा हुआ? कार्बन-कम्पाउण्ड के किले में यह प्राण कैसे और कहाँ से आ बैठा? इसके उत्तर में यह बताया जाता है कि कार्बन-कम्पाउण्ड के बाहरी सिरे पर चार एलेक्ट्रन (विद्युत्कण) मौजूद रहते हैं। और यह हम पहले बता ही आये हैं कि इन एलेक्ट्रनों में एक विशेष शक्ति हुआ करती है। जिस प्रकार ८३ एलेक्ट्रन वाले रेडियम पदार्थ में किरणें बिखेरने की विशेष शक्ति होती है, और २८ एलेक्ट्रन वाले चुम्बक-पदार्थ में लोहे को अपनी ओर खींचने का विशेष गुण होता है, उसी प्रकार ४ एलेक्ट्रन वाले कार्बन-कम्पाउण्ड में प्राण पैदा करने का विशेष सामर्थ्य होता है। जीव-कोश के भीतर प्राण को उत्पन्न करने, उसे जीवित रखने, उसे विकसित करने में इन चार एलेक्ट्रनों का बड़ा जबर्दस्त हाथ बताया जाता है। कार्बन-कम्पाउण्ड के बाहरी सिरे पर बैठे हुए ये चारों एलेक्ट्रन बाहर से अनेक रासायनिक तत्त्वों को फँसा-फँसा कर जीव-कोश के भीतर उन सभी आवश्यक तत्त्वों को पहुँचाते रहते

हैं जिनसे प्राण की उत्पत्ति, स्थिति और विकास में सहायता मिलती रहती है।

जीव और अजीव के बीच में प्राण की स्थिति :—

ऊपर के वर्णन से हमें आदि जीवन के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी मिल गई। परन्तु जीव-कोश के किले में बैठा यह आदि जीवन ही प्राण की सबसे पहली स्थिति नहीं है, बल्कि इससे भी पहले प्राण की एक स्थिति का पता लगाया गया है जिसे वैज्ञानिक लोग 'विरस' (Virus) कहते हैं। यह विरस एक अकुलाती-सी दशा में फोड़े-फुंसियों के रस में पाया जाता है। यह इतना सूक्ष्म होता है कि इन आँखों की बात तो दूर, अणु-वीक्षण यंत्र के द्वारा भी नहीं देखा जा सकता। इसके लिए एक विशेष प्रकार का यंत्र* होता है जिसकी मदद से इन अतिशय सूक्ष्म विरसों का फोटो लिया जाता है। विरस को न जीव कहा जाता है, न अजीव, बल्कि जीव-अजीव के बीच की जो स्थिति होती है वही इस विरस की भी मानी जाती है।

प्राण का पूरा रूप तैयार होने से पहले 'विरस' के बाद एक और स्थिति आती है जिसे 'बैक्ट्रिया फेज' (Bactria-phage) कहा जाता है। कई दिन की बासी दही में कुछ अकुलाती-सी, चलती फिरती-सी स्थिति हम इन आँखों से भी लक्ष्य कर सकते हैं। प्राण की इसी स्थिति को वैज्ञानिकों ने 'बैक्ट्रिया फेज' यह नाम दिया है।

प्राण के उत्पन्न होने का प्रथम स्थान :—

प्रायः सभी माने हुए विद्वानों का इस सम्बन्ध में अब एक-मत हो गया है कि इन सभी प्रकार के प्राणों की उत्पत्ति पहले-पहल कहीं छिछले खारे पानी में हुई। उस समय सूर्य की एक विशेष प्रकार की किरण (Ultra-Violate=कासनी पार की किरण)

* Ultra-Violate-rays-microscope

उस छिछले खारे पानी पर पड़ने लगी थी। यह किरण पृथ्वी तल पर तभी पहुँच पाती है यदि वायु-मंडल में ऑक्सीजन नामक गैस न हो। हो सकता है कि ऑक्सीजन की उत्पत्ति ही बाद में हुई हो। उन किरणों का ही यह प्रभाव था कि उस छिछले खारे पानी में उस आदि प्राण के पैदा होने की स्थिति पैदा हो गई, जिससे बाद में संसार के सारे जीवों का जन्म हो सका, विकास हो सका।

प्राण की उत्पत्ति की कड़ी :—

तो, इस प्रकार हम बड़ी आसानी से प्राण के उत्पन्न होने तक की कड़ी को नीचे लिखे अनुसार बना सकते हैं:—

तत्त्वों की सबसे पहली स्थिति प्रोटन और एलेक्ट्रन हैं। ये ही प्रोटन और एलेक्ट्रन आपस में मिलकर परमाणु पैदा करते हैं। फिर भिन्न-भिन्न परमाणुओं के योग से अणु-गुच्छ पैदा होते हैं। इन अणु-गुच्छों से 'कार्बन-कम्पाउण्ड' बनता है। कार्बन कम्पाउण्ड में रासायनिक क्रिया होकर प्राण और अप्राण के बीच की स्थिति—विरस और बैक्ट्रियाफेज के रूप में—पैदा होती है। इसके बाद पूरा 'प्राण' (जीव-कोश) उत्पन्न होता है।

मन और मस्तिष्क :—

जीवन में मन की महिमा अपरम्पार है। हममें से शायद ही कोई ऐसा हो जिसने मन का नाम न सुना हो। मन हमारा वह साथी है, वह पथ-प्रदर्शक है जिसके बिना प्राण के रहते भी हम प्राण के बिना प्रतीत होते हैं। सुख-दुख का अनुभव हम मन के ही द्वारा करते हैं। भले-बुरे को देखने, सोचने और समझने की शक्ति भी हम मन के ही द्वारा प्राप्त करते हैं। हम आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, नाक से सूँघते हैं, जिह्वा से स्वाद लेते हैं और त्वचा से स्पर्श अनुभव करते हैं। यह सब तभी हो पाता है यदि मन का सहयोग हमें प्राप्त होता रहे। यदि मन का सहयोग

हमें प्राप्त न हो, तो आँखों से देखते रहकर भी हम देख नहीं पाते, कानों से सुनते रहकर भी हम सुन नहीं पाते। संक्षेप में मन वह इंजन है जिसके बिना जीवन की गाड़ी का चलना ही बन्द हो जाता है, जीवन की सारी क्रियाएँ ही ठप्प हो जाती हैं।

ऊपर के कथन से यह स्पष्ट होता है कि जीव-धारियों के लिए मन बड़ी ही कीमती वस्तु है। लेकिन साथ ही यह प्रश्न भी उठता है कि इतनी बड़ी वस्तु का रूप क्या है, आकार क्या है? वह शरीर के किस स्थान में बैठा हुआ शरीर की सारी क्रियाओं पर नियन्त्रण रखता है? प्रकृति के किन-किन तत्त्वों से उसका निर्माण होता है?

ठीक है। शरीर के इस नेता के सम्बन्ध में—इस तानाशाह के बारे में बहुत कुछ सोचा गया है, बहुत कुछ बताया गया है। किसीने उसे आकार में अणु बताया, स्वभाव में नित्य और अपरिवर्तन-शील। किसी ने उसे अन्तःकरण का—हृदय का ही एक रूप बताया, और किसी ने उसे क्षण-क्षण परिवर्तन-शील क्रिया का एक प्रवाह बताया। इन समस्त पुरानी मान्यताओं का सारांश यह है कि मन प्रकृति से परे एक अलौकिक चमत्कारिक वस्तु है।

लेकिन आधुनिक वैज्ञानिक लोग मन को भी प्रकृतिसे परे की वस्तु नहीं मानते। शरीर में रहनेवाली सारी वस्तुएँ जिस प्रकार प्राकृतिक तत्त्वों से ही बनी और विकसित हुई हैं उसी प्रकार मन भी प्राकृतिक तत्त्वों से ही बना हुआ है। परन्तु इस मन का कोई रूप नहीं है। वह वास्तव में एक क्रिया है, क्रिया की एक धारा है। सोचना, विचारना, अनुभव करना यही क्रिया है, और मन भी इस क्रिया के अतिरिक्त कोई भिन्न वस्तु नहीं है। पृथ्वी के सभी जीवों में मन पाया जाता है, किन्तु निचले स्तर के प्राणियों में मन का स्वभाव, या उसका कार्य प्रगट न रहकर अज्ञात रहता

है। प्राणियों में विकास होने के साथ ही मन का विकास भी होता चलता है। मनुष्य-शरीर में पहुँचकर यह मन विकास की उच्च स्थिति में पहुँच जाता है। तब उसके सोचने, विचारने और अनुभव करने की शक्ति में अन्य जीवों की अपेक्षा कहीं अधिक क्षमता आ जाती है।

अब रही इस मन के स्थान की बात। सो उसके बारे में भी जानिए। शरीर के कई हिस्से होते हैं—कुछ बाहर के, कुछ भीतर के। भीतर के हिस्सों को हम नहीं देख पाते, लेकिन उसकी संख्या अनन्त है। बल्कि मानव-शरीरके सारे अवयवों और उसके जीव-कोशों को यदि गिना जाय तो उनकी संख्या अरबों-खरबों तक पहुँच जाएगी। शरीर के कोने-कोने में अलग-अलग ऐसे तारों का जाल बिछा हुआ है जिन्हें हम 'ज्ञान-तन्तु' कहते हैं। इन्हीं ज्ञान-तन्तुओं के द्वारा हमें रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श, सर्दी, गर्मी, सुख और दुख आदि की अनुभूति होती रहती है। जिस प्रकार किसी बड़े शहर में बिजली, टेलीफोन या समाचार भेजने के तारों का सम्बन्ध एक खास स्थान से—उनके प्रधान कार्यालय से जुड़ा रहता है, ठीक उसी प्रकार इन ज्ञान-तन्तुओं का भी शरीर के भीतर एक विशेष स्थान से सम्बन्ध होता है। उस विशेष स्थान को 'मस्तिष्क' कहते हैं। यही मस्तिष्क मन का निवास-स्थान है। बुद्धि, स्मृति, चेतना सब का स्थान यही मस्तिष्क है। बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक तो मन को मस्तिष्क से पृथक् वस्तु मानते ही नहीं।

यह मस्तिष्क मजबूत खोपड़ी से ढका हुआ मज्जा का एक पिण्ड है। इस के दो मुख्य भाग हैं—'सेरेब्रम' और 'सेरेब्लम'। ललाट के नीचे से लेकर खोपड़ी के पिछले हिस्से के आधे तक फैला हुआ 'सेरेब्रम' है। खोपड़ी के पीछे सेरेब्रम के नीचे मज्जा का एक छोटा-सा गोल पिण्ड होता है, उसे 'सेरेब्लम' कहते हैं।

मस्तिष्क के ये ही दोनों भाग शरीर के सभी अंगों और नसों की हरकतों पर नियन्त्रण रखते हैं, उन्हें संचालित करते हैं। तो इससे यह पता चला कि इस शरीर रूपी मशीन का मुख्य संचालक यह मस्तिष्क ही है।

जीवों के विकास का क्रम :—

तो अब तक हमने प्राण के बारे में, प्राण की पेटारी जीव-कोश के बारे में, जीव-कोशों की ईंटों से बने काया के महल के बारे में, और इस सारी काया की मशीन को चलाने वाले मन और मस्तिष्क के सम्बन्ध में जानकारी हासिल कर ली। लेकिन केवल इतना जान लेने से ही जानने की बात पूरी नहीं हो जाती। अब हमें यह जानना चाहिये कि किस प्रकार वह आदि जीव कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और ऑक्सीजन के योग से बनी हुई एक अत्यन्त सूक्ष्म पेटारी में पैदा हुआ और आगे चलकर इतनी बड़ी विशाल-सृष्टि को उत्पन्न करने में सफल हुआ? कैसे वह सूक्ष्म प्राण विकसित होते-होते मनुष्य के रूप को धारण कर सका? क्योंकि यह बताया जा चुका है कि विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार संसार के सभी प्राणी उसी एक आदि-जीव से विकसित हुए हैं। और यह भी बता आये हैं कि विकास की यह क्रिया सदा नीचे से ऊपर की ओर हुआ करती है। सो वह कौन-सी सीढ़ी है, किस प्रकार की सीढ़ी है जिसकी पौढ़ियों पर चढ़ता हुआ वह आदि-जीव मनुष्य के रूप तक आ पहुँचा? लीजिए, जीवोंके विकासका यह क्रम भी संक्षेप में जान लीजिए :—

(क) अजीव-युग—यह हम बता आए हैं कि पृथ्वी के पैदा हुए दो अरब वर्ष बीत चुके हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि करोड़ों वर्षों तक इस पृथ्वी पर प्राण के उत्पन्न होने योग्य वातावरण उत्पन्न ही नहीं हो सका। अब से लगभग ५०-६० करोड़ वर्ष पहले तक

शायद पृथ्वी प्राण-हीन ही बनी रही। इससे पहले की लगभग डेढ़ अरब वर्ष लंबी अवधि को वैज्ञानिकों ने *अजीव युग* (Azoic Age) यह नाम दिया है।

(ख) प्रारंभिक जीव-युग—इस अजीव-युग के बाद इस पृथ्वी के वातावरण में एक ऐसा परिवर्तन हुआ कि प्राण के निर्माण की शक्ति वाले भिन्न-भिन्न तत्वों का आपस में संयोग हो गया। फलस्वरूप छिछले समुद्र के खारे गरम पानी में प्राण अकुलाने लगे। पहले-पहल एक जीव-कोश वाले प्राणी पानी में तैरने लगे। न तो इनके हड्डी थी न कोई अंग ही, लेकिन फिर भी इनमें बच्चे पैदा करने की शक्ति मौजूद थी। वे एक से अनेक बनते गये। लेकिन इनका जीवन बहुत अल्प-काल का होता था। क्योंकि उस समय समुद्र का पानी काफी गर्म था। उसमें भयंकर ज्वार-भाटे उठा करते थे। फलस्वरूप जाति-परिवर्तन भी बहुत जल्द-जल्द हुआ करता था। इस युग में रीढ़ और हड्डी से हीन अनेक छोटी-छोटी मछलियाँ और सामुद्रिक बिच्छू आदि जीव पैदा होने लगे। घास-पात भी पैदा हुए। मछलियों की कई जातियाँ भी पैदा हुईं। धीरे-धीरे इनमें दाँत, आँख आदि अंग भी फूट आए। रीढ़की हड्डियों का ढाँचा भी विकसित हो गया। उस समयकी इन मछलियों की लम्बाई २ फुट से लेकर २० फुट तक बताई गई है। करोड़ों वर्षों तक यही हालत बनी रही। यह काल मुख्यतः मछलियों का काल था। इस लिए इसे 'मत्स्य-काल' कहा जाता है, और इस अवधि को कहा जाता है '*प्रारंभिक जीव-युग*' (Paleozoic Age)।

इसी युग के अन्तर्गत एक और समय आता है जिसे हम 'कोयले का काल' कह सकते हैं। बताया जा चुका है कि अन्य अनेक रीढ़-हीन जीवों की तरह घास-पात भी समुद्र में उत्पन्न

हुए। फिर बाद में इनमें भी विकास होते-होते रीढ़ पैदा हुई, और तने भी फूट आये। फिर ये पौधे समुद्र की तरंगों से धकेले जाकर जल से थल की ओर बढ़ने लगे। पहले वे किनारे की दल-दल में, फिर सूखी भूमि में उत्पन्न होने लगे। इनमें जाति-परिवर्तन हो-होकर तरह-तरह के विशाल वृक्ष पैदा होने लगे। भूगर्भ-शास्त्रियों का अनुमान है कि जल से थल की ओर जाने वाले जीवों में पेड़-पौधे ही सर्व-प्रथम हैं। दूसरे जीव तो बाद में भूमि की ओर बढ़े। तात्पर्य यह कि भूमि पर पेड़-पौधों के उत्पन्न होने के बाद ही दूसरे जीवों के पैदा होने की स्थिति उत्पन्न हो सकी। क्योंकि दूसरे प्राणी समुद्र के ज्वार द्वारा फेंके जाकर किनारे पर तो पहले भी आते रहे, किन्तु न तो वे स्वयं जीवित रह पाते, न उनका वंश ही चल पाता। इस बीच पृथ्वी पर बड़े-बड़े परिवर्तन होते रहे। बड़े-बड़े भीषण और भयानक भूचाल आते रहे। फलस्वरूप ये पेड़-पौधे भी नीचे भूमि में दब जाते रहे। आज जो जहाँ-तहाँ जमीन में कोयले की खानें पाई जाती हैं वे वस्तुतः उस समय के दबे हुए वृक्ष ही हैं जो आगे चलकर कोयले के रूपमें बदलते गये। इसी लिए इस काल को 'कोयले का काल' भी कहा जाता है।

(ग) मध्य जीव-युग—इसके बाद हम तीसरे युगमें पहुँचते हैं जिसे वैज्ञानिकों ने *मध्य जीव-युग* (Mesozoic Age) कहा है। यह युग भी करोड़ों वर्षों का रहा। इस बीच पृथ्वी के ताप में, वातावरण में तरह-तरह के परिवर्तन होते रहे। वातावरण में परिवर्तन के फलस्वरूप जीवों की जातियों में भी परिवर्तन होने लगे। अब पृथ्वी पर नए जीव आये। ये रेंगने वाले जीव कहे जाते हैं। ये जल और थल दोनों जगह रेंग सकते थे, चल सकते थे। इनमें मुख्य हैं बड़े-बड़े अजगर, कई प्रकारके सर्प, मगरमच्छ और कछुए आदि। इन जानवरों के साथ पेड़-पौधों में भी विकास होता रहा। इनकी भी

अनेक जातियाँ पैदा होती रहीं। इसी युग में एक ऐसे प्राणी का भी प्रादुर्भाव हुआ, जो रेंगकर चलता था, किन्तु उसके अगले पैर चमगादड़ की तरह के होते थे। पंख के समान कुछ अंग भी उग आए थे। यह जीव जरा-जरा उड़नेकी कोशिश भी किया करता था। यही पक्षियों के पैदा होने से पूर्व की स्थिति थी। इस सारे युग की अवधि २० करोड़ से ८ करोड़ वर्ष पूर्व तक आँकी गई है। इस काल को *'सरीसृप-(रेंगन वाला जीव)-काल'* कहा जाता है।

(घ) नव जीव-युग—आज से ८ करोड़ वर्ष पूर्व तक रेंगने वाले जीवों का ही इस पृथ्वी पर साम्राज्य वना रहा। इसके वाद पुनः वातावरण में एक युगान्तरकारी परिवर्तन आया। इस भूतल पर नये-नये पहाड़, नये-नये समुद्र और नई-नई नदियाँ प्रगट हुइ। पृथ्वी में भूचाल के कारण हिमालय और आल्पस आदि पहाड़ों की श्रेणियाँ वनने लग पड़ीं। इन पर्वतों, समुद्रों और नदियों के कारण नई-नई सीमाएँ, नये-नये देश, नये-नये द्वीप और महा-द्वीप वनने लग पड़े। और अपनेको इस नये वातावरण के, इस नई प्रकृतिके अनुकूल वनाने के लिए रेंगने वाले जीवों में प्रकृति से संघर्ष भी आरम्भ हो गया। इस संघर्ष के कारण उनके जनक-वीजों में परिवर्तन भी आरंभ हुए। फल-स्वरूप नये-नये जीव उत्पन्न होने लगे। इन जीवों की अनेक नई जातियाँ वनीं और विगड़ीं। कुछ तो सदा के लिए नष्ट हो गईं, और कुछ के अवशेष आज भी जहाँ-तहाँ मौजूद हैं। और उस समयके कुछ जीव आनुवंशिकता की गाड़ी पर सवार हो अपनी आल-औलाद पैदा करते आज भी लाखों-करोड़ों की संख्या में जगह-जगह अपने अस्तित्व का परिचय दिये जा रहे हैं। अस्तु।

इन रेंगने वाले जीवों में से विकास की दो धाराएँ निकल

पड़ीं। एक आकाश की ओर बढ़ चली, और एक भूमि की ओर। अर्थात् इन रेंगने वाले प्राणियों में कुछ तो आकाश में उड़ने वाले पक्षी आदि प्राणी पैदा हुए, और कुछ स्थल पर विचरने और निवास करने वाले प्राणी—जैसे हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, कुत्ते, बिल्ली, बन्दर आदि। यहीं से प्राणियों में अनुभूति, ममता और स्नेह की एक धीमी-सी धारा बहनी शुरू हो चली। क्योंकि सरीसृप जाति के जीवों में माँ और बच्चे का सम्बन्ध पैदा होने के बाद ही समाप्त हो जाता था। उन बच्चों को न यह कभी अनुभव होता था कि उनके पैदा करने वाली भी कोई है, और न माँ को ही यह अनुभव होता था कि उसके कोई शिशु भी है। किन्तु गाय, भैंस, कुत्ते, बिल्ली, बन्दर आदि जीवों के बच्चे गर्भ में ही पूरे बनकर बाहर आते हैं। उनकी माताओं के स्तनों में पहले से ही आहार की सामग्री भरी होती है। माँ के पेट से बाहर होते ही बच्चों में भूख की भावना जाग उठती है, और माताओं में अपने अन्दर संचित आहार की सामग्री को वितरित करने की भावना भी। फलस्वरूप माँ और शिशु का तात्कालिक सम्बन्ध स्थापित होता है। यह सम्बन्ध दिनों, महीनों और वर्षों तक कायम रहता है। इस सम्बन्ध से परस्पर आत्मीयता की, स्नेह और ममता की भावना पैदा होती है। और यह भावना ही प्राणियों को चेतना की ओर, सोचने और समझने की ओर अग्रसर करती है। ज्यों-ज्यों यह प्रवृति बढ़ने लगती है, प्राणियों में मस्तिष्क का विकास होना शुरू हो जाता है।

जिन प्राणियों में मस्तिष्क को विकसित करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है, उसके शारीरिक विकास की धारा मन्द पड़ जाती है, और जिन प्राणियों में शारीरिक विकास की प्रवृति अधिक होती है, उनके शरीर का ही अधिक विकास होता है। उदाहरण के लिए हाथी आदि जीव इसी जाति के हैं।

प्राणि-शास्त्र के विद्वानों के मतानुसार मस्तिष्क के विकासकी यह प्रवृत्ति मनुष्य को छोड़ अन्य स्तन्य-पायी जीवों में वन्दरों में अपेक्षाकृत अधिक देखी गई है। इन्हीं वन्दरोंके जनक-वीज में आगे चलकर विशेष परिवर्तन शुरू हुए। फलस्वरूप वन्दरों की भी कई जातियाँ पैदा होने लगीं। इन्हीं में से एक समय विना पूँछ के वन्दर (निपुन्छ कपि) भी पैदा हुए। वे विना पूँछ के वंदर अपनी चाल-ढाल, आदत-स्वभाव और शक्ल-सूरत में वहुत-कुछ अन्य वन्दरों के समान होते हुए भी उनसे वहुत-कुछ भिन्न भी थे। लेकिन फिर भी ये चौपायों से अलग थे। ये दो पैरों पर खड़े होकर चला करते। अगले दो पैरों से हाथ का काम लेते और दो पैरों पर खूब दौड़ें भी लगाते और आसानी से पेड़ों पर चढ़ भी जाते, किन्तु वन्दरों की तरह वड़ी आसानी से पेड़ों पर उछल-कूद मचाने में निपुण न थे।

लाखों-करोड़ों वर्षों तक विना पूँछ के इन वन्दरों की आल-औलाद चलती रही। जीवन के साथ संघर्ष और अपने आस-पास की चीजों को अधिकाधिक जानने-पहिचानने का कौतूहल, इच्छा और प्रयत्न ने एक समय इनमें से कुछ के जनक-वीज में परिवर्तन ला दिया। फिर इनकी जाति ही वदल गई। इस परिवर्तन से जो जीव उत्पन्न हुआ वह 'मनुष्य' था।

इस प्रकार अनेक जीवों में विकसित होता, अनेक मंजिलों को पार करता हुआ वह आदि जीव अन्त में मनुष्य के रूप में प्रकट हुआ। आदि प्राण को मनुष्य का रूप धारण करने तक जो अनेक मजिलें तै करनी पड़ीं इसमें स्त्री का गर्भ भी प्रमाण के तौर पर पेश किया जा सकता है। गर्भ में रज वीज के दो जीव-कोशों से मनुष्य का रूप वनना शुरू होता है। वड़ी तेजी से जीव-कोशों में वृद्धि शुरू होती है। पहले वह गर्भ वेरीढ़ का, हलवा-सा
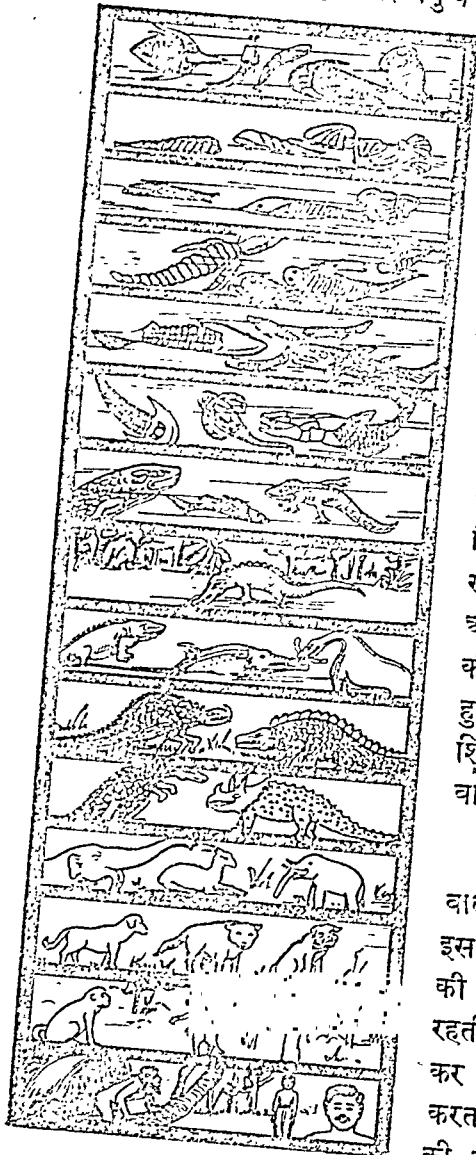
जीव के विकास का क्रम

बनता है। फिर उसमें रीढ़ बनने लगती है। रीढ़ बन जाने पर चौपायों की भाँति उसमें चार पैर निकल आते हैं। एक पूँछ भी निकल आती है। फिर यह पूँछ शरीर में हजम होने लगती है, और चौथे महीने सारे शरीर में छोटे छोटे रोयें जमने लगते हैं। छठे महीने यह गर्भ बिना पूँछ के वन-मानुष सा बन जाता है। फिर अगले तीन महीनोंमें बीच की मंजिलों को पार करता हुआ वही गर्भ मानव-शिशु बनकर माँ के पेट से बाहर निकलता है।

गर्भ से बाहर आने के बाद भी काफी दिनों तक इस शिशु में अन्य जीवों की अनेक क्रियाएँ मौजूद रहती हैं। पहले वह रेंग-कर चलने की कोशिश करता है। फिर चौपायों की तरह दोनों हाथ को भी पैर की तरह इस्तेमाल

करता है। फिर वह वन-मानुप की तरह खड़े होकर चलता है। किसी पेड़-पौधे को पकड़कर झकझोरने में उसे उतना ही मजा आता है जितना किसी बन्दर या वन-मानुप को। इसके बाद वह सीधे होकर मनुष्य की तरह चलता है। बचपन में बन्दर का बहुत-सा स्वभाव मनुष्य में मौजूद रहता है।

तो इस प्रकार ऊपर के वर्णन से जीवों के विकास के क्रम के सम्बन्ध में एक सामान्य जानकारी अवश्य मिल गई होगी। आपने समझ लिया होगा कि किस प्रकार वह 'आदि प्राण' विकास की सीढ़ी पर चढ़कर उसकी अन्तिम पीढ़ी मानव-शरीर तक आ पहुँचा। किन्तु विकास की इस धारा पर दृष्टिपात करते हुए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि मानव-शरीर ही जीवके विकास की अन्तिम पीढ़ी है? हो सकता है कि मनुष्य की ऊँचे उठने की आकांक्षा, ऊँचे उठने का प्रयत्न किसी समय इस मनुष्य जाति के जनक-बीज में भी परिवर्तन लाकर एक नई जाति ही उत्पन्न कर दे? इस धारा-धाम पर एक नई दुनिया ही बसा दे? अस्तु।

विकास धारा को साबित करने के साधन :—

हमारे मन में यह शंका शायद उठ सकती है कि वह कौन-सा साधन है, कौन-सा तरीका है, जिसके आधार पर वैज्ञानिकों ने विकास की धारा को साबित किया? हो सकता है कि विकास की यह सारी कल्पना सिवा कोरी कल्पना के और कुछ नहीं? सिवा दिमागी ऐय्याशी के और कुछ नहीं? ठीक है। यह विकास वाद कल्पना अवश्य है, पर कोरी कल्पना नहीं। यह दिमागी दौड़ान अवश्य है, पर दिमाग की ऐय्याशी नहीं। यह विकासवाद विज्ञान की कसौटी पर अब खरा साबित हो चुका है, वह विज्ञान बन चुका है। और यही कारण है कि यह विकासवाद आज सर्वमान्य बनता जा रहा है। आज विज्ञान को झुठलाने का

साहस कोई संतुलित दिमाग का आदमी नहीं कर सकता। विज्ञान की विविध देनों को भी अस्वीकार करना किसी के लिये भी असान नहीं। क्या आप रेल-गाड़ी को, तार और रेडियो को, विमान और ऐटम बम को झुठला सकेंगे? और यदि झुठलाने की कोशिश भी करें तो कोई समझदार आपको समझदार स्वीकार कर सकेगा? यदि नहीं तो 'विकासवाद' को भी झुठलाया नहीं ही जा सकेगा।

अब उन साधनों और तरीकों पर भी संक्षेप में कुछ चर्चा कर ली जाय जिनके आधार पर विकासवाद का सिद्धान्त निश्चित किया गया है। कुछ प्रमुख साधनों और तरीकों की ही चर्चा यहाँ की जायगी।

'भू-तत्त्व-शास्त्र' (Geology) वह शास्त्र है जिसके द्वारा पृथ्वी की बनावट, उसके भीतर के रहस्यों, उसकी नाप-जोख आदि विषय की जानकारी हमें मिलती है। इस शास्त्र के विद्वानों ने एक भू-मापक यन्त्र (Sesmograph) का निर्माण किया है जिसके द्वारा पृथ्वी के भीतर के रहस्यों को जानने में बड़ी मदद मिलती है।

पृथ्वी की जिस ऊपरी सतह को हम देखते हैं वह लाखों-करोड़ों वर्षों से निरन्तर बनती आ रही है। यह सतह कहीं खालिश मिट्टी के रूप में है, कहीं खालिश पत्थर के रूप में, और कहीं पत्थर और मिट्टी दोनों के रूप में। भू-तत्त्व शास्त्र का कहना है कि पृथ्वी पर मिट्टी-पानी आदि की तह बराबर जमती रहती है। वह जहाँ-तहाँ पत्थर बन जाती है। और इन पत्थरों की तह एक-पर-एक जमती रहकर बड़ी-बड़ी चट्टानों का रूप धर लेती है। इन्हें 'स्तरीय चट्टान' कहते हैं।

देखा जाता है कि नदियों का समुद्र से संगम होते समय नदी की धारा मन्द पड़ जाती है। मुहाने के निकट रेत और कीचड़ के

स्तर निरन्तर जमते रहते हैं। धीरे-धीरे वे ही स्तर पत्थर बनते जाते हैं। नदी की धारा के साथ बहकर आए हुए मृत जीव-जन्तु और पौधे इन स्तरों में जमकर अपनी छाप छोड़ते जाते हैं। वे स्वयं पथरा जाते हैं। उन स्तरों पर पड़ी हुई छापों से यह निर्णय किया जाता है कि चट्टानों के ये स्तर किस युग के हैं। जहाँ-तहाँ इन चट्टानों की खुदाई हुई, उन्हें तोड़ा गया, तो उनकी तहों में अनेक जीवों, पेड़-पौधों और औजारों आदि के अवशेष भी मिले। ये अवशेष अपने असली रूप में न होकर पथराई हुई दशा में पाये गये। इन पथराये हुए अवशेषों को अंग्रेजी में 'फोसिल' (Fossil) कहते हैं। ये फोसिल विकास के सिद्धान्त को स्थिर करने में बड़े ही सहायक सिद्ध हुए हैं।

इसके बाद इन फोसिलों के समय निश्चित करने के प्रयत्न भी हुए। कई तरीके काम में लाये गये। उन सबों में कुछ-न-कुछ कमी, कुछ-न-कुछ दोष दिखाई दिये। लेकिन वैज्ञानिकों का प्रयत्न जारी रहा। बहुत दिनों के प्रयत्न के बाद एक निर्दोष तरीका निकल आया। ऐसा पता लगा कि पत्थरों की तहों में पड़े हुए जीवों की हड्डियाँ ज्यों-ज्यों पथराने लगती हैं, वे 'फ्लोरिन' नामक एक गैस को अपने अन्दर सोखती या जज्ब करती रहती हैं। वह हड्डी जितनी ही अधिक पुरानी होगी, उसमें फ्लोरिन की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। इस प्रकार बड़ी आसानी से उन फोसिलों की उम्र का पता लगा लिया जाता है। इस प्रकार उस प्राणी का काल भी निश्चित हो जाता है। इसी विषय को निश्चित करने के लिए 'कार्बन-१४' नाम का एक यन्त्र भी बनाया गया है। इस दिशा में और भी अनेक प्रयत्न होते जा रहे हैं। नये नये तथ्यों का उद्घाटन होता जा रहा है। इस सम्बन्ध में अभी हमें और भी बहुत-कुछ जानना है। वैज्ञानिकों के अथक प्रयत्न जाने कितने नये रहस्यों और तथ्यों का उद्घाटन करने वाले हैं?

इस अध्याय में हमने विकास-सिद्धान्त के अनुसार संक्षेप में जीवों की सृष्टि के बारे में बता दिया; विकास के मूल सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाल दिया; मनुष्य के उत्पन्न होने तक विकास की धारा को भी समझा दिया। अब हम अगले अध्यायों में मानव-विकास से सम्बन्धित अन्य विषयों पर प्रकाश डालने जा रहे हैं।

सृष्टि के सम्बन्ध में दार्शनिक और धार्मिक मान्यताएँ

[३]

पिछले अध्याय में हमने विकासवादी आधार पर जीवों की सृष्टि को समझने की कोशिश की। अब हम इस अध्याय में दार्शनिक एवं धार्मिक मान्यताओं के आधार पर सृष्टि को समझने का प्रयत्न करेंगे। इन मान्यताओं में चिन्तन है, कल्पना का मोहक ताना-वाना है, अटकलवाजी है, और तथ्य की गहराई तक पहुँचने का सच्चा प्रयत्न भी है। मानव-मस्तिष्क की हजारों वर्ष पुरानी वहुतेरी कल्पनाएँ आज भी नवीन वनी हुई हैं, आज भी मान्य वनी हुई हैं। विचारकों का यह निश्चित सिद्धांत है कि संसारमें सव कुछ सापेक्ष है। तो इस प्रकार सच और झूठ भी सापेक्ष हैं अर्थात् झूठ और सच भी अपेक्षाकृत ही हुआ करते हैं; अर्थात् इसकी अपेक्षा यह सत्य है, और इसकी अपेक्षा यह झूठ है इतना हम कह सकते हैं, किन्तु किसी भी वस्तु के वारे में यह नहीं कह सकते कि यह विल्कुल ही सत्य है या विल्कुल ही झूठ है। यही वात विचारों और मान्यताओं के सम्वन्ध में भी लागू होती है। झूठ की परख के लिए सत्य उतना ही आवश्यक है जितना कि सत्य की परख के लिए झूठ। हम किसी वस्तु को न सर्वथा सत्य कहेंगे, न सर्वथा झूठ। सो, तुलनात्मक ज्ञान की दृष्टि से यह जरूरी

हो जाता है कि सृष्टि के सम्बन्ध में उन मान्यताओं और विचारों को भी यहाँ हम सत्तेप में दर्शा दें, जो संसार के विभिन्न भागों में आज भी मान्य हैं, हजारों वर्षों से मान्य होते आए हैं।

वेद मानव जाति की सबसे पुरानी पोथी मानी जाती है, और वेदों के पीछे-पीछे चलती हैं उपनिषदें। सबसे पहले हम सृष्टि के सम्बन्ध में वेदों और उपनिषदों के मत यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

वेदों और उपनिषदों में सृष्टि की कल्पना

ऋग्वेद का मन्तव्य—दुनिया भर की पुस्तकों में वेद पुरानी है, और वेदों में ऋग्वेद पुराना है। सृष्टि के सम्बन्ध में अपने 'नासदीय' सूक्त में ऋग्वेद का कहना है :—

[1]"सृष्टि से पहले न कोई सत् (रूपवान) वस्तु थी, न कोई असत् (रूपहीन) वस्तु। न रज (पृथ्वी) था, न आकाश......न मृत्यु थी, न अमृत्यु। न रात, न दिन।.. सर्वत्र अन्धकार से घिरा हुआ घोर अन्धकार था। सर्वत्र जल ही जल था। एक वह (ईश्वर) जो शून्य से ढका हुआ था, तपोबल के द्वारा प्रगट हुआ।"

फिर आगे चलकर इसी ऋग्वेद ने इस वस्तु को बड़े विस्तार से †'पुरुष-सूक्त' द्वारा यों बताया है :—

"उस पुरुष (ईश्वर) के एक हजार शिर हैं, एक हजार आँखें और एक हजार पैर। वह सारे विश्व को सब दिशाओं से घेर

---

१. नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।१।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः। ...... ।२।
तम आसीत् तमसा गूलह-(गूढ़)-मग्रे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम् ।३।......"

ऋग्वेद १०।१२६

† ऋग्वेद का वह प्रसिद्ध ऋचा जिसमें सृष्टिका सविस्तार वर्णन है।

कर इस पृथ्वी से दश अंगुल ऊँचाई पर खड़ा है। १।*

जो कुछ पहले हुआ, और जो कुछ आगे होगा वह सब पुरुष ही है। वह अमरत्व का स्वामी है। उसका भी स्वामी है जो अन्न खाकर बढ़ता है। २।

यही उसकी महिमा है, और वह अपनी महिमा से भी बड़ा है। उस पुरुष का एक पाद अर्थात् चतुर्थांश सारा भूत-जगत् है, और उसके तीन पाद अर्थात् तीन चौथाई आकाश में है जो अमर है। ३।

तीन चौथाई से वह पुरुष ऊपर (आकाश में) उदित हुआ और एक चौथाईसे इस पृथ्वी पर। उस पुरुष से भोजन और भूख पैदा होकर दिशाओं में घूमने लगे। ४।

उससे विराट्-पुरुष पैदा हुआ, और विराट् से अधि-पुरुष। वह अधि-पुरुष आगे-पीछे सारी पृथ्वी में फैल गया। ५।

इस पुरुष रूपी हवि से देवों ने यज्ञ रचाया। वसन्त ऋतु घी बना, ग्रीष्म ऋतु काष्ठ और शरद् ऋतु हवि। ६।

---

* सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।१।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।२।
एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।३।
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ।४।
तस्माद् विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ।५।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म शरद्धविः ।६।

फिर देवों, ऋषियों और साध्यों (देवों की एक जाति) ने उस प्रथम उत्पन्न यज्ञ-पुरुष का अग्नि द्वारा संस्कार करके यज्ञ किया। ७।

उस सर्वहुत यज्ञ से पर्याप्त मात्रामें जल-विन्दु और घी उत्पन्न हुआ। (उसने) आकाशचारी=(वायव्य) और जलचारी= (नारण्य) पशुओं को (जीवों को) बनाया। ८।

उस सर्वहुत यज्ञ से ऋग्वेद और सामवेद पैदा हुए। उसीसे छन्दों की उत्पत्ति हुई, और उसीसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ। ६।—उसीसे फिर घोड़े उत्पन्न हुए और दो दाँत वाले प्राणी भी। उससे गायें उत्पन्न हुई, और उसीसे भेड़ और वकरे भी। १०।

उस यज्ञ-पुरुष की कई भागों में कल्पना की (उसे विभक्त किया)। (अथात्) उसका मुख क्या था? उसकी भुजाएँ क्या थीं? उसकी जांघें क्या थी? उसके पैर क्या थे?। ११।

ब्राह्मण उसका मुख था, राजन्य (क्षत्रिय) उसकी भुजाएँ, वैश्य उसकी जांघें और शूद्र उसके पैर थे। अथात् ब्राह्मण आदि वर्ण

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।७।
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्या नारण्याश्च ये।८।
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुः तस्मादजायत।६।
तस्मादश्वा अजायन्त ये केचोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः।१०।
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते।११।

उस यज्ञ-पुरुष के मुख आदि अंगों से उत्पन्न हुए। १२।

चन्द्रमा उसके मन से उत्पन्न हुआ, सूर्य नेत्रों से। मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए और प्राण से वायु। १३।

नाभि से अन्तरिक्ष (वायु-मंडल) और शिर से आकाश पैदा हुआ। पैरों से भूमि उत्पन्न हुई और श्रोत्र से दिशाओं तथा अन्य अनेक लोकों की सृष्टि की गई। १४।"

उपनिषदों का मन्तव्यः—

इस प्रकार थोड़े में सृष्टि के बारे में सबसे प्राचीन वेद ऋग्-वेद का मत जान लिया गया। अब हमें इस सम्बन्ध में उपनिषदों का मत जानना चाहिये। हम बता आए हैं कि उपनिषदें वेदों के पीछे चला करती हैं। इनमें कुछ तो ऋग्वेद के पीछे, कुछ सामवेदके पीछे और कुछ यजुर्वेद के पीछे चला करती हैं। अब संक्षेप में हम उस मत को बतायेंगे जिसे ऋगवेद के पीछे चलने वाली '*तैत्तिरीय उपनिषद्*' ने बताया है :—

१. 'उसने (ईश्वर ने) इच्छा की 'मैं बहुत बनूँ, उत्पन्न होऊँ।

> ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
> ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।१२।
> चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
> मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ।१३।
> नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
> पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ।१४।
>
> ऋगवेद १०।९०।९१।९९

१. "·········सोऽकामयत, बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किंच। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च। विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्। यदिदं किञ्च तत्सत्यमित्याचक्षते।" —तैत्तिरीय उपनिषद् २।६

उसने तपस्या की। तपस्या के द्वारा उसने सब चीजों की सृष्टि की जो कुछ यह सब है। अर्थात् संसार की सभी चीजों को उस ईश्वर ने बनाया। फिर सृष्टि का निर्माण करके वह (ईश्वर) सृष्टिमें प्रवेश कर गया। सृष्टि में प्रवेश करके वह सरूप और अरूप बना; सनाम और अनाम बना; सघर और बेघर बना; विज्ञान (चेतन) और अविज्ञान (अचेतन) बना; सत्य और असत्य बना। (जगत् में) यह जो कुछ भी है उस सब को सत्य कहते हैं।"

इसी तैत्तिरीय उपनिषद् ने फिर यह भी बताया है कि [1] "उस ब्रह्म या आत्म-पुरुष से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ (वनस्पति आदि), औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष (मनुष्य)। ....अन्न से ही सारी प्रजा उत्पन्न होती है। पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणी अन्न से ही जीवित रहते हैं।........
२।१,२।२

इसी प्रक्रिया को ऐतरेय उपनिषद् ने यों बताया है—[2] "वही एक मात्र आत्मा (परमात्मा) सबसे पहले था। उसने और कुछ

१ "........... तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। .... अन्नाद् वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीं श्रिताः, अथो अन्नेनैव जीवन्ति। ...."
तैत्तिरीय उपनिषद् २।१,२।२

२ "ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किञ्चनमिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति १।१ स इमाँल्लोकानसृजत, अम्भो मरीचीर्मरमापः। अम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः। पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः १।२ स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति। सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् १।३ तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत

नहीं देखा। उसने सोचा 'लोकों की सृष्टि की जाय।' १।१।

"उसने इन सभी लोकों की सृष्टि की—अम्भस् लोक, मरीचि-लोक, मर-लोक और अप्-लोक। आकाश के बाद अम्भस् लोक की सृष्टि हुई। यह अम्भस् लोक आकाश में है, और मरीचि-(प्रकाश)-लोक अन्तरिक्ष में (आकाश के नीचे) है। पृथ्वी को मर या मृत्यु लोक कहते हैं, और पृथ्वी के नीचे अप्-लोक अर्थात् जल-लोक है।१।२।

"फिर उसने सोचा—'ये तो लोक हुए। अब लोक-पालों की सृष्टि की जाय।' उसने जल में से ही एक पुरुष (पुरुष-पिण्ड) को निकालकर उसे मूर्छित किया।३। उसे तपाया। उस तपे हुए पिण्ड का मुख इस प्रकार फूट गया जिस प्रकार अण्डा फूट जाता है। उस मुख से वाणी फूटी और वाणी से अग्नि। फिर नाक से दोनों पुड़े फूट आये, और उन पुड़ों से प्राण और प्राण से वायु। फिर दोनों नेत्र फूट आये, और नेत्रों से चक्षु (कनीनिका) और चक्षु से सूर्य। फिर दोनों कान फूट आये, और कानों से श्रोत्र (कान के अन्दर सुनने का स्थान) और श्रोत्र से दिशाएँ। फिर त्वचा फूट आई, और त्वचा से लोम (रोयें) और लोम से औषधि-वनस्पति आदि। फिर हृदय फूट आया, और हृदय से मन और मन से चन्द्रमा। फिर नाभि फूट आई, और नाभि से अपान-वायु और अपान से मृत्यु। फिर शिश्न (जननेन्द्रिय) फूट आया, और शिश्न से रेतस (वीर्य) और रेतस् से जल १।४।

यथाण्डम्। मुखाद् वाग् वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ् निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः। [illegible] —ऐतरेय उपनिषद् १।४।

आगे चलकर ऐतरेय उपनिषद् ने फिर यों स्पष्ट किया है:—

[1] "फिर इन देवताओं की—अग्नि, वायु, सूर्य आदि की—सृष्टि करके ईश्वर ने उसे इस विशाल संसार-सागर में फेंक दिया। फिर उन्हें भूख और प्यास से संयोग कराया। फिर उन देवताओं ने ईश्वर से कहा—'हमारे लिए निवास-स्थान बना दो जहाँ रह-कर हम अन्न खा सकें।' २। १।

"तब ईश्वर उनके लिए गाय ले आया, किन्तु उन्होंने कहा—'यह हमारे लिए पर्याप्त नहीं।' तब उनके लिए घोड़ा ले आया, लेकिन उन्होंने कहा—'यह भी हमारे लिए पर्याप्त नहीं। २।२।

"तब वह उनके लिए 'पुरुष' ले आया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'वाह, यह ठीक रहा! पुरुष ही सब पुण्य कर्मों का कारण है!' ईश्वर ने उन्हें आदेश दिया—'अपने-अपने स्थानों में प्रवेश करते जाओ!' २।३।

"तब अग्नि वाणी बनकर मुख में प्रविष्ट हो गई। वायु प्राण बन-

---

१ "ता एता देवताः सृष्ट्वा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनापिपासा-भ्यामन्ववार्जत्। ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति। २।१ —(ऐतरेय)

"ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति। ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति।२।२ —(ऐतरेय)

"ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन्सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम्। ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति।२।३—(ऐतरेय उपनिषद्)

"अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशँश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्। २।४

कर नासिका में प्रविष्ट हो गई। दिशाएँ श्रोत्र बनकर कानों में पैठ गईं। औषधि-वनस्पति रोम बनकर त्वचा में प्रविष्ट हुई। चन्द्रमा मन बनकर हृदय में प्रविष्ट हुआ। मृत्यु अपान बनकर नाभि में प्रविष्ट हुई और जल रेतस् (वीर्य) बनकर शिश्न (जननेन्द्रिय) में प्रविष्ट हुआ। २।४।

"फिर उस ईश्वर ने सोचा—'ये तो लोक हुए, लोकपाल हुए। अब इनके लिए अन्न की सृष्टि की जाय।' ३।१।

"उसने जल को तपाया। उस तपे हुए जल से एक मूर्ति उत्पन्न हुई। वह मूर्ति ही अन्न बन गई। ३।२।

"अब उस ईश्वर को चिन्ता हुई—'ये जीव मेरे बिना कैसे रहेंगे? किस मार्ग से इनके भीतर प्रवेश किया जाय? यदि वे वाणी से बोलेंगे, यदि प्राणों से अनुप्राणित होंगे, यदि आँखों से देखेंगे, यदि कानों से सुनेंगे, यदि त्वचा से स्पर्श अनुभव करेंगे, यदि मन से ध्यान करेंगे, यदि खाया हुआ अन्न अपान द्वारा पचा लेंगे और शिश्न द्वारा निकाल देंगे, तो फिर मैं कहाँ रहूँगा? (ये मुझे कैसे जानेंगे?)' ३।११।

"स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति। ३।१

"सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत। या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत्। ३।२ (ऐतरेय)

"स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति। स ईक्षत यदि वाचाभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति। ३।११ (ऐतरेय)

"स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत।"……३।१२ (ऐ०)

"फिर वह ईश्वर जीव की खोपड़ी फाड़कर उस फटे हुए मार्ग से उसमें प्रविष्ट होगया।" ....३।१२

इस प्रकार सृष्टि के सम्बन्ध में ऋग्वेद तथा उसके पीछे चलनेवाली तैत्तिरीय और ऐतरेय उपनिषदों के मत हमने जान लिये। अब इस संबन्ध में सामवेद के पीछे चलनेवाली 'छांदोग्य उपनिषद' का मन्तव्य भी जान लिया जाय :—

* "उस ईश्वर ने सोचा—'बहुत बनूँ, उत्पन्न होऊँ।' उसने तेज की सृष्टि की। तेज ने सोचा—'बहुत बनूँ उत्पन्न होऊँ।' उसने जल की सृष्टि की। इसलिए जहाँ भी कहीं गर्मी लगती है, वहाँ पसीना निकल आता है। क्योंकि तेज (गर्मी) से ही जल उत्पन्न होता है। ६।२।३

"जल ने सोचा—'बहुत बनूँ, उत्पन्न होऊँ।' उसने अन्न उत्पन्न किया। इसलिए जहाँ भी कहीं वर्षा होती है, वहाँ अन्न बहुत होता है। क्योंकि अन्न आदि जल से ही उत्पन्न हुए हैं।' ६।२।४

इन समस्त प्राणियों के तीन ही बीज (कारण) हैं—अंडज, जीवज और उद्भिज्ज। ६।३।१

"फिर उस ईश्वर ने प्रसन्न होकर सोचा—'वाह, ये तीनों

---

* "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत, तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते।" ६।२।३ (छान्दोग्य)

"ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त, तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते।" ६।२।४ (छान्दोग्य)

"तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्यण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति।" ६।३।१ (छान्दोग्य)

देवता तो मेरे ही रूप हैं ! इनमें स्वयं प्रवेश करके इन्हें नाम और रूप प्रदान करूँ ।' ६।३।२

"उनमें से एक-एक को तीनों से मिलाकर, उनमें पृथक्-पृथक् प्रविष्ट होकर उन्हें नाम और रूप प्रदान किया । अथ.तु यह 'तेज' है, यह 'जल' है, यह 'अन्न' है ऐसा कहा ।" ६।३।३

"अग्नि में जो लाल रूप देखा जाता है वह तेज का रूप है; जो शुक्ल रूप है वह जल का है, और जो काला रूप है वह अन्न का है ।"··· (इसी प्रकार अन्य वस्तुओं और जीवों के रूप के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए) ६।४।१"

आगे चल कर इसी छान्दोग्य उपनिषद् में अन्न, जल और तेज से शरीर के भीतर बनने वाले सार-तत्त्वों के बारे में नीचे लिखे अनुसार बताया गया है :—

" खाया हुआ अन्न तीन भागों में बँटता है । उसका जो अत्यन्त मोटा तत्त्व है वह 'विष्ठा' बन जाता है । जो मध्यम मात्रा का तत्त्व है उससे 'मांस' बनता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व होता है उससे 'मन' बनता है ।६।५।१

"पिया हुआ पानी भी तीन भागों में बँटता है । उसका जो अत्यन्त मोटा तत्त्व होता है वह 'मूत्र' (पेशाब) बनता है । जो

"सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ।" ६।३।२ (छान्दोग्य)

"तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ।" ६।३।३ (छान्दोग्य)

"यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्य ···"

६।४।१ (छान्दोग्य)

"अन्नमशितं त्रेधा विधीयते । तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति, यो मध्यमस्तन्मांसं, योऽणिष्ठस्तन्मनः । ६।५।१ (छान्दोग्य)

मध्यम तत्त्व होता है वह 'खून' बनता है। और जो अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व होता है वह 'प्राण' बनता है। ६।५।२

"भक्षण किया हुआ तेज (तेल, घी आदि) तीन भागों में बँटता है। जो सबसे मोटा तत्त्व है वह 'हड्डी' बन जाता है। जो मध्यम है वह 'मज्जा' बनता है। और जो अत्यन्त सूक्ष्म है वह 'वाणी' बनता है। ६।५।३

"इस प्रकार 'मन' अन्नमय होता है, 'प्राण' जलमय होता है और 'वाणी' तेजोमयी होती है।........."६।५।४

अब इस सम्बन्ध में यजुर्वेद के पीछे चलनेवाली बृहदारण्यक उपनिषद् का मत हमें जानना चाहिए :—

1"वह (ईश्वर से उत्पन्न पुरुष प्रजापति) डर गया। क्योंकि अकेले में डर लगता है। उसने सोचा—'जब मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा है ही नहीं तो मैं डर क्यों रहा हूँ!' यह सोचते ही उसका भय दूर हो गया। वह डरा ही क्यों? डर तो दूसरों से होता है।१।४।२

"उसका दिल नहीं लगा। क्योंकि अकेले में दिल नहीं लगता। उसने दूसरे की इच्छा की। वह वैसा बन गया जैसे स्त्री-पुरुष परस्पर आलिंगन में बंधे होते हैं। उसने अपने इसी

"आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते, तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति, यो मध्यमस्तल्लोहितं, योऽणिष्ठः स प्राणः।६।५।२ (छान्दोग्य)

"तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते। तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति, यो मध्यमः स मज्जा, योऽणिष्ठः सा वाक्।६।५।३ (छान्दोग्य)

"अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति......"
६।५।४ (छान्दोग्य)

1"सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति, स हायमीक्षाञ्चक्रे यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति। तत एवास्य भयं वीयाय, कस्माद्ध्यभेष्यद्, द्वितीयाद्वै भयं भवति। १।४।२ [बृहदारण्यक]

रूप को दो हिस्सों में बाँटा। उससे पति और पत्नी हुए। इसी से यह शरीर आधा भाग जैसा (किसी में से चीरा हुआ) दीखता है, ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा। उस स्त्री से शेष आधा भाग पूरा हो गया। उस पुरुष ने उससे रमण किया। इससे मनुष्य पैदा हुए।" १।४।३

[यह पुरुष कौन था, इसे स्पष्ट करते हुए श्रीशंकराचार्य ने अपने भाष्य में यों लिखा है :—* "वह 'मनु' नाम का प्रजापति 'शतरूपा' नाम की अपनी कन्या को पत्नी बनाकर मैथुन-कार्य में प्रवृत्त हुआ। इस मनु और शतरूपा के मैथुन-कर्म से मनुष्य उत्पन्न हुए। (शाङ्कर भाष्य बृहदारण्यक) १।४।३]

"वह स्त्री (शतरूपा) सोचने लगी---"कैसे यह (मनु) मुझ अपनी ही सन्तान के साथ रमण कर रहा है ! छिः! कहीं छिप जाऊँ तो ठीक। वह गाय बन गई। दूसरा (मनु) साँड बन गया। उसने रमण किया। इससे बैल-बछड़े पैदा हुए। वह घोड़ी बन गई। मनु घोड़ा बन गया। वह गदही बन गई। मनु गदहा बन गया। उसने उससे रमण किया। इससे एक खुर वाले प्राणी— घोड़े, खच्चर और गदहे पैदा हुए। फिर वह बकरी बनी, और और वह बकरा बना। फिर वह भेड़ बनी और वह भेड़ा बना।

"स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां, तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव तां समभवत्ततो मनुष्या अजायन्त।" १।४।३ (बृहदा०)

*"तां स प्रजापतिर्मन्वाख्यः शतरूपाख्यामात्मनो दुहितरं पत्नीत्वेन कल्पितां समभवन्मैथुनमुपगतवान्। ततस्तस्मात्तदुपगमनात् मनुष्या अजायन्तोत्पन्नाः।" (शांकरभाष्य--१।४।३)

दोनों ने रमण किया। इससे बकरे और भेड़ पैदा हुए। इसी प्रकार अन्य अनेक प्राणियों से लेकर चींटी तक यही सिल-सिला (नर-मादे का संयोग) जारी रहा। इस प्रकार इस सारे जीव-संसार की सृष्टि हुई।" – (बृहदारण्यकोपनिषद्—१।४।४)

सृष्टि के सम्बन्ध में भारतीय दर्शनों के मत

सृष्टि के सम्बन्ध में संक्षेप में वेद और उपनिषद के मत हमने जान लिए। अब हमें जानना है इस सम्बन्ध में भारतीय दर्शनों के मत। 'दर्शन' एक शास्त्र होता है, जिसमें संसार और समाज की रचना पर बड़ी गहराई से विचार किया होता है। 'दर्शन' शब्द का अर्थ होता है देखना, अर्थात् हर वस्तु को सही रूप में देखने और समझने का प्रयत्न करना। जिस शास्त्र में इस प्रकार के प्रयत्न किए होते हैं उसे हम 'दर्शन' कहा करते हैं। पुराने युग में भारत-वर्ष में बड़े-बड़े विचारक और चिंतक पैदा हुए। उन्होंने इस संसार को सही रूप में देखने और समझने के अनेक प्रयत्न किए। फलस्वरूप दर्शन-शास्त्र की शाखाएँ भी अनेक होती गईं। भारतीय दर्शन की इन शाखाओं में मुख्य हैं—वेदान्त और मीमांसा, सांख्य और योग, वैशेषिक और न्याय, बौद्ध, जैन तथा चार्वाक। सो, सृष्टि के सम्बन्ध में इनमें से कुछ प्रमुख मतों को ही हम यहाँ बताने जा रहे हैं।

"सो हेयमीक्षाञ्चक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा सम्भवति। हन्त तिरोसानीति। सा गौरभवदृषभ इतरस्तां समेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त। वड़वेतराभवदश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्तां समेवाभवत्तत एकशफमजायत। अजेतराभवद्बस्त इतरोऽविरितरा मेष इतरस्तां समेवाभवत्ततोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किञ्च मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत।"

—१।४।४ (बृहदारण्यकोपनिषद्)

वेदान्त और मीमांसा के मत :—

इन दोनों दर्शनों के मत वेदों और उपनिषदों के मतों से भिन्न नहीं हैं। 'मीमांसा' शब्द का अर्थ होता है 'विचार'। लेकिन मीमांसा ने सृष्टि और संसार पर विचार न करके खासकर वेदों में कहे गये यज्ञ-जाप और कर्मकाण्ड पर विचार किया है। वेदान्त शब्द का अर्थ होता है 'वेदों का निकट या वेदों के अंत में।' क्योंकि अन्त शब्द का 'समीप' और 'समाप्ति' दोनों ही अर्थ होते हैं। तात्पर्य यह कि जो दर्शन अपने विचारों में वेदों के समीप हो, अथवा उसमें उन विचारों का समावेश हो जो वेदों के अन्त में कहे गये हैं, उसे 'वेदान्त' कहते हैं। उपनिषदों में उन विचारों का समावेश है जो वेदों के अंत में कहे गये हैं। इसलिए उपनिषदें भी वेदान्त हैं और इस वेदान्त दर्शन का आधार ही वेद और उपनिषदें हैं। इस प्रकार सृष्टि के सम्बन्ध में हम वेदों और उपनिषदों के मत जान आये हैं। वेदान्त भी वही कुछ कहेगा, लेकिन फिर भी उसके कहने के ढंग में कुछ अन्तर अवश्य है। वेदान्त का कहना है कि :—

परमेश्वर ने इच्छा की—'एकोऽहं वहु स्याम प्रजायेय' अर्थात् 'मैं एक हूँ, अनेक बनूँ, उत्पन्न होऊँ।' यह इच्छा ही परमेश्वर से माया को उत्पन्न करती है। इस माया को वेदान्त में अविद्या या अज्ञान कहा गया है। इसी माया से लिपटकर वह परमेश्वर संसार की रचना में प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार मकड़ा अपना जाल अपने शरीर से निकले हुए तत्त्व से ही बुन देता है, उसी प्रकार परमेश्वर भी अपने स्वयं से निकली हुई माया रूपी जाल में उलझकर सारे संसार की रचना में लग जाता है। संसार के जितने भी जड़ और चेतन पदार्थ हैं उन सब में वह (ईश्वर) सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन

गुणों को भर देता है [1]। इन तीनों गुणों से युक्त होने के कारण वे सारे जड़-चेतन पदार्थ भी माया से लिपट जाते हैं। माया से लिपटे होने के कारण ही वे अपने को परमेश्वर से पृथक् समझते हैं। इस माया के कारण ही वे जन्म लेते हैं; बचपन, बुढ़ापा और बीमारी से पीड़ित होते हैं, और सदा के लिए जन्म और मृत्यु के चक्कर में फँसे रहते हैं। किन्तु जब उन्हें ज्ञान हो जाता है कि वे स्वयं परमेश्वर हैं, परमेश्वर से अतिरिक्त नहीं हैं, तब वे जन्म और मरण के फन्दे से छुटकारा पा लेते हैं। वे मुक्त हो जाते हैं अर्थात् स्वयं परमेश्वर बन जाते हैं। किन्तु इस प्रकार का ज्ञान मनुष्य जन्म में ही हो सकता है। इस-लिए मनुष्य को वह ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जिसके द्वारा वह अपने को पहचाने अर्थात् जीव और ईश्वर में एकता अनुभव करे। यही वेदान्त दर्शन का सार है और उसके मत में सृष्टि का सार भी।

सांख्य और योग के मत :—

सांख्य-दर्शन को महर्षि कपिल ने रचा है, और योग-दर्शन को महर्षि पतंजलि ने। संसार की रचना में इन दोनों दर्शनों के मत एक हैं। अन्तर केवल इतना है कि 'सांख्य' ईश्वर को नहीं मानता, किन्तु योग उसे मानता है। 'सांख्य' शब्द का अर्थ है 'संख्या से उत्पन्न' अर्थात् जिस दर्शन का आधार संख्या या गिनती हो उसे सांख्य दर्शन कहते हैं। क्योंकि इसमें उन तत्वों की गिनती की गई है जिनके द्वारा यह सारा संसार बना है। इसी प्रकार 'योग' का अर्थ होता है 'मेल' अर्थात् आत्मा और परमात्मा का मेल। मन को वश में कर लेने पर ही आत्मा का ईश्वर से मेल होता है। इस मेल के तरीके को इस दर्शन में बताया गया है। इसीसे इसका नाम योग है। अब इन दोनों दर्शनों के मत से सृष्टि-

---

१ इन तीनों गुणों का अर्थ सांख्य और योग के मत में देखिए।

रचना के ढंग पर प्रकाश डाला जा रहा है :—

यह बताया जा चुका है कि आधुनिक भौतिक विज्ञान (Physical Science) ६२ तत्त्वों को मानता है। इसके मतसे इन्हीं तत्त्वों से यह सारा संसार बना हुआ है। किन्तु सांख्य दर्शन केवल २५ तत्त्व मानता है जो इस सारी सृष्टि के कारण हैं। जिस प्रकार आधुनिक भौतिक-विज्ञान के सभी तत्त्व परमाणु से बने होते हैं और प्रत्येक परमाणु प्रोटन और एलेक्ट्रन से, इसी प्रकार सांख्य-योग के इन २५ तत्त्वों की रचना का भी एक निश्चित क्रम है। यह क्रम नीचे लिखे अनुसार है :—

सांख्य-योग के तत्वों का क्रम— पहले प्रकृति और पुरुष इन दो तत्त्वों का आपस में मेल होता है। इन दोनों के मेल से 'महत्' नामक तत्त्व पैदा होता है। इसी तत्त्व को 'बुद्धि' कहते हैं। फिर महत् से 'अहंकार' तत्त्व पैदा होता है। क्योंकि बुद्धि ही अहंकार की जननी होती है। फिर अहंकार से पाँच ऐसे तत्त्व उत्पन्न होते हैं जिन्हें 'तन्मात्रा' कहते हैं। इन तन्मात्राओं का वजन 'परमाणु' जितना माना गया है। इनके नाम हैं—

पृथ्वी-तन्मात्रा, जल-तन्मात्रा, तेज-तन्मात्रा, वायु-तन्मात्रा, और आकाश तन्मात्रा। और इन्हीं तन्मात्राओं से क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु और आकाश ये पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं।

'अहंकार' तत्त्व से ही ग्यारह इंद्रियें भी पैदा होती हैं। इन ग्यारह में आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा, इन पाँच को ज्ञान-इन्द्रिय कहा जाता है। क्योंकि इन्हीं इन्द्रियों से हम संसार की सभी वस्तुओं की जानकारी प्राप्त करते हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ (जननेन्द्रिय) ये पाँच कर्म-इन्द्रिय कहे जाते हैं। क्यों-

कि इनके द्वारा ही जीवन के सारे काम-काज किए जाते हैं। ग्यारहवाँ इन्द्रिय 'मन' है। यह सभी इन्द्रियों का राजा कहा जाता है। क्योंकि इसके अधीन होकर ही दसों इन्द्रियें अपना अपना काम पूरा करती हैं। यदि इन्द्रियों का मन के साथ-संयोग न हो तो हम आँखों से देखकर भी नहीं देख सकते, कानों से सुनकर भी नहीं सुन सकते। न हम जिह्वा से स्वाद ले सकते हैं, न त्वचा से स्पर्श का अनुभव कर सकते हैं।

तो संक्षेप में इन २५ तत्त्वों का क्रम इस प्रकार बैठाया जायगा—

(५) महाभूत
|
(५) तन्मात्रा
|
(१) अहंकार—ज्ञान-इन्द्रिय (५)+कर्म-इन्द्रिय (५)+मन (१)=११
(१) महत्
|
(१) प्रकृति+पुरुष (१)
२५
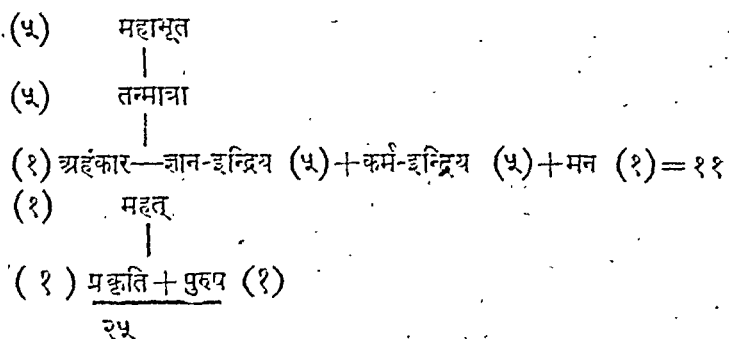
प्रकृति और पुरुष—तो, इस प्रकार सांख्यके २५ तत्त्वोंके क्रम का ज्ञान हमें हो गया, और हमने यह भी जान लिया कि इन सभी तत्त्वों के मूल में केवल दो तत्त्व हैं प्रकृति और पुरुष। सांख्य-दर्शन में बताया गया है कि इन्हीं दो तत्त्वोंके आपसी मेलसे विश्व की सृष्टि आरम्भ होती है। प्रकृति अपने-आप में बिल्कुल जड़ है, निर्जीव है। जब तक उससे पुरुष तत्त्व का संयोग नहीं होता, उसमें किसी प्रकार की गति या क्रिया उत्पन्न नहीं होती। यह पुरुष तत्त्व की ही करामात है कि वह प्रकृतिमें प्राण भरता है, उसे चेतना और क्रिया प्रदान करता है। इन्ही दोनों तत्त्वों में यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड

छिपा होता है। ये सूरज, चाँद और तारे, पृथ्वी और समुद्र इन्हीं दोनों तत्त्वों में छिपे होते हैं। लेकिन यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस सारे विश्व को अपने गर्भ में छिपा रखने वाले ये दोनों तत्त्व इतने सूक्ष्म हैं, इतने बारीक हैं कि उनके वजन या शक्ल-सूरत की कल्पना तक करना बड़ा कठिन है। पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि वह एक इंच का दस-करोड़वाँ हिस्सा होता है। और हम अभी-अभी यह भी बता आये हैं कि प्रकृति जब बढ़ते-बढ़ते तन्मात्रा-तत्त्व तक पहुँचती है तब वह 'परमाणु' जितनी बन पाती है। फिर इसी से अन्दाजा लगा सकते हैं कि यह प्रकृति कितनी सूक्ष्म होगी, और उसमें जीवन और चेतना को भरने वाला यह पुरुष तत्त्व कितना सूक्ष्म होगा!

प्रथम अध्याय में यह भी बताया जा चुका है कि यह सारा विशाल विश्व सूक्ष्म तत्त्वों से बना हुआ है। प्रोटनों और एलेक्ट्रनों की आँख-मिचौनी में ही इस विशाल सृष्टि का रहस्य छिपा हुआ है। इसी प्रकार सांख्य के मत में इस सारी विश्व-सृष्टि का रहस्य प्रकृति-पुरुष की आँख-मिचौनी में ही छिपा हुआ है। प्रकृति और पुरुष तत्त्व शायद प्रोटन और एलेक्ट्रन से भी सूक्ष्म हैं। यदि प्रोटन और एलेक्ट्रन किसी प्रकार एक-दूसरे से पृथक् हो जायँ तो जिस प्रकार संसार के निर्माण करने की उनकी शक्ति नष्ट हो जायगी, उसी प्रकार ये प्रकृति और पुरुष तत्त्व भी एक-दूसरे से पृथक् रहकर शक्तिहीन ही रहते हैं, और एक में मिलते ही उनमें वह विलक्षण क्षमता और शक्ति आ जाती है कि उनसे सारे संसार का निर्माण शुरू हो जाता है। पुरुष के बिना प्रकृति जड़ रहती है, चेतना और क्रिया से शून्य रहती है। पुरुष तत्त्व अपने-आप में चेतना का अखण्ड भण्डार छिपाए होता है। यह चेतना मानो वही बिजली है जिसे आधुनिक विज्ञान प्रोटन और

एलेक्ट्रन के नाम से पुकारता है। इसी चेतना में संसार के असंख्य जीवों के आत्मा या प्राण छिपे होते हैं। इसी पुरुष-चेतना का जब प्रकृति-तत्त्व से संयोग होता है, प्रकृति की जड़ता नष्ट होकर उसमें क्रिया आ जाती है, वह क्रियाशील बन जाती है। तब सारे संसार की रचना का सिलसिला शुरू हो जाता है।

ऊपर के कथन से इतना स्पष्ट हो गया कि पुरुष-तत्त्व चेतना का स्रोत है। यह चेतना एक प्रकाश है, बिजली है, और यह प्रकाश ज्ञान है। पुरुष मानो स्वयं ज्ञान है और इसी ज्ञान के योग से जड़ प्रकृति में क्रिया की शक्ति पैदा होती है। लेकिन फिर भी अभी यह जानना शेष रहता है कि स्वयं यह प्रकृति क्या है?

यह प्रकृति अपने-आप में जड़ और अचेतन होकर भी अनेक गुणों से युक्त है। इन गुणों की ही यह करामात है कि संसार के पदार्थों और प्राणियों में भिन्नताएँ देखी जाती हैं। ये गुण तीन हैं। इनके नाम हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। इन्हीं तीनों गुणों के समूह को 'प्रकृति' कहा जाता है। इन गुणों के अलग-अलग स्वभाव हैं, अलग-अलग धर्म हैं। 'सत्त्व' गुण का स्वाभव होता है—स्वच्छता, हल्कापन और प्रकाश। 'रजो' गुण का धर्म होता है–चंचलता और क्रियाशीलता। 'तमोगुण' का स्वभाव होता है—भारीपन और रोकने वाला। प्रकृति अपने गर्भ में इन तीनों गुणों को छिपाए संसार-रचना में लगी रहती है।

सृष्टि के हर प्राणी और पदार्थ में ये तीनों गुण मौजूद होते हैं। किन्तु उनकी मात्राएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। जिस व्यक्ति में सत्व गुण की मात्रा अधिक होती है उसका हृदय सीधा होता है; उसकी बुद्धि साफ होती है; उसका आचरण और व्यवहार स्वच्छ होता है; वह भीतर और बाहर से सुखी रहता है। जिस व्यक्ति में रजोगुण की मात्रा अधिक होती है वह चतुर-चालाक होता है; उसके भीतर चंचलता रहती है; भोग-विलास की आकांक्षा

प्रबल होती है; वह स्वार्थी होता है। जिस व्यक्ति में तमोगुण की मात्रा अधिक होती है वह आलसी और अज्ञानी होता है; अधिक झगड़ालू, क्रूर और नीच प्रकृति का होता है।

किन्तु योग-दर्शन सांख्य के २५ तत्त्वोंके अतिरिक्त ईश्वर तत्त्व को भी मानता है। उसके मतमें इसी ईश्वर की इच्छा से प्रकृति-पुरुष का संयोग होकर सृष्टि की रचना शुरू होती है। किन्तु सांख्य इस प्रकृति-पुरुष के संयोग में न ईश्वर की इच्छा को कारण मानता है, न ईश्वर को मानता है। वह मानता है कि जिस प्रकार बच्चे के निमित्त माँ के स्तन में दूध स्वयं प्रगट हो जाता है, उसी प्रकार पुरुष-तत्त्व को मोक्ष दिलाने के लिए प्रकृति स्वयं इस सृष्टि-कार्य में प्रवृत्त होती है। अर्थात् अदृष्ट (भाग्य) के वश होकर ही प्रकृति और पुरुषका आपसमें संयोग होता है। पुरुष तत्त्व को मोक्ष दिलाने से मतलब है जिस व्यक्ति को सृष्टि के इन सारे तत्त्वों का भली भाँति ज्ञान हो जाता है, मृत्यु के बाद पुनः वह जन्म नहीं लेता। अर्थात् उसके मूल तत्त्व का फिर से प्रकृति से संयोग नहीं होता।

वैशेषिक और न्याय दर्शन के मत :—

वैशेषिक दर्शन की रचना महर्षि कणाद ने की है। इस दर्शन का नाम वैशेषिक इसलिए पड़ा है कि इसके मत में इस सारी सृष्टि का जो मूल तत्त्व है, वह अन्य सभी तत्त्वों से 'विशेष' है अर्थात् उसमें अन्य सभी तत्त्वों की अपेक्षा कुछ विशेषता है। यह विशेषता यह है कि वह 'विशेष' सभी तत्त्वों से सूक्ष्म होता है। वह इतना सूक्ष्म होता है कि उसका विभाग नहीं किया जा सकता। जब सारे संसार के नष्ट होने का समय आता है अर्थात् प्रलय-काल आता है उस समय सब कुछ का नाश हो जाने पर भी इस 'विशेष' का नाश नहीं होता। यह विशेष अजर और अमर है, नित्य है। और चूँकि इसी 'विशेष' तत्त्व पर इस दर्शन

का दारोमदार है, इसीलिए इसका नाम 'वैशेषिक' है।

तो आप अवश्य उत्सुक हो उठे होंगे इस विशेष तत्त्व की जानकारी के लिए। आप अवश्य जानना चाहेंगे कि सारी सृष्टि का कर्ता-धर्ता, अतिशय सूक्ष्म और अजर-अमर यह तत्त्व आखिर है क्या चीज? पिछले अध्यायों में इस अजर-अमर तत्त्व की अनेक बार चर्चा की जा चुकी है। परमाणु के बारे में कई बार कहा जा चुका है। इसके सम्बंध में मामूली जानकारी भी दी जा चुकी है। यह 'परमाणु' ही इस वैशेषिक दर्शन का वह 'विशेष' तत्त्व है, और इसी परमाणु को लेकर इस सारे दर्शन का ताना-बाना बुना गया है। प्रथम अध्याय में ही हम बता आये हैं कि आज से हजारों वर्ष पहले महर्षि कणाद ने इस "परमाणु-वाद" की कल्पना की, जो आज के विज्ञान की कसौटी पर भी खरा साबित हो चुका है।

न्याय-दर्शन को तर्क-शास्त्र कहते हैं। इस दर्शन में तर्क अर्थात् दलीलों पर अधिक जोर डाला गया है। जिस प्रकार सृष्टि-रचना के सिल-सिले के संबंध में सांख्य और योग एक-मत हैं, उसी प्रकार इस सम्बन्ध में वैशेषिक और न्याय भी एक-मत हैं। अर्थात् जिस तरह सांख्य के मत को योग स्वीकार करता है, उसी प्रकार संसार की रचना के सम्बन्ध में वैशेषिक के मत को न्याय स्वीकार करता है। भेद केवल इतना है कि महर्षि कणाद ने 'ईश्वर' की कोई चर्चा नहीं की, जब कि न्याय के रचयिता महर्षि गौमत ने तर्कों और दलीलों से 'ईश्वर' को साबित करने की भर-पूर कोशिश की है। गौतम का मत है कि इस सारे संसार की रचना करने वाला, इसको चलाने वाला एक सर्व-शक्तिमान तत्त्व अवश्य है जिसे 'ईश्वर' कहा जाता है। उसकी इच्छा से ही मूल परमाणुओं में क्रिया आरम्भ होती है, और तब संसार की रचना का श्रीगणेश होता है। अस्तु।

अब हम वैशेषिक दर्शनके मत से सृष्टि-रचना के क्रम के सम्बन्ध में एक सामान्य जानकारी दे रहे हैं:—

महाभूतों की सृष्टि—पृथ्वी, जल, तेज, और वायु ये चार 'महाभूत' कहे जाते हैं। इन चारों महाभूतों के अपने अलग-अलग परमाणु हैं। हर प्राणी और वस्तु का अपना अदृष्ट अर्थात् भाग्य पहले से ही मौजूद होता है। उसी भाग्य के योग से परमाणुओं में क्रिया पैदा होती है। फिर दो परमाणु आपस में मिलते हैं। अर्थात् पृथ्वी-परमाणुओंमें क्रिया होने से दो पृथ्वी-परमाणु आपस में मिलेंगे जिनसे एक 'द्वयणुक' बनेगा। इस प्रकार अनेक 'द्वयणुक' बनते जायेंगे। फिर तीन द्वयणुक आपस में इकट्ठे होकर एक 'त्र्यणुक' बनायेंगे। और फिर अनेक त्र्यणुक बनते जायेंगे। फिर चार त्र्यणुक मिलने पर एक 'चतुरणुक' बनेगा। इसी प्रकार बढ़ते-बढ़ते यह सारी पृथ्वी बन जाती है।

फिर इसी क्रम से जल के परमाणुओं में हरकत होने से जल के 'द्वयणुक' बनते हैं। फिर उसके 'त्र्यणुक' और 'चतुरणुक' बनते-बनते यह सारा समुद्र बन जाता है। इसी क्रम से तेज और वायु के परमाणुओं में क्रिया होते-होते सूर्य आदि तेजस्वी ग्रह-नक्षत्र और वायु बनते हैं।

प्राणियों की सृष्टि—पृथ्वी, जल, तेज (आग) और वायु इन चार महाभूतों के परमाणुओं से प्राणियों की सृष्टि होती है। प्राणियों के शरीर में जो कान, नाक, जीभ, आँख और त्वचा ये पाँच ज्ञान-इन्द्रियें हैं उनकी रचना खास-खास परमाणुओं से होती है। पृथ्वी का अपना खास गुण होता है 'गंध'। इस गंध को नाक से जाना जाता है। इसलिये नाक की रचना पृथ्वी के परमाणुओं से होती है। जल का गुण 'रस' होता है। इसका अनुभव 'जीभ' से होता है। इसलिये जीभ की रचना जल-परमाणुओं से होती है।

'तेज' का विशेष गुण होता है रूप। इस रूप का ग्रहण 'आँखों' से होता है। इसलिए 'आँख' की रचना तेज-परमाणुओं से होती है। वायु का विशेष-गुण है 'स्पर्श'। इस स्पर्श का अनुभव त्वचा (चमड़ी) से होता है। इसलिए त्वचा का निर्माण वायु-परमाणुओं से होता है।

आकाश यद्यपि महाभूत नहीं है, किन्तु प्राणियों की सृष्टि में उसे भी कारण माना गया है। आकाश का विशेष गुण होता है 'शब्द'। शब्द कान से सुना जाता है। कान के भीतर की वह झिल्ली, जिससे शब्द सुना जाता है, आकाश का ही एक सीमित स्थान है। उसे श्रोत्र कहते हैं। इस श्रोत्र में एक विशेष प्रकार की शक्ति होती है जिसके कारण उसे शब्द सुनाई देते हैं।

आत्मा और मन—ऊपर हमने पाँच ज्ञान-इन्द्रियों की रचना के सम्बन्ध में बता दिया। इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा बाहरी वस्तुओं का ज्ञान हमें प्राप्त होता है, किन्तु ये इन्द्रियें भौतिक परमाणुओं से बने होने के कारण स्वयं भी भौतिक हैं। और जो भौतिक होता है वह जड़ होता है। और जो जड़ होगा वह ज्ञान का आधार नहीं बन सकता, क्योंकि ज्ञान तो उसको होगा जिसमें चेतना होगी। इसलिए इस शरीर में किसी चेतन तत्त्व की कल्पना आवश्यक हो जाती है। यही चेतन तत्त्व 'आत्मा' है। यह आत्मा सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखती है। सभी प्राणियों में अलग-अलग आत्मा होती है।

आत्मा सभी इन्द्रियों का संचालक है। आत्मा को ही ज्ञान भी होता है। लेकिन देखा यह जाता है कि हमारी इन्द्रियें तो एक साथ अनेक चीजों से टकराती रहती हैं, किन्तु ज्ञान हमें एक समय किसी एक ही वस्तु का होता है। सो क्यों? इससे पता

चलता है कि आत्मा के अतिरिक्त भी इस शरीर में कोई एक ऐसा तत्त्व है जो आत्मा को एक समय में किसी एक ही वस्तु पर केन्द्रित कर देता है। इसी तत्त्व को 'मन' कहते हैं। इस 'मन' का आकार 'अणु' जितना होता है। प्रत्येक प्राणी में आत्मा की तरह मन भी अलग-अलग होता है।

सृष्टि-रचना का सारांश—वैशेषिक दर्शन के एक माने हुए आचार्य हैं श्री प्रशस्तपाद। वैशेषिक दर्शन पर इनका एक भाष्य भी है, जिसमें उन्होंने सृष्टि-रचना के संबन्ध में नीचे लिखे अनुसार बताया है—

"परमेश्वर को सृष्टि करने की इच्छा होती है, क्योंकि वह प्राणियों को उनके कर्म का फल देना चाहता है। सभी आत्माओं में अपने-अपने अदृष्ट मौजूद रहते हैं। इसी अदृष्ट का संयोग होने पर पहले वायु-परमाणु में क्रिया होती है। फिर वायु-परमाणुओं से 'वायु द्व्यणुक' बनते हैं, फिर 'त्र्यणुक' और उसके बाद 'चतुरणुक'। इस क्रम से 'महावायु' उत्पन्न होकर आकाश में बड़े जोर से काँपने लगता है।

"इसके बाद इसी वायु-मण्डल के भीतर जल-परमाणुओं में क्रिया शुरू होती है। जल-परमाणुओं से क्रमशः 'महासागर' पैदा होकर सबको डुबा छोड़ता है।

"फिर इसी 'महासागर' में पृथ्वी-परमाणुओं में क्रिया होने से 'महा-पृथ्वी' पैदा हो जाती है। फिर इसी महासागर में तेज-परमाणुओं से 'महा-तेज' (सूर्य) पैदा होकर चमकने लगता है।

"इस प्रकार इन चार महाभूतों के उत्पन्न हो जाने पर ईश्वर की इच्छामात्र से तेज-परमाणु और पृथ्वी-परमाणु में संयोग होता है और इस संयोग से एक बहुत बड़ा अण्डा (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न

होता है। इसी बड़े अण्डे में सारे संसार का पितामह चार मुहों वाला ब्रह्मा पैदा होता है और उसके साथ यह सारा संसार भी। वह ईश्वर इसी ब्रह्मा को जीवों की सृष्टि के लिए नियुक्त करता है। वह ब्रह्मा ज्ञान और वैराग्य रूपी धन से भरा-पूरा होता है। इसी लिए वह सभी प्राणियों के कर्म-फल को जानता होता है। उसी के अनुरूप ज्ञान, भोग और आयु वाले पुत्रों को वह अपने मन से उत्पन्न करता है। ब्रह्मा के इन मानस-पुत्रों में प्रजापति होते हैं, मनु होते हैं, देव होते हैं, ऋषि और पितर होते हैं। फिर उस ब्रह्मा के मुख, भुजा, जांघ और पैरों से चारों वर्ण पैदा होते हैं। और फिर दूसरे ऊँच-नीच लोग भी पैदा होते हैं।

सृष्टि-रचना का यह सिलसिला वास्तव में वैशेपिक दर्शन के आधारपर नहीं है। प्रशस्तपाद ने हिन्दुओं में प्रचलित सभी रूढ़ियों और मान्यताओं को मिलाकर ऐसा अपनी ओर से ही लिखा है। सृष्टि के सम्बन्ध में हिन्दुओं का पौराणिक मत भी प्रशस्त-पाद के मत से मिलता-जुलता है।

जैन-दर्शन का मत :—

भारतवर्ष में कुछ लोग जैन मत के मानने वाले भी हैं। जैन मत अहिंसा पर अधिक जोर देता है। इस मत के अनुसार यह सारी सृष्टि पुद्गलों से बनी हुई है। 'पुद्गल' एक प्रकार का सूक्ष्म भौतिक तत्त्व है जिसमें रूप, रस और स्पर्श ये तीन गुण मौजूद होते हैं। ये ही पुद्गल जब 'अणु' रूप में आत्मा में प्रवेश करते हैं, तब संसार की रचना शुरू हो जाती है।

चार्वाक का मत :—

आज से हजारों वर्ष पहले इसी भारतवर्ष में चार्वाक नामक एक ऋषि हुआ। वह कट्टर नास्तिक था। वह धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, ईश्वर, वेद इन सभी चीजों को एक ढकोसला के सिवा और

कुछ नहीं मानता था। उसका कहना था कि यह सब कुछ पाखंड है, अपना-अपना उल्लू सीधा करने की एक चाल है। वह केवल आँखों से देखी और परेखी बात को ही सच समझता था।

चर्वाक के मत में केवल चार महाभूत हैं--पृथ्वी, जल, तेज और वायु। इनके अतिरिक्त न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा। जब ये ही चारों महाभूत आपस में मिलते हैं, जड़ और चेतन जगत् की सृष्टि शुरू हो जाती है। जिस प्रकार आवश्यक चीजों को एक साथ मिला देने से शराब बन जाती है, उसमें नशा आप-से-आप पैदा हो जाता है, उसी प्रकार इन चार महाभूतों के कीटाणु जब एकत्र हो जाते हैं, तब शरीर बन जाता है, और उसमें आप-से-आप चेतना उत्पन्न हो जाती है।

बौद्ध-दर्शन में सृष्टि का तरीका :—

भगवान् बुद्ध का नाम हम सभी जानते हैं। उन्हीं के सिद्धांतों के आधार पर बौद्ध-दर्शन का विकास हुआ है। इस दर्शन के मत में यह सारा संसार विज्ञान से उत्पन्न हुआ माना जाता है। विज्ञान कहते हैं चित्-शक्ति को। यह चित्-शक्ति एक अद्भुत शक्ति है, एक प्रकार की विद्युत्-शक्ति है। हम इस जगत् में जो कुछ भी जीवन देख रहे हैं वह इसी विज्ञान का—इसी चित्-शक्ति का प्रवाह है। विज्ञान का यही प्रवाह जीवन की जोत को जलाये रखता है।

बौद्ध-दर्शन में माना गया है कि इस सारी सृष्टि का मूल आधार 'आलय-विज्ञान' है। आलय का मतलब होता है घर। तो इस प्रकार आलय-विज्ञान का मतलब हुआ वह घर जिसमें विज्ञान (विद्युत-शक्ति) रहता है। यह आलय-विज्ञान एक महा-समुद्र है जिसमें विज्ञान की तरंगें निरन्तर चालू रहती हैं। इसी आलय-विज्ञानसे तरंगों की तरह संसार की सारी जड़-चेतन वस्तुएँ निरं-

तर प्रगट होती रहती हैं और उसी में विलीन भी होती रहती हैं।

बौद्ध-दर्शन पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार महाभूतों को मानता है। इन चारों महाभूतों के परमाणु आलय-विज्ञान रूपी समुद्र में बिखरे होते हैं। जिस प्रकार जल के समुद्र में हवा के थपेड़े खाकर एक तरंग पैदा होती है, फिर एक तरंग से दूसरी और दूसरी से तीसरी पैदा होकर तरंगों का प्रवाह निरंतर चालू रहता है, उसी प्रकार आलय-विज्ञान रूपी समुद्र में विज्ञान की प्रथम तरंग पैदा होकर दूसरी को पैदा करती है और दूसरी तीसरी को। इस प्रकार विज्ञान (विद्युत्) की तरंगें निरन्तर चालू रहती हैं। इन्हीं तरंगों के थपेड़े खाकर महाभूत-परमाणु अपने अन्य परमाणुओं से टकराते रहते हैं। फल-स्वरूप उनसे सारे संसार की सृष्टि होती रहती है।

आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा ये पाँच इन्द्रियें तथा छठा मन 'प्रवृत्ति-विज्ञान' कहे जाते हैं। इस प्रवृत्ति-विज्ञान के परमाणु भी आलय-विज्ञान में बिखरे होते हैं। प्रवृत्ति-विज्ञान के परमाणुओं से जब महाभूत-परमाणुओं का संयोग होता है तब चेतन-जगत् की सृष्टि शुरू होती है। किन्तु केवल मात्र महाभूत-परमाणुओं के आपसी संयोग से जड़-जगत् पैदा होता है।

बौद्ध-दर्शन न आत्मा को मानता है, न परमात्मा को। इन की जगह वह केवल 'मन' को मानता है। यह मन ही सब कुछ है। जगत् में जो जीवन या चैतन्य दिखाई देता है वह इस मन के कारण ही। यह मन भी नित्य नहीं है। यह मन क्रिया का, अनुभव का प्रतिक्षण बतलाता हुआ एक प्रवाह है। यह सारी चेतन-सृष्टि भी प्रतिक्षण बदल रहे मन-प्रवाह के सिवा और कुछ नहीं है।

प्रवृति-विज्ञान में से मन का प्रवाह चालू रहता है और महा-भूत-परमाणुओं से शरीर का प्रवाह। जब मन-प्रवाह का शरीर-प्रवाह से संयोग होता है, तब किसी जीव की उत्पत्ति होती है,

और जब दोनों प्रवाहों का वियोग होता है तब उस जीव का विनाश होता है।

उत्पत्ति और विनाश का यह सिलसिला भी प्रतिक्षण चालू रहता है। जैसे, एक बार दीपक जलता है। उसकी एक लौ के बुझते ही झट उसी में से दूसरी लौ पैदा हो जाती है। जब तक उसमें तेल मौजूद रहता है, चट एक लौ की उत्पत्ति और चट उसका विनाश और चट दूसरी लौ की उत्पत्ति यह सिलसिला जारी रहता है। हम उत्पत्ति और विनाश की इस क्रिया को इसलिए लक्ष्य नहीं कर पाते कि वह बहुत जल्द-जल्द हुआ करती है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता। ठीक इसी प्रकार शरीर में मन (चेतना) का प्रवाह चालू रहता है। एक मन के नष्ट होते ही झट दूसरा मन उत्पन्न हो जाता है।

इसी प्रकार जब जीव मरकर दूसरा जन्म ग्रहण करता है, एक जन्म के अन्तिम विज्ञान (मन) के नष्ट होते ही चट दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है। जिस प्रकार एक दीपक की ज्योति के योग से चट दूसरा दीपक जल उठता है, उसी प्रकार एक मन-प्रवाह से संयोग होते ही झट दूसरा शरीर प्राणवान् हो उठता है।

महाभूतों की विशेष देन—पृथ्वी-परमाणुओं से शरीर की बनावट में दृढ़ता आती है; जल-परमाणुओं से गीलापन आता है; तेज-परमाणुओं से गर्मी आती है; और वायु-परमाणुओं से श्वास एवं उत्साह आता है। इनके अतिरिक्त मन के संयोग से शरीर में गति आती है, उसमें मानसिक हरकतें पैदा होती हैं।

सृष्टि के सम्बन्ध में बौद्ध दर्शन का यही सार है।

सृष्टि के सम्बन्ध में युरोपीय दर्शनों की मान्यता

यह सारा संसार कैसे बना, इस सम्बन्ध में भारतीय दर्शनों के मत हमने जान लिए। अब हम जानेंगे इस बारे में युरोप के दर्शनों के मत। जिस प्रकार एशिया में प्राचीन भारत विचारों की मुख्य भूमि रहा, उसी प्रकार युरोप में प्राचीन युनान विचारों का प्रधान केन्द्र रहा। आज लगभग सभी युरोपीय विचार-धारा का मूल स्रोत युनान की पुरानी विचार-धारा है। युनान ने बड़ी-बड़ी प्रतिभाएँ उत्पन्न कीं। इन प्रतिभाओं ने जहाँ युरोपीय विचारों को पूर्ण रूप से प्रभावित किया वहाँ एशिया खण्ड के विचारकों पर भी उनकी छाप पड़ती रही। भारत की विचार-धारा भी उनसे अछूती न रह सकी।

अब हम संक्षेप में सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में पुराने युनानी विचारकों के मत यहाँ पेश कर रहे हैं—

थेल (६४०-५२५ ई० पूर्व) नामक युनानी दार्शनिक ने पानी को प्रथम तत्त्व माना है। इसके मत में गरजते बादल, बहती नदियाँ, लहराते समुद्र, हिलते वृक्ष, कॉपती पृथ्वी अपनी सजीवता को आप साबित करते हैं। यह सब कुछ आप-से-आप होता है, इस लिए इन वस्तुओं से परे किसी अन्तर्यामी सर्व-शक्तिमान तत्त्व की कल्पना की आवश्यकता नहीं है।

हेराक्लितु नामक विचारक के मत में यह संसार निरन्तर बदल रहा है। हर चीज हर समय दीप की लौ की भाँति नष्ट और उत्पन्न होती रहती है। वस्तुओं में किसी प्रकार की वास्तविक स्थिरता नहीं है। जो स्थिरता हमें दीखती है वह केवल भ्रम है। परिवर्तन की शीघ्रता और सदृश-उत्पत्ति के कारण ऐसा होता है। हम उसी नदी में दो बार नहीं उतर सकते, क्योंकि दूसरे और फिर दूसरे पानी वहाँ सदा बहते रहते हैं। संसार की सृष्टि उसका

नाश है, उसका नाश उसकी सृष्टि है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें स्थायी गुण हो।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि सृष्टि के संबन्ध में हेराक्लितु के विचार बौद्ध-विचार से पृथक् नहीं हैं। हेराक्लितु का समय सन् ५३५–४७५ ई० पूर्व माना गया है।

हेराक्लितु के बाद युनान में देमोक्रितु नामक एक और विलक्षण प्रतिभा पैदा हुई। यह वही विलक्षण प्रतिभा थी जो भारतवर्ष में महर्षि कणाद में पैदा हुई थी। देमोक्रितु का समय ४६०-३७० ई० पूर्व है। इसने भी परमाणु को ही इस सारे विश्व का मूल कारण माना है। इस परमाणु को युनानी भाषा में 'अतोमोन' कहते हैं जिसका अर्थ होता है अभेद्य अर्थात् जिसका विभाग न किया जा-सके। इस 'अतोमोन' शब्द से ही अँग्रेजी का 'ऐटम' (परमाणु) शब्द निकला है।

देमोक्रितु का कहना है कि परमाणु में स्वाभाविक गति होती है। परमाणु निरंतर हरकत करते रहते हैं। इस प्रकार हरकत करते रहने से उनका दूसरों के साथ संयोग होता रहता है। इस प्रकार जगत् और उसके सारे पिण्ड बनते रहते हैं।

इसके बाद सुक्रात के शिष्य अफलातूँ का स्थान आता है जिसे अँग्रेजी में प्लेटो (Plato) भी कहते हैं। इसका मत है कि संसार में दो प्रकार के तत्त्व हैं—एक विज्ञान (मन) और दूसरा भौतिक तत्त्व। सब से बड़ा विज्ञान ईश्वर है। जिस प्रकार एक मूर्तिकार मूर्ति के ढाँचे को पहले से ही अपने मन में तैयार कर लेता है, उसी प्रकार ईश्वर अपने मानसिक संसार (विज्ञान-जगत्) में मौजूद नमूने के अनुसार भौतिक विश्व को बनाता है। ईश्वर सब का जनक ही नहीं, बल्कि इंजीनियर भी है। यह ठीक है कि वह सब से बड़ा विज्ञान है, किन्तु साथ ही भौतिक तत्त्व भी पहले से मौजूद हैं। भौतिक जगत् और विज्ञान जगत ये दोनों संसार पहले से ही

विद्यमान हैं। इन दोनों में सम्बन्ध जोड़ने और भौतिक जगत् को गढ़ने के लिये एक हस्ती की जरूरत है। विधाता (ईश्वर) वही हस्ती है। वही भीतरी और बाहरी जगत् में सन्धि कराता है।

किन्तु अफलातूँ के शिष्य अरस्तू का कथन है कि मूर्ति में संगमरमर भौतिक तत्त्व है और उसके ऊपर जो आकृति लादी गई है वह 'विज्ञान' है। यह विज्ञान मूर्तिकार के दिमाग से निकला है। वनस्पति, पशु या मनुष्य में शरीर तो भौतिक तत्त्व है किन्तु उसके भीतर अनुभव और क्रिया विज्ञान तत्त्व है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु भी बिना आकृति के नहीं हैं। ये भी अपने मूल गुण खुश्की, नमी, गर्मी और सर्दी के भिन्न-भिन्न योगों से बने हैं। जिनमें वृद्धि या विकास हो सके वे भौतिक तत्त्व हैं, किन्तु यह वृद्धि या विकास भी एक सीमा के अन्दर ही होते हैं। जैसे पत्थर का खण्ड किसी प्रकार की मूर्ति तो बन सकता है, किन्तु वृक्ष नहीं बन सकता। हम जिन सभी चीजों को देखते हैं वे सब परिवर्तनशील होती हैं। भूत या विज्ञान नये तौर पर उत्पन्न नहीं होते। ये वस्तुओं के अनादि सनातन मूल तत्त्व हैं। इन मूल तत्त्वों में परिवर्तन नहीं होता। भूत और विज्ञान का जब आपस में संयोग होता है तब क्रिया और परिवर्तन आरम्भ होता है।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि युनानी 'अरस्तू' और भारतीय 'कपिल' के चिन्तन में आश्चर्यजनक समता है। और यही समता देमोक्रितु और कणाद में भी है। लेकिन यह जानकर शायद कम आश्चर्य न होगा कि भारतीय 'चर्वाक' की प्रतिभा भी युनान के प्रसिद्ध दार्शनिक 'एपीकुरु' में दिखाई देती है।

एपीकुरु का कहना है कि यह संसार भौतिक परमाणुओं की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम है। इसके पीछे कोई प्रयोजन या ज्ञान-शक्ति कार्य नहीं कर रही। ये परमाणु हर समय चलते रहते हैं। एक-दूसरे से टकराते और अलग होते रहते हैं।

इसी प्रकार इन परमाणुओं के आपस में मेल हो जाने से यह मनुष्य उत्पन्न होता है, और जब ये परमाणु एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं तब उसकी मृत्यु हो जाती है। इसलिए मनुष्य को सुख और आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न इस जीवन में ही करना चाहिए। हम अपनी इन्द्रियों द्वारा ही सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

युनान की ये ही प्राचीन विचार-धाराएँ जरा-जरा नयापन ग्रहण करती आज भी युरोप के सांस्कृतिक जीवन में प्रवाहित हो रही हैं। किन्तु साथ ही इन विचार-धाराओं में क्षीणता भी आती जा रही है। युरोप का आधुनिक पढ़ा-लिखा समाज सृष्टि के सम्बन्ध में जिस विचार-धारा को अब मानने लगा है, वह है विकास-वादी विचार-धारा जिसका संक्षिप्त परिचय दूसरे अध्याय में हम दे आए हैं।

अब हम आपको 'बाइबल' के पास ले चलते हैं। बाइबल यहूदियों और ईसाइयों का धार्मिक ग्रन्थ है। उसमें जो सृष्टि की कथा बताई गई है, उसे यहूदियों और ईसाइयों के अतिरिक्त मुसलमान भी मानते हैं।

बाइबल में सृष्टि की कथा

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी को बनाया। पृथ्वी सुनसान पड़ी थी। गहरे जल के ऊपर अन्धेरा था और परमेश्वर की आत्मा जल के ऊपर-ऊपर मण्डरा रही थी। तब परमेश्वर ने कहा 'प्रकाश होवे।' सो प्रकाश हो गया। परमेश्वर ने प्रकाश को देखकर कहा—'अच्छा है!' परमेश्वर ने प्रकाश और अन्धकार को अलग-अलग किया। उसने प्रकाश को 'दिन' कहा और अन्धकार को 'रात'। साँझ हुई, फिर भोर हुआ। इस तरह एक दिन हो गया।

"फिर परमेश्वर ने कहा—'जल के बीच ऐसा एक अन्तर हो कि जल के दो भाग हो जायँ !' परमेश्वर ने एक अन्तर करके उसके नीचे के जल और ऊपर के जल को अलग-अलग किया। और वैसा ही हो गया। परमेश्वर ने उस अन्तर को 'आकाश' कहा। साँझ हुई, फिर भोर हुआ। *इस प्रकार दूसरा दिन हो गया।*

"फिर परमेश्वर ने कहा—'आकाश के नीचे का जल एक स्थान में इकट्ठा हो और सूखी भूमि दिखाई दे !' वैसा ही हो गया। परमेश्वर ने सूखी भूमि को 'पृथ्वी' कहा और एक स्थान में इकट्ठा हुए जल को 'समुद्र'। परमेश्वर ने देखकर कहा—'अच्छा है !' फिर परमेश्वर ने कहा—'पृथ्वी पर हरी घास, बीज वाले छोटे-छोटे पेड़ और फलदायक वृक्ष हों जो अपनी-अपनी जाति के अनुसार फलें और उनके बीज उन्हीं में हों और उनमें से उगें !' वैसा ही हो गया। .... परमेश्वर ने देखा और कहा—'अच्छा है !' सन्ध्या हुई फिर भोर हुआ। *इस प्रकार तीसरा दिन हो गया।*

"फिर परमेश्वर ने कहा—'दिन और रात अलग-अलग करने के लिये आकाश में ज्योतियाँ हों। वे चिह्नों, नियत समयों, दिनों और वर्षों के मूल कारण हों, और आकाश में रहते हुए पृथ्वी पर प्रकाश भी दें !' वैसा ही हो गया। (अर्थात्) परमेश्वर ने दो बड़ी ज्योतियाँ बनाईं—सूर्य और चन्द्र। बड़ी ज्योति (सूर्य) दिन पर राज करने के लिये और छोटी ज्योति (चाँद) रात पर राज करने के लिये। तारे भी बनाये।.........साँझ हुई, फिर भोर हुआ। *इस प्रकार चौथा दिन हो गया।*

"फिर परमेश्वर ने कहा—'जल जीवित प्राणियों से भर जाय ! पक्षी पृथ्वी के ऊपर आकाश में उड़ा करें !' सो ईश्वर ने अनेक प्रकार के जल-जन्तुओं और आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को सिरजा। ईश्वर ने उन्हें देखा और आशीर्वाद दिया—

'फूलो-फलो ! समुद्र के जल में भर जाओ ! पक्षी पृथ्वी पर बढ़ें ।' साँझ हुई, फिर भोर हुआ । इस प्रकार पाँचवाँ दिन हो गया ।

"फिर परमेश्वर ने कहा—'पृथ्वी पर एक-एक जाति के जीवित प्राणी उत्पन्न हों ! अर्थात् घरेलू पशु, रेंगने वाले जन्तु और जाति-जाति के जंगली जानवर ।' वैसा ही हो गया । ...... फिर परमेश्वर ने कहा—'मैं अपने रूप में अपने समान 'मनुष्य' को बनाऊँ । वह मनुष्य समुद्र की मछलियों, आकाश के पक्षियों, घरेलू पशुओं और पृथ्वी पर रेंगने वाले जन्तुओं पर अधिकार करे !' सो परमेश्वर ने मनुष्य को अपने रूप के अनुसार बनाया । नर और नारी के रूप में, परमेश्वर ने उन्हें आशीर्वाद और आदेश दिया— 'फूलो-फलो ! सारी पृथ्वी में भर जाओ ! इसको अपने वश में करलो ! समुद्र की मछलियों, आकाश के पक्षियों और पृथ्वी पर रेंगने वाले जन्तुओं पर अधिकार करो !' फिर परमेश्वर ने उनसे कहा—'सुनो ! जितने बीज वाले छोटे-छोटे पेड़ सारी पृथ्वी पर हैं, वृक्षों में जितने बीज वाले फल हैं, सो सब मैंने तुम्हें दिये । वे तुम्हारे भोजन के लिये हैं । पृथ्वी के पशुओं, अकाश के पक्षियों और पृथ्वी के रेंगने वाले जन्तुओं के खाने के लिये हरे-हरे छोटे पेड़ दिये हैं ।' वैसा ही हो गया । परमेश्वर नें अपनी बनाई हुई हर चीज को देखा । उसे बड़ा अच्छा लगा । साँझ हुई, फिर भोर हो गया । इस प्रकार छठा दिन हो गया ।

"इस प्रकार आकाश और पृथ्वी, और उनकी सारी सेना की सृष्टि समाप्त हुई । सातवें दिन ईश्वर का अपना काम समाप्त हुआ । उसने सातवें दिन अपने किये हुए कार्य से विश्राम लिया । परमेश्वर ने 'सातवें दिन' को आशीर्वाद देकर पवित्र ठहराया, क्योंकि उस दिन उसने सृष्टि के कार्य से अवकाश लिया था ।"

तो ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट हुआ कि इस सारी दुनिया की रचना ईश्वर ने सात दिन के भीतर पूरी कर दी। आगे बाइबल में मनुष्य की उत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए यों बताया गया है

"यहोवा (परमेश्वर) ने 'आदम' (प्रथम पुरुष) को मिट्टी से बनाया और उसकी नथनों में जीवन का श्वास फूँक दिया। इस प्रकार आदम जी उठा!.......यहोवा (ईश्वर) ने आदम को अदन के बाग में रख दिया और आदेश दिया —'तू सभी वृक्षों के फल बेखटके खा सकता है, किन्तु भले-बुरे के ज्ञान के वृक्ष का फल न खाना। यदि तू खायेगा, उसी दिन मर जायेगा।'

"फिर ईश्वर ने आदम के लिए एक सहायक उत्पन्न करने की सोची। ऐसा सहायक जो उससे मेल खाये।......ईश्वर ने आदम को भारी नींद में डाल दिया। सोये हुए आदम की एक पसली निकालकर उस पसली को स्त्री बनाकर आदम के सामने पेश किया। आदम ने उसे देखकर कहा—'यह मेरी हड्डियों की हड्डी और मांस का मांस है। इसका नाम 'नारी' होगा, क्योंकि यह नर में से निकाली गई है।'

"ये दोनों स्त्री-पुरुष नंगे थे। उन्हें लाज बिल्कुल नहीं लग रही थी। आदम ने अपनी इस पत्नी का नाम 'हौवा' रखा। 'हौवा' का अर्थ होता है 'जीवन'। क्योंकि जितने मनुष्य जीते हैं उन सब की आदि माता वही है।

"एक दिन हौवा अदन के बाग में घूम रही थी। शैतान सर्प का रूप धरकर हौवा को फुसलाने लगा। उसे पास बुलाकर उस फल के लिये ललचाने लगा जिसे खाने के लिए ईश्वर ने मना कर दिया था। वह लालच में आ गई। स्वयं फल खाया और पति को भी खिला दिया।

इसके बाद उस बाग में टहलते हुए आदम और हौवा ने ईश्वर की आवाज सुनी। वे डर गये! डरकर वृक्ष की आड़ में

जा छिपे। दंड के रूप में ईश्वर ने उन्हें संसार में भेज दिया। यहाँ मेहनत करके अपना जीवन कायम रखने के लिए उन्हें मजबूर होना पड़ा।"

बाइबल के इस मत से कुरान भी सहमत है यह हम बता आये हैं। बाइबल के अनुसार इस सृष्टि का निर्माण एकाएक सन् ४००४ ई० पू० में हो गया। अर्थात् इसके मत से पृथ्वी को उत्पन्न हुए अभी पूरे ६ हजार वर्ष भी नहीं हुए।

सृष्टि के सम्बन्ध में चीन की पौराणिक कथा

चीन एशिया खण्ड का सब से बड़ा देश है। उसकी संस्कृति और सभ्यता उतनी ही प्राचीन है जितनी कि भारत-वर्ष की। सारे संसार के मनुष्यों का लगभग चौथाई हिस्सा अकेले चीन में ही निवास करता है। यह सही है कि सांस्कृतिक दृष्टि से चीन भारत का ऋणी है। भारत में पैदा हुआ बौद्ध-धर्म सैकड़ों-हजारों वर्षों से चीन का समाजिक-धर्म बना हुआ है। किन्तु फिर भी चीन की अपनी राष्ट्रीय-सभ्यता है, संस्कृति है। उसकी अपनी पुरानी मान्यताएँ भी हैं।

सृष्टि के सम्बन्ध में उसकी पुरानी मान्यता नीचे लिखे अनुसार है—

"इस सारी सृष्टि को 'प-आनकू' नामक देवता ने रचा है। उसने विराट् आकाश में जगत् की रचना की। इस विशाल आकाश में बड़े-बड़े पत्थर-पहाड़ तैर रहे थे। महापुरुष प-आनकू ने हथौड़े और छेनी से इन पत्थरों को काट-काटकर चन्द्रमा, सूर्य और तारों की रचना की। लगातार १८ हजार वर्षों तक कठोर परिश्रम करता हुआ प-आनकू सृष्टि की रचना करता रहा। लेकिन फिर भी वह पूरी नहीं हो पा रही थी। वह प्रति दिन अपने शरीर को चार हाथ बढ़ा लेता, लेकिन फिर भी उसका काम पूरा

नहीं हुआ। अन्त में सृष्टि को पूरा करने के ख्याल से प-आन्क्रू ने अपनी बलि दे दी। फलस्वरूप इस पृथ्वी की सृष्टि हुई। प-आन्क्रू के मस्तक से पहाड़ बना। उसकी साँसों से बादल और वायु बने। कंठ की ध्वनि से बिजली की कड़क निकली। उसके अंग-प्रत्यंग जल और थल में विलीन हो गये। उसकी नाड़ियों से नदियाँ निकलीं और महानाड़ियों से ऊबड़-खाबड़ भूमि। उसके मांस-पिण्ड से हरे-भरे खेत पैदा हुए। उसके सारे शरीर से आकाश के तारे, पृथ्वी के पेड़-पौधे, धातु-पत्थर और हीरा-मोती आदि उत्पन्न हुए। प-आन्क्रू के शरीर से लगे हुए कीड़े-फतिंगों से मनुष्य बना, मनुष्य उत्पन्न हुआ।

आदि मानव

[४]

यह पहले बताया जा चुका है कि मनुष्य इस पृथ्वी पर अन्य सभी जीवों के बाद में आया। लेकिन जब वह पहले-पहल यहाँ आया, किस रूप में आया? उसकी शक्ल-सूरत और स्वभाव, उसके रहन-सहन क्या आज के ही मानव-जैसे थे? क्या वह भी आज के ही मानव-जैसा धर्म और सदाचार की बातें किया करता? दर्शन और विज्ञान की दिमागी दुनिया में दौड़ लगाता? राजनीति और कूटनीति की चालों से सब को चका-चौंध में डालता? ऐसे प्रश्न स्वभाव से ही हमारे-आप के दिमाग में उठा करेंगे और इनके ठीक-ठीक जवाब भी हम जानना चाहेंगे।

आदि मानव के सम्बन्ध में खोज और शोध:—

सन् १८३० ई० में डेनमार्क-निवासी श्री सी० जे० टाम्सेन ने अपने देश के अनेक पुराने टीलों को खुदवाया। इस खुदाई में उन्हें पुराने युग के अनेक अस्त्र-शस्त्र, गहने और बर्तन-भाण्डे के अतिरिक्त कई नर-कंकाल भी प्राप्त हुए। उन्होंने इन सब की परीक्षा करके इन्हें तीन भागों में बाँटा—(१) वे चीजें, जो धातु की बनी न थीं; (२) वे चीजें, जो ताँबा-पीतल आदि धातु की बनी थीं; और (३) वे चीजें, जो लोहे की बनी थीं।

इसके बाद डेनमार्क में अनेक स्थानों पर खुदाई हुई। खुदाई में पहले तो लोहे की चीजें मिलीं। उसके बाद ताँबा-पीतल की चीजें, और फिर उसके नीचे खुदाई होने पर पत्थर की चीजें। इसी

खुदाई में मनुष्य की खोपड़ी और पथराई हुई हड्डियाँ भी मिलीं। इस आविष्कार ने युरोप में तहलका मचा दिया। लोग सोचने पर मजबूर होने लगे कि आदि मानव-जाति का आदि इतिहास कहीं इसी पृथ्वी के गर्भ में छिपा हुआ है।

फ्रांस में भी इस दिशा में अनुसंधान हो रहे थे। फ्रांसीसी विद्वानों ने दक्षिण फ्रांस के 'क्रोमेग्नन' नामक स्थान में पचीस-तीस फुट नीचे जमीन में अनेक गुफा-घरों का पता लगाया। इन घरों में जहाँ अनेक नर-कंकाल प्राप्त हुए वहाँ घर-गृहस्थी के काम में आने वाले अनेक साज-सामान भी। इनमें लकड़बग्घा, भेड़िया, बारहसिंगा और भालू आदि की अस्थियाँ भी प्राप्त हुईं।

विद्वान् टाम्सेन ने अपनी खोज के आधार पर मानव के आदि इतिहास को तीन कालों में बाँटा था—(१) पाषाण-युग, (२) ताम्र-युग, और (३) लौह-युग। किन्तु फ्रांस के इन गुफा-घरों में प्राप्त वस्तुएँ पाषाण-युग से भी पुरानी मालूम हो रही थीं। इसलिए कुछ विद्वानों ने प्रस्तर-युग को भी दो भागोंमें बाँट दिया—(क) 'प्राचीन पाषाण-युग' और (ख) 'नवीन पाषाण-युग'।

जो भी हो, फ्रांस के इस आविष्कार ने संसार भर के विद्वानों में खलबली पैदा कर दी। वे अब बड़े मनोयोग से आदि-मानव के इतिहास की खोज में लग पड़े। मिस्र, ट्युनिशिया, दक्षिण अफ्रीका, सुमाली लैंड, ब्रिटेन, भारत, हिन्द चीन आदि देशों में पचास, सौ, और कहीं-कहीं चार-चार सौ फुट नीचे भूमि में पत्थर के अनेक हथियार प्राप्त होने लगे। इन वस्तुओं के आधार पर आदि मानव के सुदूर इतिहास को सुनिश्चित करने के प्रयत्न किए जाने लगे। विद्वानों ने निश्चित किया कि मनुष्य जब इस पृथ्वी पर पैदा हुआ, आरंभ में उसने हथियार के रूप में वृक्षों की टहनियों और पत्थरों का व्यवहार किया। फिर उसने ताँबा

बनाना सीखा, और उसके बाद लोहे का व्यवहार चालू हुआ। इन धातुओं के आविष्कार से लेकर वर्ण-माला के आविष्कार से पहले तक के समय को "प्रागैतिहासिक युग" अर्थात् "इतिहास से पहले का युग" कहा जाता है।

आदि मानव के अवशेष :—

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट हो गया कि आदि मानव का इतिहास पृथ्वी के गहरे गर्भ में छिपा हुआ है। जब मनुष्य पृथ्वी पर आया, तो आरंभमें उसके व्यवहार का मुख्य साधन पत्थरों के औजार रहे। वह गुफाओं में रहा करता था, या खुले-फैले मैदानों में। फिर उस आदि मानव की शक्ल-सूरत के संबन्ध में भी जानकारी मिली। सन् १८६१ ई० में जावा के त्रिनील नामक इलाके में 'सोला' नदी के पेटे में से एक ऐसी पुरानी 'खोपड़ी' प्राप्त हुई जो नर और वानर दोनों की खोपड़ी से मिलती-जुलती थी। विद्वानों ने इसपर काफी सोचा-विचारा और अन्त में निश्चय किया कि यह 'खोपड़ी' मनुष्य की ही हो सकती है। गुरिल्ला, ओरांग ओटाङ्, शिम्पांजी और गिब्बन जाति के बन्दर मनुष्य से अधिक मिलते-जुलते हैं। इनकी खोपड़ी के साथ उस खोपड़ी का ठीक से मेल नहीं बैठा। किन्तु अंडमान और आस्ट्रेलिया के जीवित आदि-वासियों की खोपड़ी से उसका

मानव के रूप की ओर बढ़ता हुआ बंदर

मेल बहुत कुछ बैठ गया। इससे अनुमान किया गया कि वे आदि मानव किसी समय एक बहुत बड़े भू-खण्ड में बसते थे और यह भूखण्ड किसी अत्यन्त प्राचीन काल में भारतवर्ष, मैडागास्कर और दक्षिण अफ्रीका तक फैला हुआ था। उन दिनों इन देशोंके बीच समुद्र नहीं था।

जावा-मनुष्य की खोपड़ी जिन चट्टानों के स्तर में प्राप्त हुई उससे उसका समय ५ लाख वर्ष पूर्व आँका गया है। यह भी अनुमान किया गया है कि यह जावा-मनुष्य ही सबसे पुराना आदि मानव है।

मानव के रूप में बदलता हुआ बंदर

जर्मनी के हेडेलबर्ग नामक स्थान में ८० फुट धरती के नीचे मानव का एक जबड़ा मिला। उसमें केवल निचला जबड़ा और दाँत ही सही-सलामत थे। उसके दाँत तो बिलकुल मनुष्यें-जैसे थे, किन्तु जबड़ा मानुष और वनमानुष के बीच का था। इस खुदाई में से अस्त्र-शस्त्र और दूसरे सामान प्राप्त हुए, वे बहुत ही बड़े-बड़े थे। इससे पता चला कि यह 'हेडेलबर्ग-मानव' शरीर से काफी बड़ा रहा होगा। उसका विशाल जबड़ा भी इस बात की गवाही देता था। शायद उसके शरीर पर बड़े-बड़े बाल रहे हों, उसका चेहरा भी बड़ा भयानक रहा हो। इस मानव का समय तीन लाख वर्ष पूर्व आँका गया है।

इसी प्रकार सन् १९२४ ई० में दक्षिण अफ्रीका के हार्ट्स

उपत्यका में एक अवशेष मिला जिसे विद्वानों ने मानुष और वन मानुष के बीच का बताया। सन् १९२९ ई० में चीन की राजधानी पेकिंग नगर से कुछ मील दूर गुफा-घरों की खुदाई में मनुष्य की एक ऐसी खोपड़ी मिली जो जावा-मनुष्य की खोपड़ी से बहुत कुछ मिलती थी। इसका समय ढाई लाख वर्ष पूर्व बताया जाता है।

बंदर जब मनुष्य बन गया

फिर जर्मनी के डसलडोर्फ नगर के निकट 'निअंडर्थल' नामक स्थान में कुछ मानव-अवशेष मिले। बाद में इसी प्रकार के अवशेष युरोप के अन्य हिस्सों में भी प्राप्त हुए। इस मानव का नाम 'निअंडर्थल-मानव' रखा गया। यह कद में छोटा, किन्तु शरीर से मजबूत था। चलने-फिरने में उसका कंधा अभी हमारे जैसा सीधा न होकर कुछ झुका हुआ था। उसकी शक्ल-सूरत पशुओं जैसी भयानक थी। मस्तक उसका आज-कल के कितने ही मनुष्यों से बड़ा था, लेकिन मस्तिष्क इतना विकसित नहीं था। यह मानव हाथी-दाँत, हड्डी और चकमक पत्थर के अच्छे गहने और हथियार बना सकता था। वह आग का इस्तेमाल जानता था और अपने मुर्दों को बड़े समारोह से दफनाता था। विद्वानों का अनुमान है कि मनुष्य जाति की आधुनिक शाखा से इस मानव का सम्बन्ध नहीं है। यह जाति बिना सन्तान छोड़े ही इस पृथ्वी से समाप्त हो गई। जिन स्तरीय चट्टानों में इनके

अवशेष मिले इनसे अनुमान किया गया कि यह जाति आज से लगभग ५० हजार वर्ष पहले पृथ्वी पर मौजूद थी।

आदि मानव

इस निअंडर्थल-मानव की खोपड़ी की परीक्षा करने पर यह मालूम हुआ कि यह मानव भी आज के मानव की तरह मुख्यतः दाएँ हाथ से काम लिया करता था। क्योंकि इसके मस्तिष्क का बायाँ भाग दाहिने भाग से अधिक बड़ा था। क्योंकि बाँए भाग के मस्तिष्क से शरीर के दाहिने भाग को प्रेरणा मिलती है, तथा दाहिने भाग के मस्तिष्क से बाएँ भाग को। इस मानव के मस्तिष्क का पिछला हिस्सा अधिक विकसित था। फलस्वरूप इसकी दृष्टि काफी तेज थी। स्पर्श करने की तथा शरीर को संचालित करने की शक्ति भी अच्छी थी। विचार और वाणी को प्रेरित करने वाला मस्तिष्क का अगला भाग काफी छोटा था। इससे अनुमान किया जाता है कि यह मानव बोलता नहीं था, अथवा बहुत कम बोलता था। इसके पास भाषा नाम की चीज नहीं थी।
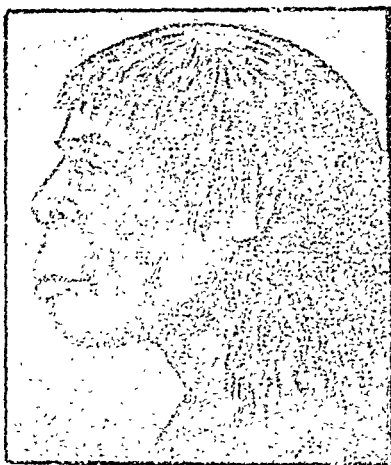
आदि मानव का रहन-सहन :—

विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि ये आदि मानव झील, नदी, तालाब या झरने आदि के पास रहा करते थे। आग इनके लिए बड़ी कीमती चीज थी। रात को आग के चारों ओर पत्थी मारकर ये बैठा करते थे। चकमक पत्थर की रगड़ से या किसी धातु के टुकड़े की रगड़ से ये आग पैदा करते थे। इसी आग के चारों

आदि मानव के हथियार
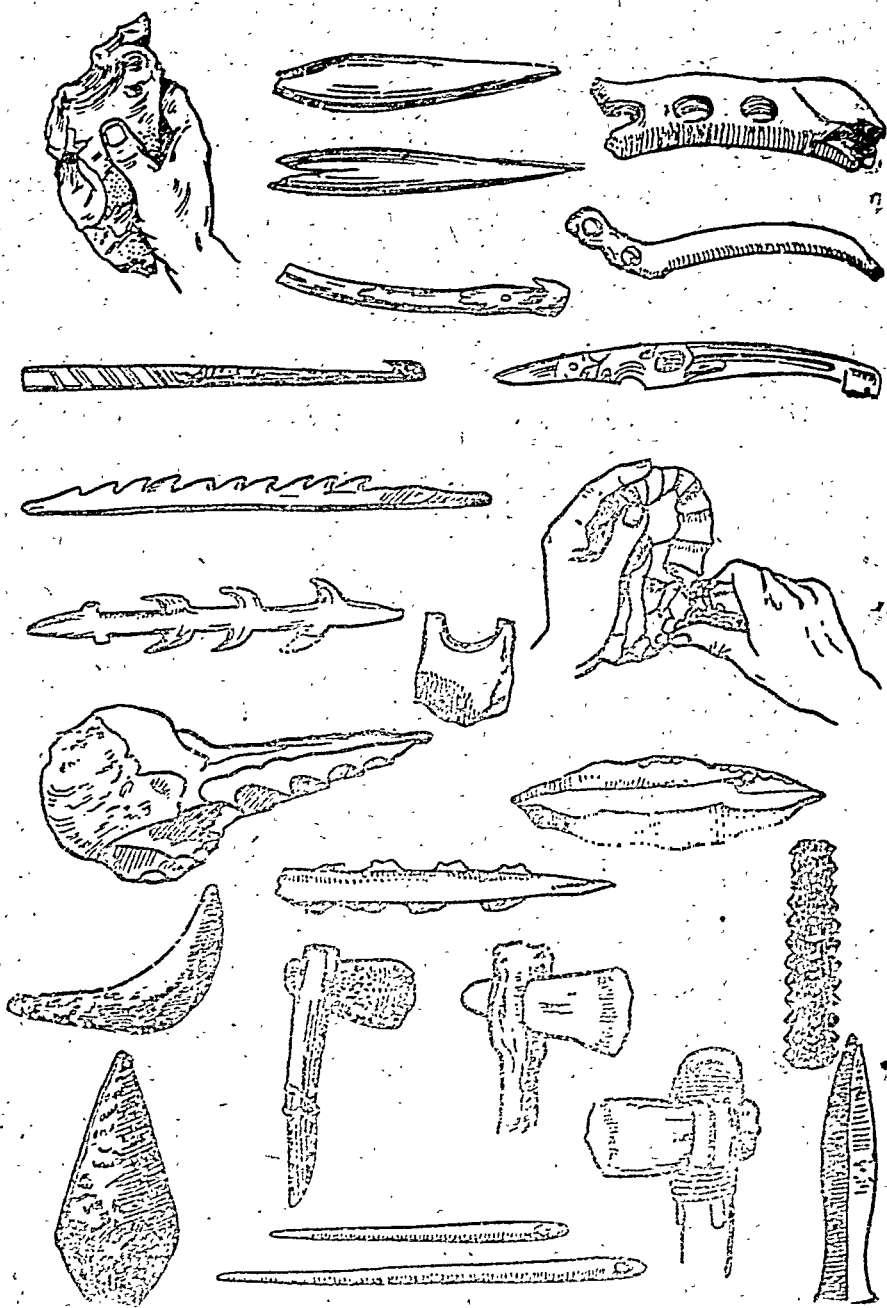
ओर बैठकर ये भोजन करते थे। ये शाकाहारी भी थे, मांसाहारी भी। हिरन, सियार और खरगोश आदि छोटे-छोटे जानवरों का शिकार करते थे। बाघ, शेर, महागज (Mammoth) आदि बड़े-बड़े जानवरों को ये स्वयं नहीं मार सकते थे, क्योंकि इनके पास उन्हें मार सकने योग्य उन्नत हथियार नहीं थे। पत्थर के नुकीले वल्लम, बर्छी, लाठी या पत्थर के टुकड़े ही इनके हथियार थे जिनसे शिकार खेला करते थे। स्वयं मरे हुए बड़े जानवरों के मांस अवश्य खा लेते थे। जंगलों में इन्हें अखरोट आदि अनेक प्रकार के सूखे फल प्राप्त होते थे। जंगली शहद भी खाते थे। कई दिनों के बासी और दुर्गन्ध-युक्त मांस भी बड़ी आसानी से खा जाते थे। जानवरों के खाल ओढ़ने और बिछाने के काम में लाते थे।

ऊपर के वर्णन से निअंडर्थल मानव के रहन-सहन का एक हल्का-सा आभास हमें मिला और यह भी पता चल गया कि आदि मानवों में सबसे पुराना मानव 'जावा-मानव' माना जाता है। इसका समय लगभग ५ लाख वर्ष पूर्व आँका गया है। इसके बाद जर्मनी के 'हेडेलबर्ग-मानव' का युग आता है। इसका समय लगभग ३ लाख वर्ष पूर्व कहा जाता है। फिर इसके बाद चीन के 'पेकिंग-मानव' का काल है जो लगभग ढाई लाख वर्ष पूर्व माना गया है। इसके बाद जर्मनी का 'निअंडर्थल-मानव' इस पृथ्वी पर पैदा हुआ जो ५० हजार वर्ष पूर्व तक युरोप के
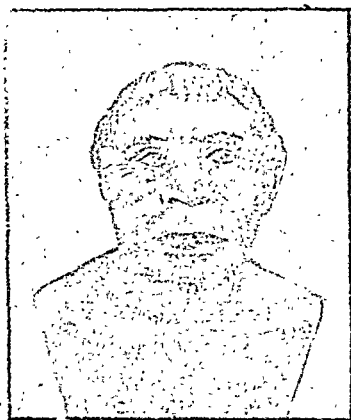
निअंडर्थल मानव

निअंडर्थल का अधिक विकसित रूप

भिन्न-भिन्न भागों में फैला रहा। लाखों वर्षों की इस विशाल अवधि में ये सारे मानव इस पृथ्वी पर आये, लाखों-हजारों वर्षों तक कायम रहे, फिर किन्हीं विशेष प्राकृतिक कारणों से समूल विनष्ट भी होते गये। लेकिन इतने लम्बे समय से गुजरकर भी, ये मानव पूरा मानव नहीं बन सके थे। वे अर्ध-मानव ही रहे। इस बीच वे नर-वानर के बीच की स्थितियों में चक्कर काटते रहे। किंतु क्रमशः वे पूर्ण मानव की ओर भी बढ़ते रहे। फलस्वरूप 'निअंडर्थल-मानव' पूर्ण मानव के कहीं अधिक निकट पहुँचा हुआ माना गया है। ये सारी मानव जातियाँ चूँकि पत्थर के बने औजार ही काम में लाती थीं, इसलिए विद्वानों ने लाखों वर्षों के इस लम्बे युग को 'प्राचीन पाषाण-युग' नाम दिया है।

नवीन पाषाण-युग के मानव :—

'प्राचीन पाषाण-युग' के बाद जो युग आता है उसे 'नवीन पाषाण-युग' के नाम से पुकारा जाता है। इस युग में निअंडर्थल-मानव से बिल्कुल भिन्न एक नए मनुष्य का इस पृथ्वी पर आगमन हुआ जिसे वास्तविक मानव माना गया है। यह मानव अपने शरीर की बनावट या शक्ल सूरत में आज के मानव से बिल्कुल मिलता था। इसके मस्तिष्क की बनावट भी वैसी ही थी, जैसी कि आज के मनुष्य की है। इसका चेहरा सुन्दर था। मस्तिष्क में सोचने-

विचारने की क्षमता थी। अपने भावों को वाणी द्वारा व्यक्त करने की शक्ति थी। लेकिन यह मानव भी पत्थर के ही औजार का उपयोग करता था। अभी तक वह ताँबे या लोहे से परिचित नहीं हुआ था। नींडर्थल-मानव से इसके औजार काफी विकसित, सुघड़ और सुन्दर थे। इसीलिए इस युग को 'नवीन पाषाण-युग' कहा जाता है। पाषाण के ये दोनों ही युग आदि मानव के युग हैं।

इस वास्तविक मानव को विद्वानों ने 'होमोसपियन (Homosapien)-मानव' नाम दिया है। आज संसार के जितने भी मानव हैं, उनकी जितनी भी जातियाँ और उपजातियाँ हैं, वे सब इसी 'होमोसपियन-मानव' से विकसित हुई हैं। उनकी आकृति-प्रकृति और रहन-सहन में जो अन्तर देखा जाता है वह भिन्न-भिन्न स्थान के भिन्न-भिन्न वातावरण के कारण। लेकिन फिर भी यह पूछा जा सकता है कि ये होमोसपियन-मानव आरंभमें पैदा कहाँ हुए? ये किसी एक ही स्थान पर उत्पन्न होकर भिन्न-भिन्न स्थानों में फैले, अथवा भिन्न-भिन्न स्थानों में अलग-अलग ही उत्पन्न हुए?
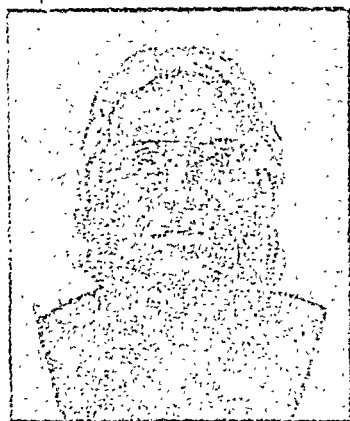
होमोसपियन मानव

इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ये वास्तविक मानव किसी एक ही स्थान में पैदा होकर विभिन्न स्थानों में फैले। कुछ लोगों का मत है कि ये वास्तविक मानव लगभग ५०

हजार वर्ष पहले पश्चिमी एशिया में (ईराक-ईरान के मैदान में), उत्तरी अफ्रीका में, तथा उन स्थानों में जो आज भूमध्य सागर में डूबे हुए हैं उत्पन्न हुए। कुछ विद्वान् मध्य ऐशिया को ही इनका मूल स्थान मानते हैं, लेकिन यह सब अधिकतर अनुमान-ही-अनुमान है। अभी अनेक नये-नये तथ्यों का प्रकाश में आना बाकी है।

पहले बताया जा चुका है कि दक्षिण फ्रांस के क्रोमेग्नन नामक स्थान में (सन् १८६८ ई० में) २५-३० फुट नीचे धरती में अनेक गुफा-घर मिले और उनमें अनेक नर-कंकाल तथा पत्थर के औजार भी। वे नर-कंकाल इन्हीं होमोसपियन जाति के मनुष्यों के थे जिन्हें 'क्रोमेग्नन-मानव' भी कहा जाता है। इसी जाति के कुछ और अवशेष ग्रिमाल्डी नामक स्थान में प्राप्त हुए। इन्हें 'ग्रिमाल्डी मानव' कहा जाता है। इस प्रकार 'होमोसपियन-मानव' की दो शाखाएँ हुईं—(१) 'क्रोमेग्नन-मानव' और, (२) ग्रिमाल्डी-मानव।

क्रोमेग्नन-मानव ६ फुट से भी अधिक लम्बे होते थे। क्रोमेग्नन स्त्रियाँ आज की स्त्रियों से कहीं अधिक लम्बी होती थीं। इनके मस्तिष्क की बनावट आज के मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित पाई गई है। वाणी, बुद्धि और स्मरण-शक्ति का विकास उनमें अधिक पाया गया है। लेकिन फिर भी ये गुफाओं में ही रहा करते थे। खेती-बाड़ी और पशु-पालन के काम से अपरिचित थे। जंगली जानवरों और मछलियों का शिकार करके निर्वाह करते थे। इनके हथियार यद्यपि पत्थर के थे, किन्तु काफी सुघड़ और मजबूत थे। इन हथियारों से वे भीमकाय महागजों, विकराल आकृति के बाघों और शेरों तक के शिकार करते। उनके मांस खाते। जंगली भैंसों, रीछों, बारहसिंगों और घोड़ों को भी मारकर खा जाते। इन्हें अनेक रंगों का पता भी लग चुका था। चित्र बनाने में उन रंगों का व्यवहार करते। वे बड़े ऊँचे दर्जे के

चित्रकार थे। अपनी गुफा की दीवारों में अनेक जंगली जानवरों के चित्र खोदते, उनमें रंग भी भरते। हड्डियों पर खुदाई करके चित्र बनाते। इन चित्रों में अधिकतर महागज, हाथी, घोड़ा, बारह-सिंगा, रीछ और जंगली भैंसों के हैं। मनुष्य का चित्र ये नहीं बनाया करते थे। ये अपने शरीर भी रंगते और मुर्दों को दफनाते समय अनेक रंगों से उनका शरीर भी रंग देते। कब्र में उनके साथ भोजन, गहने और हथियार भी रखा करते। ये जानवरों के खाल ओढ़ते और पहनते भी। शायद ये मांस को आग में भूनकर खाते।
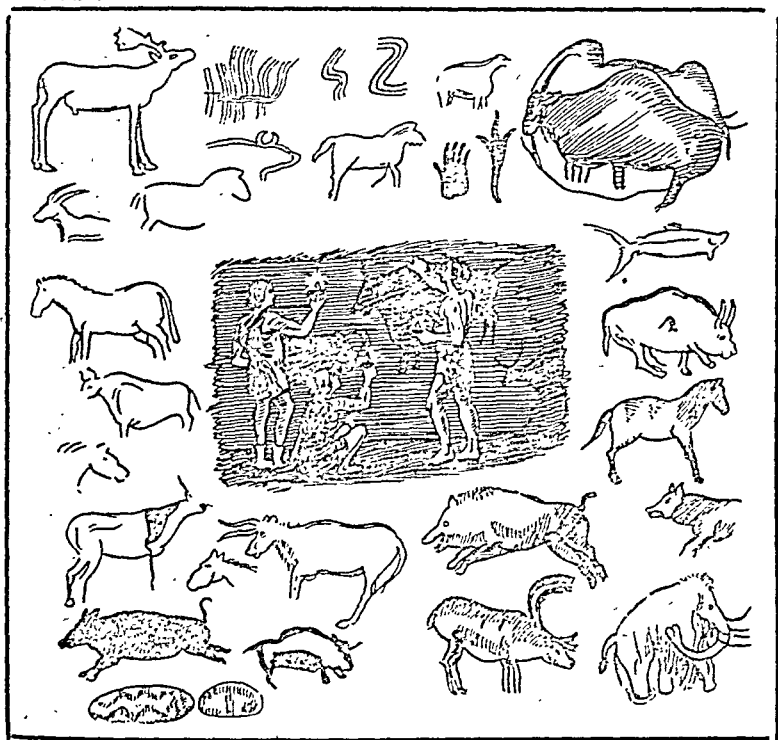
आदि मानव अपने गुफा-गृह की दीवार पर चित्र बना रहे हैं।

आदि मानव (होमोसपियन) का रहन-सहन

यह तो होमोसपियन जाति के 'क्रोमेग्नन' शाखा की बात हुई। इसकी दूसरी शाखा 'ग्रिमाल्डी' मानवों के सम्बन्ध में अभी विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ लोग इसे क्रोमेग्नन से प्राचीन मानते हैं, और कुछ लोग नवीन। हब्सी जाति के लोग इसी ग्रिमाल्डी शाखा से माने जाते हैं। इस शाखा की खोपड़ी की बनावट भी क्रोमेग्नन-मानव के समान है। इसमें भी बुद्धि, वाणी और स्मरण शक्ति का विन्यास वैसा ही है जैसा कि क्रोमेग्नन-मानव की खोपड़ी में है। ग्रिमाल्डी शाखा के लोगों के बाहरी रंग-रूप और आकृति में जो दूसरे मानवों से बहुत-कुछ अन्तर देखा जाता है, उसमें जल-वायु और वातावरण भी बड़ा कारण है।

इस 'नवीन पाषाण-युग' के मनुष्यों का समय आज से लगभग १० हजार वर्ष पूर्व तक माना गया है।

जंगली भैंसा (बिसन) जिसे आदि मानव पाला करते थे

मानव की चेतना और संस्कृति का क्रमिक विकास

[५]

मानव और दूसरे प्राणियों में भेदः—

पहले यह बताया जा चुका है कि मनुष्य का मस्तिष्क अन्य सभी प्राणियों के मस्तिष्क से अधिक विकसित होता है। इस विकसित मस्तिष्क की पूँजी के बल पर ही वह अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ समझा जाता है। जब वह पृथ्वी पर पहले-पहल प्रगट हुआ, तो उसकी आँखों ने आस-पास की चीजों को अवश्य देखा होगा। घने-घोर जंगल, ऊँचे-नीचे पहाड़, झर-झरकर बहते हुए झरने और कल-कलकर बहती हुई नदियाँ, तथा दिशाओं के ओर-छोर तक लहराते हुए विशाल सागर तो उस आदि मानव के लिये और भी आश्चर्यजनक रहे होंगे! और उस समय के भाँति-भाँति के भयंकर और विकराल जीव-जंतु तो और भी भयजनक रहे होंगे! महागजों[1] की भयानक चिग्घाड़, और भीमकाय शेरों की दहाड़, तथा तलवार जैसे दाँतों वाले बाघों और गैंड़ों की गुर्राहट, और रीछों तथा भेड़ियों की हिंसा-भरी चितवन लगातार उनके हृदय में आतंक का संचार कर रहे होंगे! इसी प्रकार हिरनों, बारहसिंगों, जंगली गायों, भैंसें, घोड़ों और बंदरों को भी बड़े कौतूहल से वे देखा करते होंगे!

---

[1] प्राचीन युग के विकराल हाथी जो आज के हाथियों से अनेक-गुना बड़े होते थे। अंग्रेजी में इस जंतु को Mammoth कहा जाता है।

प्राचीन युग के भयानक जंगली जन्तु

मनुष्य के अलावा दूसरे प्राणी भी लाखों-करोड़ों वर्षों से ऐसे दृश्य देखते आ रहे थे। लेकिन दूसरे प्राणी इन दृश्यों को, इन जीव-जन्तुओं को केवल देखते ही थे। इनके सम्बन्ध में न सम्यक् रूप से वे सोच सकते थे, न ही प्रकृति के इस वातावरण पर काबू पाने के उपायों पर मनुष्य की तरह विचार सकते थे। वे तो लाखों वर्षों से, निरीह भाव से उसी राह पर, उसी तौर-तरीके से चले आ रहे हैं जैसा कि प्रकृति ने उनके लिये पहले से ही निश्चित कर दिया है। उनकी हर हरकत की पूरी बागडोर प्रकृति के हाथ में है। वे या तो प्रकृति के अधीन हैं, अथवा मनुष्य के अधीन।
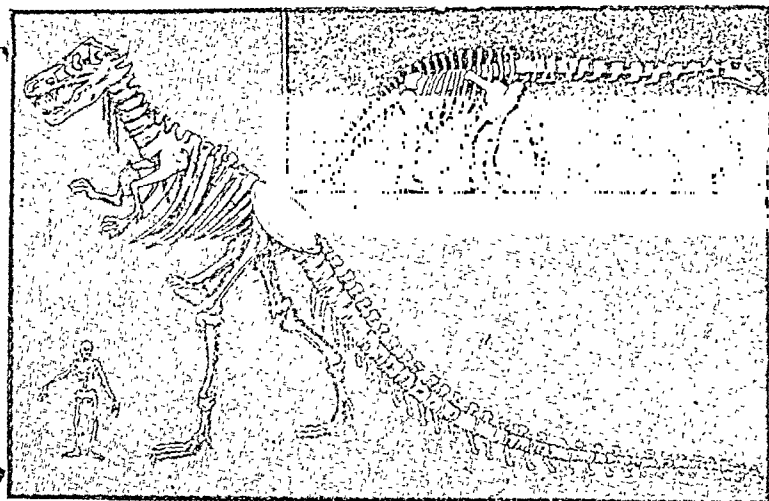
प्राचीन युग के एक भयानक जंगली जन्तु के कंकाल की तुलना में मनुष्य का कंकाल

किन्तु प्रकृति ने ही मनुष्य में कुछ ऐसा विशेष गुण-धर्म भर दिया है जिसके बल पर वह प्रकृति पर भी काबू पाना चाहता है।

मनुष्य द्वारा लादी गई पराधीनता से भी वह मुक्त होना चाहता है। वही विशेष गुण-धर्म लाखों वर्षों से विकसित होता हुआ आज इस स्थिति में आ पहुँचा है कि मनुष्य अब प्रकृति को पूरी तरह अपने हाथ का खिलौना बनाने पर तुला हुआ है। आज जल पर उसका कब्जा है, थल पर उसका कब्जा है, और आकाश में कितनी आसानी से वह उड़ता जा रहा है! क्योंकि जिस मनुष्य अथवा मानव-समाज में प्रकृति पर विजय पाने, अथवा दासता से मुक्त होने की प्रबल इच्छा या प्रयत्न का अभाव हो वह विकास की दृष्टि से पिछड़ा हुआ ही माना जाता है।

चेतना और संस्कृति :—

अब आप जानना चाहेंगे कि मनुष्य का वह विशेष गुण-धर्म क्या है ? इस अध्याय के आरंभ में ही बता आए हैं कि मनुष्य का मस्तिष्क अन्य सभी प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। यही मस्तिष्क वह खजाना है जिसमें मनुष्य का वह गुण-धर्म मौजूद है, जिसके बल पर वह अब तक इतना-कुछ कर पाया है। उस गुण-धर्म को हम 'चेतना' कहते हैं। यह चेतना यों तो अन्य सभी प्राणियों में होती है, किन्तु मनुष्य की चेतना उससे पृथक् है। मनुष्य की चेतना में बुद्धि, वाणी, मन, स्मृति आदि सभी ज्ञान-तन्तुओं का जमाव होता है। यह चेतना ही उसे सोचने की, अनुभव करने की और क्रम-बद्ध ढंग से अपने भावों को वाणी-बद्ध करने की क्षमता प्रदान करती है। और मानव की इसी चेतना के गर्भ से संस्कृति की उत्पत्ति होती है।

'संस्कृति' शब्द के अनेक अर्थ किए गए हैं। किन्तु थोड़े में संस्कृति शब्द से हमें यह समझना चाहिए कि, "प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य के जीवन का जो व्यावहारिक रूप है, वह जहाँ जिस रूप में प्रगट होता है उस सब को 'संस्कृति' कहा जाता है। संस्कृति

की इस परिभाषा में मनुष्य का विचार भी आ जाता है, आचार भी। मनुष्य जैसा विचारता है, उसी के अनुसार वह अधिकतर आचरण भी करता है। अपने विचारों के अनुसार वह अपने जीवन का निर्माण करता है, समाज और संसार का निर्माण करता है। संक्षेप में मनुष्य ने आरम्भ से अब तक व्यक्तिगत रूप से अथवा सामाजिक (सामूहिक) रूप से जैसा जो कुछ सोचा और निर्माण किया, उस सबको 'संस्कृति' कहा जाता है। मनुष्य ने अब तक साहित्य, कला, विज्ञान, नीति, सदाचार आदि हर क्षेत्र में जो उन्नति की है उस सबको हम संस्कृति कहेंगे। इस प्रकार 'सभ्यता' शब्द से जो अर्थ हम समझते हैं—'मनुष्य के रहन-सहन का ढंग' वह भी संस्कृति की ही सीमा में आ जाता है।

अब हम संक्षेप में मानव की चेतना और संस्कृति की विकास-धारा पर सरसरी तौर पर प्रकाश डालने जा रहे हैं।

आदि मानव का कौतूहल :—

उस आदि मानव ने अपने आस-पास के वातावरण को देखना शुरू किया। इसके देखने में अन्य प्राणियों की अपेक्षा कुछ विशेषता थी। अन्दर-ही-अन्दर मानो उसे कोई एक शक्ति प्रेरित करने लगी थी। उस वातावरण के प्रति—उन चिग्घाड़ते हाथियों, गरजते और गुर्राते शेरों, और पेड़ों पर उछल-कूद मचाते वन्दरों, और रेंगते सर्पों, और बहती नदियों, तथा झरते झरनों आदि हर वस्तु के प्रति उसके मन में जिज्ञासा और कौतूहल के भाव उत्पन्न हो रहे थे। वह आश्चर्यचकित था! मन-ही-मन अपने आपसे पूछ रहा था—"यह सब क्या है? यह सब क्यों है?"

आश्चर्य-भरी आँखों से चारों ओर ताकता हुआ मन-ही-मन वह "क्या है? क्यों है?" के चक्कर में शायद सैकड़ों-हजारों वर्षों तक पड़ा रहा। किंतु उसके मस्तिष्क में बैठी हुई चेतना उसे

962

बारम्बार झकझोरती रही। प्रेरित करती रही।

अब वह बड़े गौर से अपने-आपको निहारने लगा। वर्षों तक निहारता रहा। अन्य सभी जीवों की अपेक्षा उसने अपने-आप में बहुत कुछ विशेषता देखी। शायद सब से पहले उसने अपने दोनों हाथ देखे। उलट-पुलटकर देखता रहा। पाँच-पाँच अंगुलियाँ! इच्छा करते ही मुड़ जातीं और फैल भी जातीं! उसने भुजाओं को निहारा, उन्हें बार-बार मोड़ा और फैलाया भी! एक अद्‌भुत शक्ति महसूस हो रही थी! फिर उसने पैरों को देखा! दूसरे अंगों को निहारा! खड़ा हुआ! चलकर देखा! उसे अपने-आप पर आश्चर्य हुआ! हृदय ने संतोष अनुभव किया! वह खुश होकर किल-किला उठा! क्योंकि तब तक 'वाणी' नाम की चीज से उसका परिचय नहीं हुआ था।

बुद्धि और प्रवृत्ति का संघर्ष :—

बुद्धि मनुष्य की निजी विशेषता है। बुद्धि के बल पर ही संसार के अन्य सारे प्राणियों पर वह शासन करता है। नहीं तो क्या मजाल कि एक छोटे कद का आदमी हाथी जैसे विशाल और बलवान् जन्तु को अपने वश में कर ले! बुद्धि मनुष्य को सोचने और विचारनेकी ओर, नये-नये ढंग और तरीके निकालने की ओर प्रेरित करती है। लेकिन बुद्धि के अतिरिक्त एक और चीज है, जो क्या मनुष्य क्या पशु हर प्राणी में एक-सी पाई जाती है। उसे हम हिन्दी में 'प्रवृत्ति' कहते हैं और अँग्रेजी में 'इन्स्टिंक्ट' (Instinct)। हर प्राणी में भूख, भय, निद्रा और नर-मादे में परस्पर संभोग की इच्छा मौजूद रहती है। यह प्राकृतिक धर्म है। इसी प्राकृतिक धर्म को 'प्रवृत्ति' कहते हैं। मनुष्य बुद्धि के द्वारा इस प्रवृत्ति पर काबू पाना चाहता है। लाखों वर्षों से बुद्धि और प्रवृत्ति का संघर्ष छिड़ा हुआ है। इस संघर्ष में जहाँ बुद्धि की विजय

हुई कि विकास में मनुष्य एक कदम आगे बढ़ चला, और जहाँ प्रवृत्ति की विजय होती है वहाँ वह पिछड़ जाता है। उसके विकास की गति रुक जाती है। संस्कृति के संसार में—निर्माण की दुनिया में मनुष्य जो अब तक इतनी उन्नति कर सका है वह इसी संघर्ष का परिणाम है। वह प्रवृत्ति पर बुद्धि की इसी विजय का इतिहास है। अस्तु।

पाषाण-युग का आरम्भ :—

वह आदि मानव भी बुद्धि और प्रवृत्ति के झगड़े में पड़ गया। वह प्रवृत्ति के वश होकर एकाएक कोई काम कर बैठता। फिर बुद्धि उसे सोचने पर मजबूर करती 'यदि ऐसा हो, तो ऐसा हो जाय' इत्यादि इत्यादि। एक दिन वह अपने आहार के लिये जंगल में जंगली फल बीन रहा था। पीछे से चुपके से एक भालू उसकी ओर बढ़ रहा था। उसे आहट मिल गई। उसने भालू को अपनी ओर आते देख लिया। प्रवृत्ति के वश होकर वह डर-

उड़ती चिड़िया को वह पत्थर जा लगा !

कर भाग चला। वह पर्वत की ऊँची चोटी की ओर बढ़ने लगा। भालू उसका पीछा करता हुआ उस ओर बढ़ चला। वह डरकर फिर जोर से भागा। एक पत्थर से टकराकर गिरते-गिरते बच गया। पत्थर को देखते ही उसे एक बात याद आ गई—कल इसी तरह की चीज को हाथ में लेकर सामने उसने फेंका था। निशाना सध गया था। (दे. पृ. १०३) एक उड़ती चिड़िया बेचारी मरकर नीचे आ गिरी थी। ऐसा उसने प्रवृत्ति के वश या केवल कौतूहल के वश ही किया था। किन्तु इस समय वह घटना उसे याद आ गई, किसी खास मतलब से। बुद्धि ने उसे हुक्म दिया—"उठा इस पत्थर के बड़े टुकड़े को! दे मार इसे उस भालू के शिर पर!" बस फिर क्या था! पत्थर के उस बड़े टुकड़े को दोनों हाथों से उठा, उसने भालू के शिर पर दे मारा!

पत्थर के उस बड़े टुकड़े को दोनों हाथों से उठा उसने भालू के शिर दे मारा

निशाना ठीक बैठा! आघात के कारण भालू के पैर फिसल गये! वह गिर गया। गिरकर लुढ़कता-लुढ़कता नीचे जा पहुँचा। नीचे पहुँचकर वह मर गया।

अब वह मानव कौतूहलवश नीचे आकर भालू को देखता है। पहले कुछ डरता है। फिर निकट जाकर उस भालू पर पुनः पत्थर के टुकड़े फेंकता है। किन्तु भालू निश्चेष्ट है। न वह हिलता है, न डोलता है। अब उसने बड़े इतमीनान से निकट जाकर अपने हाथों से भालू के शरीर को झकझोरा। फिर भी निश्चेष्ट। उसकी मृत्यु का उसे पूरा विश्वास हो गया। अब वह प्रसन्न होकर किलकिला उठा! आज उसने शत्रुओं से निवटने के लिये एक नए हथियार का आविष्कार किया। वह विजय की खुशी और कौतूहल के आवेश में दौड़ा हुआ अपने गिरोह में आ गया। उन सबको इशारे से वहाँ ले गया जहाँ वह भालू मरा पड़ा था। उन सबको वह पत्थर फेंक-फेंक कर बता रहा था कि किस प्रकार उसने उस भालू को मारा था। सब खुश हो किलकिला उठे! पत्थर फेंकने में उसकी नकल करने लगे। इस प्रकार पहले-पहल उन सबों ने पत्थर के टुकड़े की महिमा जानी। यहीं से पाषाण-युग का आरंभ हो गया।

लाठी का आविष्कार :—

मानव को पता चल गया कि उसकी रक्षा के लिए पत्थर कितनी कीमती वस्तु है। वह पत्थर के टुकड़े हाथ में ले-लेकर निशाना साधता; उड़ती चिड़ियों को मार डालता; रेंगते सर्पों की कचूमर निकाल देता; दौड़ते खरगोशों को खत्म कर छोड़ता; और अन्य अनेक भयानक जंतुओंको मजा चखा देता; और उन मरे हुए जंतुओं का माँस खा-खाकर मौज उड़ाता। वास्तव में पत्थर उसके लिए परम रक्षक भगवान् बन गया, यद्यपि भगवान् की कल्पना

से अभी वह लाखों वर्ष दूर था।

फिर पत्थर के बाद उसे एक दूसरे भगवान् से भेंट हुई। जंगल में तूफान आया था। छोटे-बड़े अनेक वृक्ष उखड़ गये थे। उसने एक छोटे वृक्ष को कौतूहलवश हाथ में उठा लिया। फिर उसे हवा में घुमाना आरंभ किया। इस खेल में उसे बड़ा मजा आ रहा था। फिर उसने उसकी टहनियां तोड़ दीं। वह हल्का हो गया। उसकी लाठी बन गई।

उसे हाथ में लिए मौज में हिलाते हुए अपने अड्डे पर वह वापस आ रहा था। संयोग से उस लाठी का आघात किसी छोटे जन्तु को जा लगा, शायद निकट से भागते खरगोश को। वह मर गया। मानव ने एक और हथियार का आविष्कार किया। इस लाठी से भी वह काम लिया जा सकता है, जो पत्थर के टुकड़ों से। बल्कि लाठी उससे भी अच्छी। हाथ से पकड़ते और हिलाते मजा भी, शिकार का आस्वाद भी। उसने उस लाठी को नीचे से ऊपर तक निहारा। बार-बार निहारा। आनन्द से पुनः किल-किला उठा! उस मृत जन्तु को हाथ में लटकाये लाठी-सहित अपने अड्डे पर वापस आया। अपने गिरोह के अन्य लोगों से इस 'लाठी देवता' की बात ईशारे से बताई। सुनकर सब आश्चर्य-चकित हुए! प्रसन्न हुए! उनकी सम्मिलित किलकिलाहट से जंगल का कोना-कोना गूँज उठा।

तब से लाठी के अनेक गुण उनके सामने प्रकट होने लगे। इस लाठी की मदद से वे निर्भय होकर जंगलों में विचरते। बड़े-बड़े खूँखार जानवरों से मुकाबला करते। उन्हें मारकर खाते। अब वृक्षों की घनी डालों पर रात न बिताकर, नीचे जमीन पर झोपड़ी बनाकर रहते। जङ्गलों से बाहर मैदान में भी आ निकलते। फिर आगे चलकर इसी लाठीमें नुकीले पत्थर खोंस-खोंसकर बल्लम-बर्छे भी बनाए जाने लगे।

मानव ने नदी पार करना सीखा :—

एक दिन एक छोटी जङ्गली नदी के किनारे वह बैठा था। नदी कल-कल करती बहती चली जा रही थी। वृक्ष का एक तना बहकर उसमें आ रहा था। बहते-बहते वह बीच धार में एकाएक रुक गया। शायद पत्थरों की या किसी अन्य पेड़-पौधों की रुकावट थी। उस तने पर छिपकिली जैसा कोई जंतु बैठा था। वह पानी में डूब नहीं रहा था। यह देखकर मानवके मन में कुछ कौतूहल पैदा हुआ। पानी की गहराई ज्यादा नहीं थी। वह स्वयं उस तने की ओर बढ़ चला। वह जंतु भाग चला और मनुष्य तने पर पैर रख
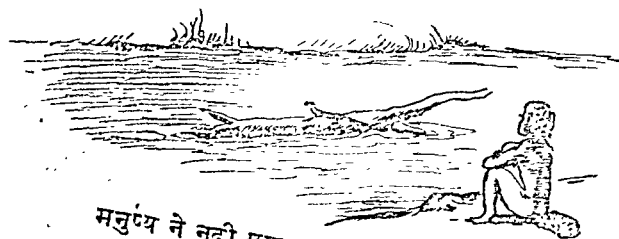
मनुष्य ने नदी पार करना सीखा

खड़ा भी हो गया। लेकिन तना पानी में डूबा नहीं। उसे बड़ी खुशी हुई। उस तने पर बैठकर उसने अपनी लाठी को जल में थामा। कौतूहलवश जरा जोर लगा गया। फलस्वरूप वह तना खिसक कर झट बह चला। उसके साथ-वह मानव भी बह चला।

पहले वह जरा घबराया और कुछ डरा भी। अपने को बचाने के उद्देश्य से उसने लाठी की मदद ली। देखा कि लाठी तने की गति को नियंत्रित कर रही है। मस्तिष्क ने उसे साथ दिया। लाठी से खेकर उस तने को वह किनारे ले आया। भय उसका दूर हो गया था। घबराहट उसकी शान्त हो चुकी थी। एक नई चीज के आविष्कार करने के आनन्द में वह किल-किला उठा! अब उस तने और बहकर आये दूसरे बड़े तनेपर नदी के आर-पार जानेमें वह मस्त हो उठा। फिर उस तने को धारसे निकाल कर किनारे रखा। दूसरे दिन वहाँ स्त्री-पुरुषोंका झुण्ड इकट्ठा हो गया। पारी-पारी से एक-एक दो-दो की टोली में वे जल-क्रीडा का आनन्द लेने लगे। वेखटके इस पार से उस पार जाने लगे। इसके बाद लकड़ी के अनेक तनों को परस्पर जोड़कर बेड़ा बनाकर बड़ी नदियों में भी पार उतरने लगे। नई-नई दुनिया के वे दर्शन करने लगे। बाद में इस सामान्य आविष्कार ने मानव-मस्तिष्क को बड़ी-बड़ी नावे और बड़े-बड़े जहाज बनाने की प्रेरणा दी, क्षमता दी।

मानव गुफावासी बन गया :—

मनुष्य अब वेखटके जङ्गलों में घूमने लगा था। नदियों के आर-पार भी जाने लगा था। नये-नये स्थान, नये-नये दृश्य उसने देखे। जहाँ मन रम गया वहाँ नदी अथवा दूसरे जलाशय के किनारे गिरोह बनाकर डट गया। जङ्गल में जानवर मारकर वह कच्चा मांस खाता; फल चुनकर खाता; नदी, तालाब या झरने का पानी पीता; खुले मैदानों में सो जाता। इस प्रकार मनुष्य पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में फैलता गया। यदि किसी खास स्थान पर स्थायी रूप से वह बस जाता तो वृक्षों की टहनियाँ जोड़कर झोपड़ी भी बना लेता। इसी
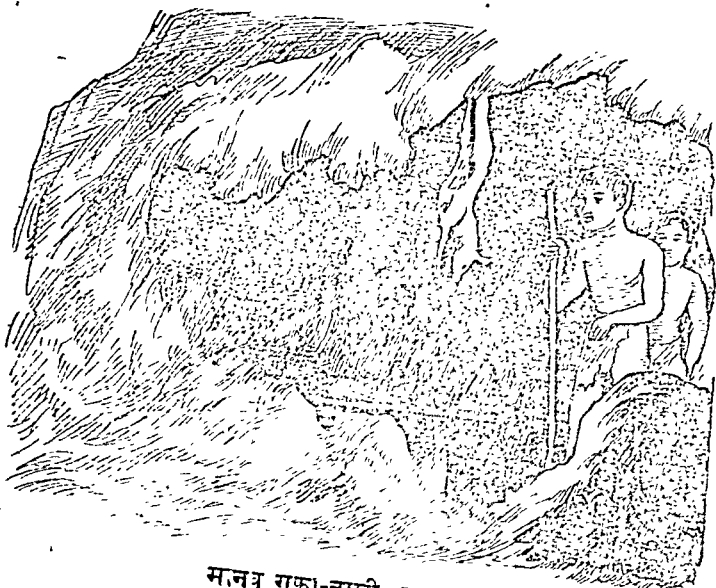
मानव गुफा-वासी बन गया

प्रकार घूमते-घामते किसी समय उसका ध्यान एक नई जगह की ओर गया। पहाड़ों में स्वाभाविक तौर पर बने गड्ढे और खोल उसने देखे। वे सब गुफाएँ थीं। शायद उस समय बाहर वर्षा हो रही होगी, अथवा बर्फ गिर रहा होगा। वर्षा या ठंड से बचने के लिए वह उसमें पैठ गया। उसमें प्रवेश करते ही उसे कुछ गर्मी महसूस हुई, आराम महसूस हुआ। वह उसमें बैठा रहा। स्थान को अच्छी तरह देखा-भाला। पास में ही नदी या झरना बह रहा था। इससे अधिक और चाहिए क्या? वह वहाँ स्थायी रूप से डट गया। अब वह अपने को प्राकृतिक शत्रुओं से बहुत सुरक्षित समझने लगा। धीरे-धीरे मनुष्यों में गुफा-निवास का आम प्रचार हो गया।

शिकार का नया तरीका :—

अब तक मनुष्य को आहार-संग्रह में बहुत कठिनाई होती थी। खुले शिकारमें अपनी जान जाने का खतरा रहता था। अब उसने एक ऐसे नये तरीके का आविष्कार किया जिससे कि साँप भी मरजाय और लाठी भी न टूटे। एक दिन उसने एक जगह हड्डियों की ढेर देखी। उस ढेर को देख वह कौतूहल और आश्चर्य में डूब ही रहा था कि उसने पर्वतकी चोटी पर से एक जंगली भैंसे को नीचे लुढ़कते देखा। वह लुढ़कते-लुढ़कते वहीं आ रुका जहाँ हड्डियों की वह ढेर पड़ी थी। वह भैंसा अब तक मर चुका था। मनुष्य ने उस मृत भैंसे को आश्चर्यभरी आँखों से देखा। फिर उसने ऊपर चोटी की ओर देखा। अब की बार उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा! तीन-चार भेड़िये धीरे-धीरे चोटी पर से नीचे उतरते आ रहे थे। मनुष्य एक झाड़ी में छिप गया। छिपे-छिपे उसने देखा कि वे भेड़िए उस भैंसे की लाश पर पिल्ल पड़े। कुछ घण्टों में ही उसे खा-चबा कर साफ कर दिया। हड्डियों का ढाँचा भर वहीं छोड़ वे फिर चपत हो गये।

मनुष्य झाड़ी में से बाहर आ अपनी गुफा की ओर चलता बना। रास्ते में बहुत कुछ सोचता भी गया। उसने सोचा कि क्यों न इस भेड़िए का ही रास्ता अपनाया जाय? खुले शिकार करने के बजाय बड़े-बड़े जानवरों को इसी प्रकार चकमा देकर फन्दे में फँसा लिया जाय। भटकाकर दल-दल या गड्ढे आदि में फँसा दिया जाय। आराम रहेगा। मांस भी पूरा हाथ आ जायगा। (अपने शिकार को चकमा देना भेड़िये आदि कुछ हिंस्र जन्तुओं का प्राकृतिक धर्म है।)

नये मित्र से परिचय (मनुष्य और कुत्ता) :—

मनुष्य अब गुफा का स्थायी निवासी बन गया था। आहार के लिए काफी मांस मिल ही जाता। कभी-कभी मांस कुछ अधिक हो जाने पर कुछ टुकड़े गुफा के बाहर भी वह फेंक देता। वह देखता कि कुछ छोटे-से जानवर धीरे से वहाँ बढ़कर उन टुकड़ों को खा जाते। ये जानवर अब अक्सर वहाँ मांस के लिए आते। धीरे-धीरे परस्पर परिचय होने लगा। मनुष्यों से उन्होंने डरना छोड़ दिया। अब वे भोजन के समय निर्भीक उनके पास आकर बैठ जाते। उनके हाथ से बेखटके मांस के टुकड़े खा लेते। मनुष्य भी इन जन्तुओं को प्यार करने लगा और वे मनुष्य को। दोनों में पक्की

मनुष्य और कुत्ते का प्रथम परिचय

मैत्री हो गई। मनुष्य के इस नये मित्र को 'कुत्ता' कहते हैं। और वह कुत्ता उसी जंगली भेड़िये की जाति का था। मनुष्य से दूर रहकर वह भेड़िया रहा और मनुष्य की संगति से वह कुत्ता वन गया। इन कुत्तों के सहयोग से मनुष्य को शिकार करने में बड़ी सुविधा हो गई।

मनुष्य बोलने लगा :—

विद्वानों का मत है कि लाखों वर्षों तक मनुष्य गूँगा ही रहा। वह परस्पर इशारे से अथवा किल-किलाकर अपने भाव प्रकट करता। किन्तु ज्यों-ज्यों उसकी चेतना में, अनुभव में विकास होता गया, वृद्धि होती गई, उसके मस्तिष्क का वह स्थान भी विकसित होता गया जहाँ बुद्धि, वाणी और स्मृति के तारों का जमाव रहता है। अपने अनुभवों को, अपने मन के भावों को प्रकट करने का वह बार-बार प्रयत्न करता रहा। फलस्वरूप उसके मुखसे धीरे-धीरे वाणी फूटने लगी। वह अब बोलना सीख गया। स्थान और वातावरण के भेद से उसकी बोलियां भी अलग-अलग बनने लगीं। अब उसने हर वस्तु को अलग-अलग नाम देना भी शुरू किया। वह बड़े मजे में एक दूसरे से बोलता, बतियाता, कथा-कहानी सुनता और सुनाता। उसकी आँखों के सामने जो-जो घटनाएँ घटित होतीं,उन सबका उसने नामकरण कर दिया। उनके मस्तिष्क को नये-नये शब्द गढ़ने में अब कोई खास दिक्कत नहीं होती।

उसने आग को अपना लिया :—

विद्वानों का मत है कि पृथ्वी पर जब-तब हजार वर्षों तक वातावरण एक-जैसा ही बना रहता। मनुष्य पृथ्वी पर आया। उसने हजारों वर्षों तक कोई विशेष परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया।

शुरू-शुरू में शायद पृथ्वी का वातावरण समशीतोष्ण (न अधिक सर्द, न अधिक गर्म) रहा होगा। मनुष्य बड़े मजे में उसे बर्दाश्त कर लेता। लेकिन बाद में परिवर्तन आरंभ हुआ। वातावरण में सर्दी आनी शुरू हुई। मनुष्य अब खुले मैदान में रहने में असमर्थ होने लगा। उसने नई जगह ढूँढ़ने की कोशिश की। गुफाओं का उसने पता लगा लिया। वह गुफा-वासी बन गया।

इसी प्रकार जब धीरे-धीरे सर्दी बढ़ती गई, उसे अधिक गर्मी की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। वह जंगलों में जब-तब आग की उठती लपटों को, और सारे जंगल को जलते अनेक बार देखता। इस दृश्य को वह लाखों वर्षों से देखता आ रहा था, किन्तु फिर भी वह आग की उपयोगिता को समझ नहीं पा सका था। वह आग को एक बहुत बुरी, भयानक वस्तु समझे हुए था। जंगल में अपने-आप आग के लगते समय जिस प्रकार दूसरे वन-जन्तु प्राण लेकर इधर-उधर भागने की कोशिश करते, मनुष्य भी वैसा ही करता। लेकिन जब सर्दी जोर की पड़ने लगी, और जंगल में आग जल उठी, तो उसकी ताप उसे कुछ अच्छी महसूस होने लगी। वह आग से डरकर भागने के बजाय उसके निकट चला गया। वह बड़े मजे से जरा दूर से ही आग की ताप लेने लगा। धीरे-धीरे आग का जलना कम होता गया, और मनुष्य धीरे-धीरे उसकी तरफ बढ़ता गया। पहली बार शायद उसने जीवन में अनुभव किया कि आग से इस तरह डरने की जरूरत नहीं। वह आग से दोस्ती करने पर तुल गया। और अन्त में ऐसी मित्रता हो गई कि आग मनुष्य के जीवन की सबसे कीमती वस्तु बन गई। इस कीमती वस्तु को सदा सुरक्षित रखने में वह बड़ा सावधान बन गया। तभी तो ऋग्वेद में आग की प्रशंसा में पन्ने-के-पन्ने भरे पाये जाते हैं!

जब मनुष्य ने आग को अपना लिया, उसने आग पैदा करने के दूसरे साधन भी ढूँढ़ निकाले। एक प्रकार का तेज सफेद पत्थर होता है, जिसे 'चकमक' कहते हैं। उसे परस्पर घिसने से आग पैदा होती है। आदिम मनुष्य ने इस पत्थर को भी अपना लिया। आगे चलकर यह पत्थर बहुत उपयोगी साबित हुआ। जहाँ उससे आग पैदा की जाती, वहाँ उससे तेज नोकीले हथियार भी बनाए जाते। इन हथियारों की मदद से वह बड़े-बड़े जानवर मार डालता। आगे चलकर जब मनुष्य में चित्रकारी की रुचि जागृत हुई, इसी चकमक पत्थर की तेज तूलिका से वह गुफा की दीवारों और हड्डियों पर रेखाएँ खींचता, जो हजारों वर्षों तक धरती के गर्भ में छिपी रहने के बाद भी अमिट बनी रहीं।

आग को अपनाने से पहले मनुष्य मांस-वगैरह सब कुछ कच्चा ही खा जाता था। लेकिन जब उसने संयोग से किसी दिन आग में भुना हुआ मांस खा लिया, शायद जंगल की आग में जल-मरे किसी पशु का मांस, तब तो उसकी रुचि ही बदल गई। फिर कहना क्या! भुना हुआ मांस उसे बड़ा अच्छा लगने लगा। पचने में भी अच्छा रहता। तो अब आग जहाँ उसका सर्दी से बचाव करने लगी वहाँ उसे स्वादिष्ट भोजन भी खिलाने लगी। इस प्रकार आगकी उपयोगिता बढ़ती ही गई।

फिर मनुष्य को पता लगा कि इस आग से जंगल के हिंस्र जानवर भी बहुत डरा करते हैं। अब वह रात को गुफा के द्वार पर आग जलाकर हिंस्र जानवरों के भय से निश्चिंत हो सो जाता। इस आग की मदद से वह अंधेरे में भी रास्ता ढूँढ़ लेता। बड़ी आसानी से चला-फिरा करता। इस प्रकार आग की उपयोगिता दिनों-दिन बढ़ती ही गई जो आज भी किसी प्रकार कम नहीं हो पाई है।

धर्म की भावना का संचार :—

मनुष्य अब गुफाओं में निश्चित रूप से रहने लगा था। बोलना वह सीख गया था। आग जैसी उपयोगी वस्तु से परिचय उसका हो चुका था। नई-नई चीजों के परिचय से उसके मस्तिष्क में कौतूहल और आश्चर्य के भाव बढ़ते जा रहे थे। वह सूरज और चाँद को देखता। उमड़-घुमड़ कर गरजते और बरसते बादलों को देखता। बिजली की कड़क और चमक को देखता। आँधी और तूफान को देखता। प्रकृति के रंग-बिरंगे रूपों को, उनकी करामातों को देख-देख कर उसका हृदय भय और आश्चर्य से आन्दोलित हो उठता! इन सब चीजों को वह अपने से अधिक शक्तिशाली मानने लगा। इस से उसके मन में भय की भावना जाग उठी। इस भावना के पेट से ही मानव के मन में धर्म की भावना का संचार हुआ। उसने उन सभी वस्तुओं को पूजना आरंभ किया जिन्हें वह अपने से बलवान् समझता। उन बलवान् शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए उनकी प्रशंसा में वह शब्द उचारता, स्तुति-गान करता। उनके नाम पर प्रिय से प्रिय वस्तुओं की बलि या भेंट चढ़ाता। उसने अनेक देवी-देवताओं और भूत-प्रेतों की भी कल्पना की। आगे चलकर इसी धर्म ने अनेक रूप बदले, तरह-तरह के चोगे पहने, किन्तु उसके मूल में आज भी वही भावना मौजूद है जो आज से हजारों-लाखों वर्ष पहले उस आदि-मानव के मन में उत्पन्न हुई थी।

मानव चित्रकार बन गया :—

धीरे-धीरे मनुष्य ने अनेक रंगों का आविष्कार भी कर लिया था। वह इन रंगों से अपना शरीर रंगता। देखकर प्रसन्न होता। शरीरों को रंगने की प्रथा इतनी प्रिय हो चली थी कि अपने मुर्दों को दफनाते समय भी वे उन्हें रंगने से बाज नहीं आते। शायद

शरीर को रंगते-रंगते ही उनमें चित्र बनाने की भावना भी पैदा हुई। मनुष्य अभी शिकार की अवस्था से आगे नहीं बढ़ सका था। अतः वह उन्हीं जानवरों के चित्र बनाता जिनका वह शिकार करता, जिन्हें रोज अपनी आँखों से देखा करता। शायद पहले उसने मनोरंजन के निमित्त शरीर में ही चित्र बनाना शुरू किया होगा। बाद में गुफा की दीवारों पर और उसके बाद जानवरों की सूखी हड्डियों पर वह चित्र की खुदाई करने लगा। अथवा, मनुष्य के मन में चित्र बनाने की भावना तब जगी होगी जब उसने देखा होगा सूखी या गीली धूल या मिट्टी पर बिच्छू आदि कीड़ों के रेंगने से उभरी हुई चित्र-विचित्र रेखाएँ। उसने कौतूहलवश स्वयं वैसी रेखाएँ बनाने की कोशिश की होगी। और इसी प्रकार कोशिश करते-करते वह एक दिन वास्तव में सच्चा चित्रकार बन गया होगा।

उस आदि-मानव ने इस कला में वह कमाल हासिल कर दिखाया है कि देखकर आज के विकसित मानवों को भी चकित रह जाना पड़ता है। दक्षिणी फ्रांस और उत्तरी स्पेन में धरती के नीचे हजारों वर्षों से दबे पड़े उन गुफा-घरों में आदि-

मानव चित्रकार बन गया।

मानव के चित्रों के नमूने देखते ही बनते हैं! आश्चर्य कि उनके रंग आज भी कायम हैं। जिन रंगों से चित्र बनाये गये हैं वे शायद चर्बी के योग से तैयार किये गये थे। इसी कारण वे पत्थर में इस प्रकार चिपक गये कि वे आज तक नहीं मिट पाये। लेकिन यह भी कम आश्चर्य नहीं कि उन गुफा-निवासियों ने जहाँ जानवरों के अनेक अच्छे चित्र बनाये वहाँ मनुष्य का शायद एक भी अच्छा चित्र नहीं बना सके। इसमें अनुमान यह किया जाता है कि भूत-प्रेत की अशुभ दृष्टि से बचने के लिये ही शायद वे अपने लोगों का चित्र नहीं बनाया करते।

वह तीरंदाज भी बना :—

जब मनुष्य की चेतना विकास के पथ पर दौड़ पड़ी, तो मनुष्य के मस्तिष्क से जाने कितनी नई-नई चीजें बाहर आने लगीं। पहले उसने पत्थर के गुण को पहचाना। फिर उससे अनेक हथियार बनाये। बल्लम, बर्छा, शूल, त्रिशूल, तलवार, मुद्गर जाने और भी कितने अस्त्र-शस्त्र! किन्तु ये सारे अस्त्र-शस्त्र निकट से ही प्रहार करने योग्य थे। मनुष्य के दिमाग ने ऐसे शस्त्र की कल्पना करनी शुरू की जिसके द्वारा दूर से शिकार या पशु पर आघात किया जा सके। शायद इस प्रकार की कल्पना उसके दिमाग में तब उठी होगी, जब वह पतली-लचीली हड्डियों को खेल-कौतुक में ही तिरछा करके मोड़ा होगा और उसे ताँत से बाँध दिया होगा। कौतूहल-वश उस ताँत को बारंबार झकझोरा होगा। उसमें से निकलती हुई साँय-साँय की आवाज उसे अच्छी लगी होगी। फिर कौतूहल में आकर ही कोई तिनके जैसी चीज उस ताँत पर चढ़ा दी होगी। ताँत के खींचने पर वह तिनका दूर जा गिरा होगा। तब धनुष-बाण जैसे हथियार की बात इस मानव के दिमाग में आगई होगी।

अथवा यह भी संभव है कि वृक्ष की टहनी को खेल-कौतुक में मोड़ते-मोड़ते धनुष-बाण की कल्पना उसके दिमाग में उठी होगी। जो

मानव तीरंदाज बन गया।

भी हो, विद्वानों का निश्चित अनुमान है कि आजसे १० हजार वर्ष पहले मनुष्य ने पहले-पहल तीर-धनुष जैसे अस्त्र का आविष्कार किया। पहले तो हड्डी के या बाँस के धनुष और तीर बनाये गये, और बाद में तांबे का आविष्कार होने पर तांबे के, और लोहे का आविष्कार होने पर आम तौर पर लोहे के तीर काम में लाये जाने लगे। संसार के हर हिस्से के मनुष्यों ने तीर-धनुष को मुख्य हथियार के रूप में अपना लिया। धनुष हड्डी, बांस या धातुओं के बनते रहे। संसार की अनेक जंगली जातियों में हथियारों के रूप में आज भी तीर-धनुष का ही इस्तेमाल होता है।

मानव पशु-पालक बना :—

पशुओं में सबसे पहले मनुष्य ने कुत्ते को अपनाया। कुत्ता मनुष्य का बड़ा वफादार साथी साबित हुआ। वह उसके साथ जंगलों में जाकर शिकार के काम में उसका हाथ बँटाता। उसकी अनुपस्थिति में उसकी गुफा की, उ वाल-बच्चों की रखवाली करता। फिर हजारों वर्ष बाद मानव ने एक नये जंगली पशु से नाता-रिश्ता जोड़ा। यह पशु स्वभाव से बड़ा सीधा-सादा था। हिंसा करना जानता न था। मनुष्य ने आरम्भ में शायद इसके सीधे-सादेपन से ही प्रभावित होकर मनोरंजन के लिए इसे पालना आरंभ किया होगा। बाद में इस पशु की उपयोगिता से वह और भी प्रभावित हुआ होगा। उसने देखा होगा कि यह प्राणी हर साल एक बच्चा देता है। घास पर गुजारा कर लेता है। तब उसने जंगल से ऐसे अनेक पशुओं को फँसा-फँसाकर पालना शुरू कर दिया। और बाद में जब उसे पता चला कि इस पशु का दूध भी बड़ा मीठा और लाभदायक है, तब उसकी खुशी का कहना ही क्या ? इस पशु से अनेक लाभ उसे मिलने लगे। उनके बछड़ों को मारकर वह मांस खाता, उनका दूध पीकर हृष्ट-पुष्ट होता। ऐसे उपकारी पशु का नाम उसने 'गौ' रखा। बाद में इस गौ की इतनी इज्जत बढ़ी कि मनुष्य की एक-जाति (हिन्दू-आर्य) ने इसे 'माता कहकर पुकारना शुरू कर दिया। इसकी हत्या को घोर अपराध निश्चित कर दिया। यह 'गौ' मनुष्य का प्रधान धन बन गया। जिस गिरोह के पास जितनी अधिक गायें होतीं वह उतना ही धनवान् माना जाता। इसके बाद धीरे-धीरे मनुष्य ने भेड़, बकरा, गदहा, घोड़ा, हाथी आदि पशुओं को भी अपना लिया। पालना शुरू कर दिया।

खेती-वाड़ी की ओर :—

अब मनुष्य का ध्यान एक नई वात की ओर गया। यद्यपि वात तो पुरानी थी, पर उसकी ओर गहराई से उसने कभी सोचा न था। उसने देखा कि गुफा के आस-पास कई अमोले निकल आये हैं। ये अमोले उन जंगली फलों की गुठलियों में से निकले थे जिन्हें उसने तथा उसके आदमियों ने खाकर फेंक दिया था। इससे उसके मन में कुछ कौतूहल और जिज्ञासा का भाव पैदा हुआ। फिर उसने देखा कि कुछ और नये पौधे उग आयें हैं। ये पौधे अनाज के उन दानों के थे जिन्हें वह जंगल में से ला-ला कर चवाता और कुछ वाहर विखेर भी देता। मिट्टी-पानी का संयोग होते ही उनमें अंकुर निकल आये। आरंभ में कौतूहल के कारण ही वह उन अमोलों और अनाज के पौधों की निगरानी करने लगा। कुछ दिन वाद उसने बड़े आश्चर्य और उल्लास से देखा कि उन पौधों में वैसे ही वाल फूट आये हैं जिस प्रकार अपने-आप उगे हुए जंगल के पौधों में फूटा करते थे। अब वह मनोरंजन के तौर पर ही जंगली अनाजों को जमीन में विखेर देता। उनकी निगरानी करता। उनके पौधे निकलते। उनमें वाल आते। उस अन्न को आपस में थोड़ा-थोड़ा बाँटकर वे वड़े चाव से चवाते। इसमें उन्हें उस जंगली अनाज से कहीं अधिक स्वाद आता। धीरे-धीरे अनाज के पौधे लगाने की रुचि और प्रवृत्ति उनकी वढ़ती गई। यह जंगली अनाज शायद 'जौ' था। यहीं से खेती-वाड़ी की ओर मनुष्य अग्रसर हुआ। इस खेती-वाड़ी के आविष्कार ने मानव-जीवन में जवर्दस्त क्रान्ति ला दी। जहाँ वह पहले एक जगह जमकर रहना पसन्द नहीं करता, आहार व शिकार की खोज में अक्सर जगह वदलता रहता, वहाँ अब उसमें एक जगह जमकर रहने की भावना पैदा हुई। खेती योग्य जमीनों की खोज में वह

जहाँ-तहाँ जाकर बसने लगा। खेती का काम शुरू होने का समय आज से लगभग ८ हजार वर्ष पूर्व माना जाता है।

आविष्कारों का आदि महायुग

आज से लगभग ८ हजार से ५ हजार वर्ष पूर्व तक का समय आविष्कारों का आदि महायुग कहा जाता है। खेती-बाड़ी के आविष्कार के साथ मनुष्य के जीवन में स्थिरता आने लगी। अब वह इस जीवन को हर तरह से समुन्नत बनाने के साधनों और उपायों पर सोचने लगा। उसके मस्तिष्क की गति काफी तीव्र हो चली थी। अब से पहले जिन कुछ थोड़े साधनों के पता लगाने में उसे लाखों वर्ष लगे थे, अब केवल हजार-दो-हजार साल के अन्दर ही उसने अनेक महत्व पूर्ण आविष्कार कर डाले। क्योंकि 'आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है'। खेती-बाड़ी तथा जीवन में स्थिरता आने के कारण उसके सामने नई-नई आवश्यकताएँ पैदा होने लगीं, और मानव का मस्तिष्क उन्हें एक-एक कर हल करने का प्रयत्न करने लगा।

मनुष्य ने हल चलाना शुरू किया :—

खेती के आविष्कार से पहले मनुष्य में पशु पालने की प्रथा जड़ जमा चुकी थी। पहले तो वह चरागाहों की खोज में अपने

मनुष्य ने हल चलाना शुरू किया

पशुओं के साथ संसार की खाक छानता फिरता, किन्तु जब खेती-वाड़ी के काम ने उसे एक जगह टिकने के लिए मजबूर कर दिया, तो अपने पशुओं से भी वह खेती के काम में मदद लेने ग । पहले वह पत्थर के नोकीले फावड़े से जमीन तोड़ा करता, किन्तु बाद में जमीन को आसानी से तोड़ने के लिए उसने एक औजार का आविष्कार किया जिसे आज हम 'हल' कहते हैं। इस हल का फाल पत्थर का होता और शेष हिस्सा शायद लकड़ी का। बैल और घोड़े इस हल को चलाने के काम में आने लगे। इस प्रकार पशुओं की उपयोगिता और भी बढ़ती गई।

नहरों का निर्माण :—

कुछ विद्वानों का कहना है कि मनुष्य ने पहले-पहल मिस्र देश में नील नदी की उपत्यका में खेती-वाड़ी का काम आरम्भ किया, और कुछ विद्वानों का अनुमान है कि प्राचीन मेसोपोटेमिया में दजला और फरात नदियों के बीच की भूमि में। दजला (युफ्रेटिस) और फरात (टाइग्रिस) नदियों के बीच की भूमि को आज कल 'इराक' कहते हैं और प्राचीन काल में 'मेसोपोटेमिया' कहते थे। यह नाम युनानी है, जिसका अर्थ है दो नदियों के बीच की भूमि। इसी समय (भारत-वर्ष में) सिन्धु नदी की उपत्यका में भी खेती-वाड़ी का काम शुरू हुआ।

जुलाई और सितम्बर के बीच नील नदी में बाढ़ आने से उसके कछार में दूर-दूर तक पानी फैल जाता। हर वर्ष इस पानी के साथ चिकनी मिट्टी भी बहकर आती जिससे वहाँ की जमीन में उपजाऊपन आ जाता। इसके हरे-भरे कछार ने मनुष्य के मन को मोह लिया। वह निश्चित रूप से वहाँ बस गया। कृषि के लिए मनुष्य का मन पहले-पहल जौ की ओर आकृष्ट हुआ था। नील की उपत्यका में जंगली जौ काफी मात्रा में मौजूद था।

खेती का काम वहाँ बढ़ चला। मनुष्य की आबादी भी बढ़ने लगी। नई जमीन को सींचने की समस्या सामने आई। क्योंकि बाढ़ का पानी बहुत दूर तक नहीं पहुँच पाता था। अथवा साल में कई बार सींचकर कई फसलें पैदा करने की बात भी सोची जाने लगी थी। फलस्वरूप मनुष्य के मस्तिष्क ने सिंचाई का एक नया तरीका आविष्कार किया। यह तरीका नदी से नहर निकालने का था। शायद संसार में सबसे पहली नहर नील नदी से ही निकाली गई थी। इसी प्रकार मेसोपोटामिया में दजला और फरात की, तथा भारतवर्ष में सिन्धु नदी की हरी-भरी उपत्यका में जब मनुष्य बस गया, तो कृषि की उन्नति के लिए वहाँ भी उसने नहरों का निर्माण किया।

बाँध भी बँधने लगे :—

खेती-बाड़ी के काम में उन्नति होने के साथ मनुष्य की खाना-बदोशी की आदत दूर होने लगी। वह खेतों के आस-पास गाँव बसाकर रहने लगा। नहरें निकालकर जमीन को सींचने की समस्या भी उसने हल कर ही ली। लेकिन जब-तब उसे नये खतरे का सामना करना पड़ता। यह खतरा बरसात में नदियों में आई हुई भीषण बाढ़ से था। इस प्रकार की बाढ़ों से जहाँ खेतों में लगी हुई फसलें नष्ट हो जातीं, वहाँ कुछ दिन के लिये गाँव-के-गाँव भी डूब जाते; पानी में पशु और मनुष्य तक बह जाते। जन-धन की इस अपार क्षति से मानव-मस्तिष्क बेचैन हो उठा। इस परिस्थिति पर काबू पाने के लिए उसने पुनः एक नया तरीका निकाला। उसने नदियोंके किनारे मीलों लम्बे बाँध बाँध दिए। बाँध की ऊँचाई इतनी अधिक होती कि बड़ी-से-बड़ी बाढ़ में भी पानी नदी के पेटे से बाहर नहीं निकल पाता। इस प्रकार मनुष्य अपने जन-धन की अपार क्षति को रोकने में सफल हो गया।

ईंटों का आविष्कार :—

मनुष्य जब पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ तो जंगल के खूँखार जानवरों से रक्षा के लिए उसने शायद पहले-पहल वृक्षों पर निवास करना आरंभ किया। फिर पत्थर के हथियारों तथा लाठी-सोंटा से परिचय होने पर वृक्ष से नीचे वह उतर आया। हजारों वर्षों तक वह इसी रूप में रहा। फिर उसने गुफा का आश्रय लिया। फिर पशु-पालक बनने पर चरागाहों में अस्थायी झोंपड़े बनाकर रहने लगा, अथवा बनी-बनाई कोई गुफा हाथ लग गई तो उसमें जा डटा। लेकिन जब वह खेती-बाड़ी के काम में लगा तो खेतों के आस-पास स्थायी रूप से बसने पर मजबूर हो गया। तब उसने बाकायदा घर बनाना शुरू किया। पहले तो घास-फूस या लकड़ियों के कच्चे घर उसने बनाये। लेकिन इन घरों में उतना टिकाऊपन नहीं होता। आग लगने पर सब कुछ स्वाहा हो जाने का खतरा बना रहता। सर्दी, गर्मी और वर्षा में भी अच्छी तरह बचाव नहीं होता। और सबसे अधिक, मनुष्य का वह मस्तिष्क जो सदा नई चीजें सोचने में ही अपनी सार्थकता समझता है, सुन्दर और टिकाऊ घर बनाने के बारे में सोचने लगा। पहले तो उसने मिट्टी की दीवार पर घर खड़ा किया। लेकिन बाद में इसी दीवार में से एक नई सूझ उसमें आ गई। उसने गीले लस्सेदार मिट्टी के लौंदे से चौकोर टुकड़े तैयार किए। उन टुकड़ों को धूप में सुखाया। वे काफी कड़े बन गये। इन टुकड़ों को मिट्टी के गारे से जोड़-जोड़कर घर की दीवारें बनाई जाने लगीं। ऐसे घर अन्य घरों की अपेक्षा काफी मजबूत साबित हुए। मिट्टी के इन्हीं टुकड़ों को 'ईंट' कहा जाने लगा। इस प्रकार की ईंटें आज भी ईराक में दजला और फ़रात की कड़ी लस्सेदार मिट्टी से बनाकर धूप में सुखा दी जाती हैं।

फिर बाद में कोई एक कच्ची ईंट शायद धोके से आग में पड़

गई होगी। लेकिन आग में से वह निकली होगी बिल्कुल लाल बनकर, पत्थर जैसी कठोर बनकर। मनुष्य आश्चर्य और कौतूहल से विभोर हो उठा होगा। इस एक आविष्कार ने उसे अन्य, अनेक आविष्कारों की ओर ठेल दिया। अब जहाँ उसे पक्के मकान बनाने के लिए पक्की ईंटें बनाने का तरीका मालूम हो गया, वहाँ उसने मिट्टी के पक्के बरतन के बारे में भी सोचना शुरू कर दिया। और बाद में पहाड़ी प्रदेशों में पत्थर की ईंटें भी बनाई जाने लगीं।

मनुष्य का शानदार आविष्कार लिपि :—

अब मनुष्य के उस शानदार आविष्कार के बारे में बता रहे हैं जिसने अब तक हुए सभी आविष्कारों को मात कर दिया। इस आविष्कार को हम 'लिपि' कहते हैं। यह लिपि की ही करामात है कि हजारों वर्षों के ज्ञान-विज्ञान और विचार-परंपरा को उसी रूप में हम आज तक प्राप्त कर सके हैं। यह लिपि की ही करामात है कि किसी एक व्यक्ति द्वारा आविष्कार किया हुआ ज्ञान-विज्ञान बड़ी आसानी से हजारों-लाखों व्यक्तियों तक पहुँच जाता है। और फिर, यह भी लिपि की ही सामर्थ्य है कि इसके द्वारा अल्प समय में आसानी से सारे राष्ट्र को शिक्षित किया जा सकता है।

मनुष्य बोलना तो बहुत पहले ही सीख गया था। और जब भय की भावना ने उसमें धर्म के भाव भी पैदा किए, तो अपने से अधिक शक्तिशाली प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति में उसके हृदय और मुख से गीत और संगीत की धारा भी निकल चली। हमारे वेदों की ऋचाओं का निर्माण भी इसी प्रकार आरम्भ हुआ। किन्तु मनुष्य की भावनाओं के ये उद्गार अब तक लिपि-बद्ध नहीं हुए थे। क्योंकि लिपि का अभी तक आविष्कार नहीं हो सका था।

आदिम चित्र-लिपि का नमूना
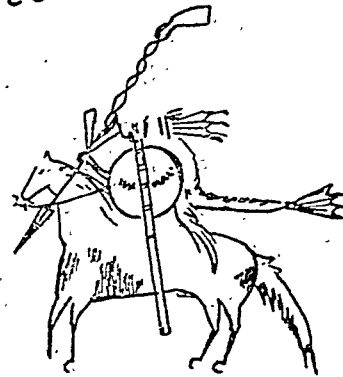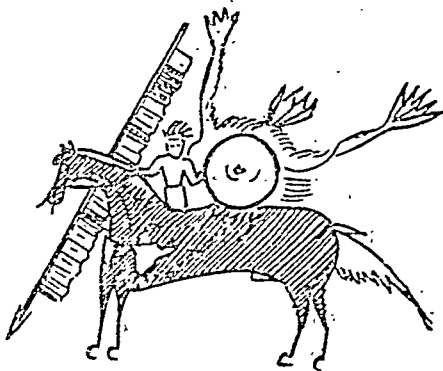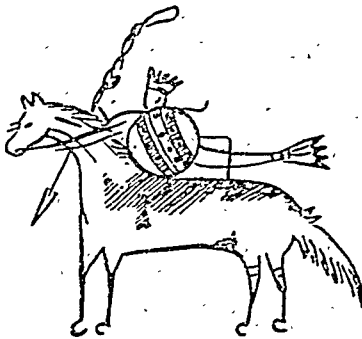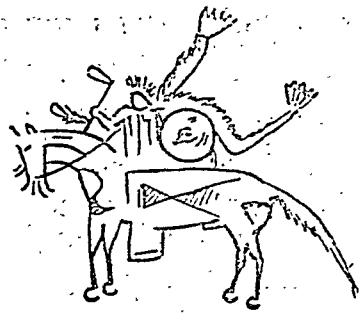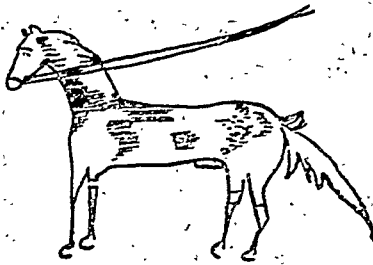
स्मृति के बल पर ही इन सारी चीजों की रक्षा हो रही थी। प्रचार हो रहा था। *

लेकिन मनुष्य अब दूसरी स्थिति में आ चुका था। खेती-बाड़ी को अच्छी तरह वह अपना चुका था। इसी जीवन ने उसे अब बड़े समाज के रूप में संगठित कर दिया था। अब उसके कई नये वर्ग भी बनने लगे थे। इस सम्बन्ध में हम अगले अध्याय में बताने जा रहे हैं। वह सभ्यता की ओर अग्रसर हो चुका था। उसकी सभ्य प्रतिभा ने अब उस तरीके पर भी सोचना आरम्भ कर दिया जिसके द्वारा वह अपने मन के भावों को गुप्त रूप से दूर-दूर तक पहुँचा सकता था।

चित्र बनाना वह बहुत पहले ही सीख चुका था। मस्तिष्क में इस नये विचार के आते ही उसने चित्रों के द्वारा ही इसे व्यवहार में लाना आरम्भ कर दिया। चित्रों के द्वारा ही चिट्ठी-पत्री आरम्भ हो गई। फलस्वरूप चित्र-लिपि का आरम्भ हुआ। यह चित्र-लिपि ही मनुष्य की आदिम लिपि है। लेकिन इस चित्र-लिपि से शुरू-शुरू में केवल उसी वस्तु का बोध होता जिसका वह चित्र होता। फिर बाद में उससे एक निश्चित विचार का बोध होने लगा, और उससे भी आगे चलकर ध्वनि का बोध होने लगा। इस बीच इस लिपि के रूप में भी अनेक परिवर्तन होते रहे। अब वह चित्र न रह कर ध्वनि का एक निशाना (संकेत) भर रह गया। आगे चलकर विभिन्न देशों में विभिन्न वर्ण-मालाओं का आविष्कार हुआ। लेकिन चीन देश की लिपि तो आज भी बहुत कुछ चित्र-लिपि सी ही प्रतीत होती है।

---

* यह समझना गलत है कि वेदों की रचना आज से तीन या चार हजार वर्ष पूर्व हुई। बल्कि यह समझना चाहिए कि तीन-चार हजार वर्ष पहले वे लिपि-बद्ध हुए थे।—लेखक
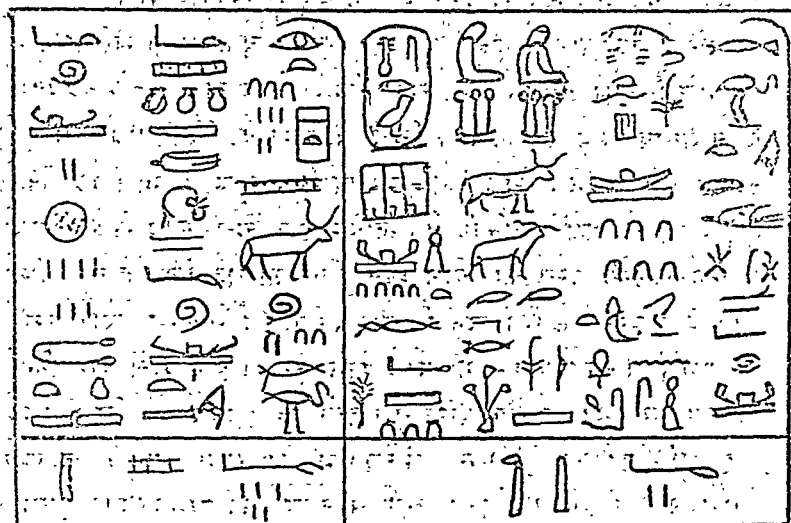
प्राचीन चित्र-लिपि के दो नमूने

इस चित्र-लिपि के आविष्कार का श्रेय कुछ विद्वान् मिस्र को देते हैं और कुछ विद्वान् दजला और फरात के बीच बसे सुमेर देश (मेसोपोटेमिया) को, जो आज इराक का एक भाग है। पहले-पहल मिट्टी की पट्टियों, खपरों या कहीं-कहीं पत्थर के टुकड़ों या

ताँबे की पट्टियों पर इस लिपि को लिखा जाता। फिर मिस्र देश में इसे 'पेपीरस' वृक्ष की छाल पर लिखा जाने लगा। इसी प्रकार पुराने युग में भारत वर्ष में भोज-पत्र पर लोग लिखा करते जो 'पेपीरस' की ही तरह वृक्ष की छाल से निकाला जाता है।
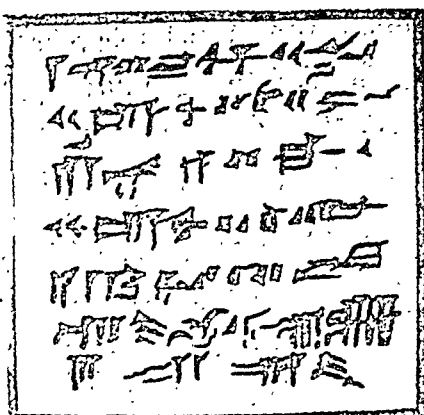
मेसोपोटेमिया की शर-लिपि का नमूना

प्रस्तर-युग से ताम्र-युग में प्रवेश

ताँबे का आविष्कार :—

मनुष्य के मस्तिष्क की गति कभी ठप्प हो जाती है, कभी धीमी रहती है, और कभी बहुत तेज हो जाती है। आदि मानव का मस्तिष्क विकसित न होने के कारण लाखों वर्षों तक उसकी गति रुकी-सी ही रही। कभी-कभी उसमें जरा गति आ भी जाती, लेकिन जल्द ही ठप्प भी हो जाती। जब मनुष्य प्राचीन पाषाण-युग से नवीन पाषाण-युग में प्रविष्ट हुआ, उसके मस्तिष्क में जान आने लगी। वह ऊँचे दर्जे का चित्रकार बन गया। उसके पत्थर के औजार भी अब अधिक सुघड़ और सुन्दर बनने लगे। फिर मनुष्य पशु-पालक बना, और उसके बाद में किसान। किसान बनते ही उसके जीवन में नई-नई आवश्यकताएँ पैदा होने लगीं। और इन आवश्यकताओं ने ही उसके मस्तिष्क में कुछ-कुछ गर्मी भरनी शुरू करदी। उसने हल बनाये, नहरें निकालीं, बाँध-बाँधे, ईंटें बना कर अच्छे-अच्छे महलोंका निर्माण शुरू किया, और लिपिका भी

आविष्कार कर लिया। उसके ये सारे आविष्कार धीरे-धीरे सारी पृथ्वी पर फैलने लगे। नील नदी के कछारों में, दजला-फरात और सिन्धु की उपत्यकाओं में, चीन की ह्वाङ्हो और यांग्सी के विशाल अंचल में, प्रशान्त महासागर के द्वीपों में, यूरोप और अमेरिका के भूखण्डों में उसी समय अथवा बहुत समय बाद ये सारे आविष्कार होते और पहुँचते रहे। लेकिन इतने से ही उसका माथा ठण्डा नहीं हो सका। उसने और भी अनेक नई चीजों से परिचय करने की कोशिश शुरू की। इसी कोशिश के दौरान में उसे एक नई धातु से परिचय हुआ। इस धातु को हम 'ताँबा' कहते हैं।

ताँबे से परिचय होते ही मनुष्य बिल्कुल एक नये युग में प्रवेश कर गया। इस नये युग को विद्वानों ने 'ताम्र-युग' अथवा ताँबे का युग कहा है। मनुष्य अब तक पत्थर, हड्डी, सींग तथा लकड़ी के हथियारों का ही इस्तेमाल करता था। लेकिन अब वह ताँबे का कुल्हाड़ा, ताँबे की तलवार, भाले तथा तीर इस्तेमाल कर सकता था। फलस्वरूप उसके हथियारों में विकास आरंभ हुआ। विद्वानों ने इस प्रथम धातु ताँबा के आविष्कार का श्रेय भी मिस्र को ही दिया है।

प्राचीन भारतवर्षमें सिंधु नदीके किनारे मोहन-जो-दड़ो की सभ्यता भी उतनी ही प्राचीन मानी गई है जितनी कि मिस्र और मेसोपेटेमिया (दजला और फरात नदियों के बीच की भूमि) की। मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में से प्राप्त वस्तुओं के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि ताँबे का आविष्कार पहले-पहल शायद सिंधुकी उपत्यका में ही हुआ हो? अस्तु। इस ताँबे के मिलने से मनुष्य हथियारों की दृष्टि से भी काफी मजबूत होगया। उसने अपने धनुप-वाण का अच्छे ढंग से सुधार किया। शिल्प-सम्बन्धी कई हथियार बनाये। हल के लिए हल्के फाल बनाये। मिट्टी के बरतनों के अतिरिक्त अब वह ताँबे के बरतन भी बनाने लगा।

ताँबे के तेज हथियारों से जंगलों को साफ कर नये-नये खेत भी बनाने लगा था। लेकिन इसका यह मतलब कदापि नहीं कि मनुष्य ने पत्थर के हथियारों को एकाएक छोड़ ही दिया। भारत में इलाहाबाद के निकट भीटा नामक स्थान में खुदाई होने पर उसमें बहुत-से पत्थर के हथियार भी पाये गये हैं। विद्वानों ने इन हथियारों का काल ईसा से चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व निश्चित किया है। औ इंगलैंड में सन् १०६६ ई० में हेस्टिंग्स की लड़ाई में पत्थर कुल्हाड़े तक इस्तेमाल होने की बात तो इतिहास-प्रसिद्ध है ही।

मानव-जाति का प्रथम पत्रा :—

नील नदी के किनारे मनुष्य की संस्कृति एक बिल्कुल नये अध्याय में प्रविष्ट हुई जब उसने मानव-जाति का सबसे पहला पत्रा (वर्ष-कलेंडर) तैयार किया। जिस प्रकार मिस्र ने पहली चित्र-लिपि का आविष्कार किया, उसी प्रकार उसने संसार का पहला 'पंचांग' बनाकर मनुष्य की संस्कृति के विकास का एक नया मार्ग तैयार किया। यह पत्रा सन् ४२४१ ई० पू० में बनाया गयां। एक वर्ष में ३६५ दिन माने गये। इन्हें १२ महीनों में बाँटा गया। ३० दिन का एक महीना माना गया और शेष पाँच दिन वर्ष के अन्त में छुट्टी के माने गये। आकाश में बिखरे तारों का इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया। फिर तारों को कई वर्गों में बाँटा और १२ राशियों को निश्चित किया। इस प्रकार पहले-पहल मिस्र में ज्योतिष-शास्त्र का आरम्भ हुआ और बाद में वहीं से संसार के दूसरे भागों में वह फैला, ऐसा विद्वानों का मत है।

पिरामिड का निर्माण :—

मिस्र देश के 'पिरामिड' संसार में प्रसिद्ध हैं। संसार की सात आश्चर्यजनक वस्तुओं में इनकी गिनती की जाती है। ये इतने विशाल और इतने ऊँ[illegible] हैं कि इन्हें देखकर आज के युग में

भी लोग आश्चर्यभरे दिल से सोचा करते हैं कि किस प्रकार आज से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व मिस्र के निवासियों ने इन्हें तैयार किया होगा ? पिरामिड मानो आकाश से बातें करता एक विशाल स्तूप है जिसके पहले (नींव) चबूतरे की लम्बाई ७०० फुट तथा चौड़ाई भी उतनी ही है। फिर दूसरे चबूतरे की लम्बाई-चौड़ाई पहले से कुछ कम है। तीसरे चबूतरे की लम्बाई-चौड़ाई उससे भी कम। इस प्रकार चबूतरे का यह सिलसिला ऊपर की ओर उत्तरोत्तर छोटा होता गया है। और इस प्रकार पिरामिड की कुल ऊँचाई ४८० फुट तक चली गई है। यह दूर से पर्वत के गगन-चुम्बी शिखर-सा दीखता है। इसकी दीवारें सुन्दर, ठोस और चिकने पत्थरों से बनी हैं। अन्दर दीवारों पर बड़ी सुन्दर चित्रकारियाँ हैं। भीतर प्रकाश और हवा के पहुँचने के लिए बड़ी सफाई से सुरंगें बनी हुई हैं। अन्दर दो बड़े ही सुन्दर कमरे बने हुए हैं जिनमें एक में मिस्र के राजा की कब्र है, और दूसरे में रानी की। राजा-रानी की कब्र के ये महल ही पिरामिड हैं जिनके निकट से नील की धारा लग-भग ५७०० साल से बराबर बहती आ रही है। और इन पिरामिडों के द्वार पर पत्थर की एक ऐसी मूर्ति है जिसका चेहरा स्त्री-जैसा और धड़ सिंह-जैसी है। इसे स्फिक्स(Sphinx) कहते हैं।

आप जान कर आश्चर्य करेंगे कि इतनी बड़ी कब्र ! और इतनी मजबूत और इतनी सुन्दर ! सो भी उन दिनों में जब कि मनुष्य ने अभी-अभी ही पत्थर के युग से ताँबे के युग में कदम रखा था ! जबकि उसका मस्तिष्क आज के मनुष्य जितना विकसित नहीं हो पाया था ! और मनुष्य को आखिर क्या सूझी कि उसने राजा-रानी के लिए कब्र का इतना बड़ा स्तूप खड़ा कर दिया ?

मिस्र के छोटे-बड़े तीन पिरामिड, तथा मध्य में स्फिंक्स की मूर्ति

ये राजा-रानी क्या थे और मनुष्य का समाज उस समय किस अवस्था में पहुँच चुका था यह तो हम अगले अध्याय में बताने जा रहे हैं। अभी तो केवल इतना ही जान लीजिए कि मिस्र देश में राजा का दर्जा उन दिनों देवता और ईश्वर के बराबर बन चुका था। मिस्र के ये राजे 'फ़ेरो' कहे जाते थे। इनकी इच्छा ईश्वर की इच्छा, उनका आदेश ईश्वर का आदेश माना जाता था। ये राजे अपना पिरामिड अपनी जिन्दगी में ही बनवा जाया करते और उनके एक इशारे पर लाखों गुलाम और कारीगर दिन-रात खून-पसीना एक कर वर्षों में इस पिरामिड को तैयार करते। क्योंकि उन दिनों समाज में गुलामी प्रथा (दास्यवाद) का बोल-बाला था। संसार का सबसे पुराना इतिहासकार युनान-निवासी हेरोडोटस ने लिखा है कि इन पिरामिडों के विशाल चट्टानों को १ लाख आदमी तीन महीने तक लगातार ढोते रहे। चट्टानों के बड़े-बड़े खण्डों को काट छाँटकर आपस में जोड़कर इन पिरामिडों का निर्माण हुआ है।

मनुष्य के मस्तिष्क की चाल कभी-कभी बड़ी तेज हो जाती है, यह हम पहले ही बता आये हैं। उदाहरण के तौर पर आज के ही युग को लीजिए। आज मनुष्य का मस्तिष्क कैसी सरपट चाल से आगे दौड़ा जा रहा है? सो उन दिनों भी उसकी गति कुछ तीव्र हो चली थी। तभी तो उसने लिपि का आविष्कार किया, पत्रा बना डाला और ताँबे का पता लगा उसे गलाने का तरीका भी जान लिया। फिर उसी मस्तिष्क ने यदि पिरामिड जैसे आश्चर्य-जनक स्तूप का निर्माण कर दिखाया तो आश्चर्य की बात क्या? बाद में इन्हीं स्तूपों की नक़ल में युनान वालों ने अपने मन्दिर बनाये, और संसार की दूसरी जातियों ने भी उनका अनुकरण किया।

मिस्र के तीन राजाओं—चियोप्स, चिफ्रेन और माईसर-

मिस्र की मम्मी
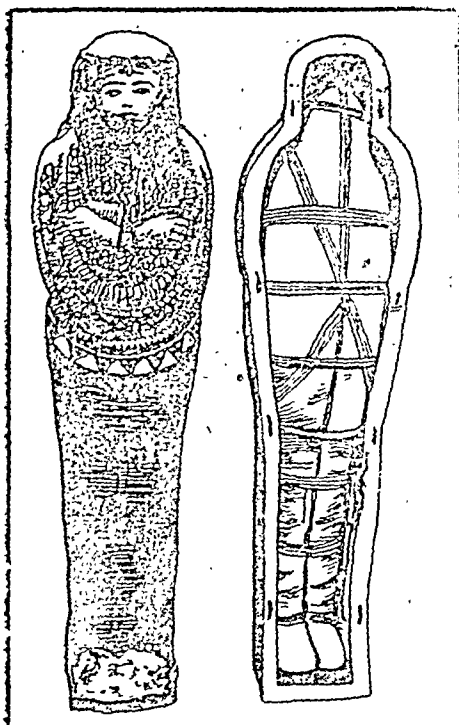
नीअस ने अपने-अपने समय में अपने-अपने पिरामिड बनवाये। मिस्र की वर्तमान राजधानी 'काहिरा' नगर से कुछ मील दूर 'गिजे' नामक स्थान में ये पिरामिड आज भी बड़ी शान से आकाश से बातें किये जा रहे हैं। अब हम बतायेंगे वह तरीका जिसके अनुसार राजाओं के शव इन पिरामिडों में दफनाये जाते थे :—

फेरों के मृत शरीर को चीरकर उसमें से हृदय और मस्तिष्क आदि भाग निकाल लिये जाते। शरीर के भीतरी भाग को दवाओं और सुगन्धित पदार्थों से साफकर उसमें सोना और दूसरे सुगन्धित पदार्थ भरकर उसे ठोस बना दिया जाता। फिर स्वच्छ सफेद कपड़े से उस शरीर को अच्छी तरह लपेट दिया जाता। चेहरे पर इस प्रकार चित्रकारी कर दी जाती मानो वह राजा की ही प्रतिमूर्ति हो। शरीर को 'मम्मी' कहा जाता है। फिर इस मम्मी को उत्तम काठ या धातु के लम्बे सन्दूक (कफन) में रख दिया जाता। उस कफन पर चारों ओर राजा के सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों

का विवरण लिख दिया जाता। राजा के कमरे में राजा की मम्मी रखी जाती और उससे पास के दूसरे कमरे में रानी की। उसके आस-पास कीमती गहने, बरतन, सुन्दर और मूल्यवान् कपड़े, हथियार और भोजन के पदार्थ सजाकर रख दिए जाते, ताकि परलोक में राजा-रानी को किसी चीज की कमी न रहे।

पीतल और लोहे का आविष्कार :—

मनुष्य के जीवन में पहले लाखों वर्षों तक पत्थर का ही प्रभुत्व रहा, यह हम बता आये हैं। उसके बाद हजारों वर्षों तक ताँबे की प्रधानता रही। यह ताँबा कब मनुष्य के जीवन में प्रविष्ट हुआ यद्यपि अब तक इसका निश्चय नहीं हो पाया है, किन्तु इतना लगभग निश्चित हो गया है कि सबसे पहले मिस्र वालों ने ताँबे का बड़े पैमाने पर उपयोग करना शुरू किया। फिर भी अनुमान है कि लगभग १० हजार वर्ष पूर्व ताँबे आविष्कार किया गया। इसके बाद ही सोने-चाँदी का पता भी लग गया। फिर इसके बाद मनुष्य को टिन का पता लगा। तांबे और टिन को मिलाकर मनुष्यने 'ब्रोंज' नामक एक नई धातु का निर्माण किया। यह ब्रोंज ताँबे से भी मजबूत साबित हुआ। इसके बाद ही पीतल का पता भी लग गया। पीतल ताँबे और ब्रोंज से भी मजबूत पड़ता था। और पीतल के बाद लोहे का आविष्कार किया गया जो इन सब से मजबूत और उपयोगी साबित हुआ। अनुमान है कि ईसा से १५०० वर्ष पहले तक पीतल का, और १४०० वर्ष पहले तक लोहे का आविष्कार हो चुका था। कहते हैं कि शुरू-शुरू में लोहे की इज्जत इतनी बढ़ गई थी कि वह सभी धातुओं से, यहाँ तक कि सोने-चाँदी से भी कीमती समझा जाने लगा था। इस लोहे का मानव-जीवन पर बड़ा ही प्रबल प्रभाव पड़ा। इसने सामाजिक विकास की गति को

आगे बढ़ाने में बड़ी ही मदद पहुँचाई।

चीन देश में आविष्कार :—

विद्वानों का मत है कि जिस समय मिस्र में फेरो सम्राटों का राज्य था, मेसोपेटेमिया में पुरोहित राजाओं का, और सिन्धु-उपत्यका में द्रविड़ों का, उसी समय चीन की ह्वाङ्गहो और यांग्सी नदियों की उपत्यकाओं में भी चीनी सभ्यता का विकास हो रहा था। बाद में २६९७ ई० पू० के आस-पास चीन में एक सुसंगठित साम्राज्य का उदय हुआ, और सबसे पहला सम्राट् हुआ 'ह्वांग-ती' जिसे पीत-सम्राट् भी कहते हैं। ह्वांग-ती ने पूरे सौ वर्ष वहाँ राज्य किया। वह स्वयं बड़ा विद्वान् और महान् आविष्कर्त्ता था। इसने नीचे लिखी चीजों का आविष्कार किया :— टोपी और पहनावा, गाड़ी और नाव, चूना और रंग, धनुष और बाण, सिक्के और कफन। उसने ज्योतिष-विद्या में अनेक सुधार किये। इसी समय चीन में इतिहास लिखे जाने की प्रथा भी चालू हुई।

उसके बाद 'यु' नामक सम्राट् ने नदियों के प्रवाह को समुद्र की ओर मुड़वा दिया। उसने नहरों का निर्माण कराया। ई० पू० ३०० वर्ष से पहले ही चोऊ-वंश के सम्राटों के समय में कुतुबनुमा (दिग्दर्शक-यन्त्र), कागज, छपाई और बारूद का आविष्कार किया गया। युद्ध-कला, स्थापत्य-कला, शासन-कला, संगीत और गणित आदि विद्याओं का भी विकास हुआ।

चीन की विशाल दीवार—चाऊ-वंश के राज्य के बाद ई० पू० २५६ के लगभग चिन-वंश का प्रथम सम्राट् 'वांग-चेंग' हुआ। सम्राट् बनते ही इसने अपना नाम बदल कर 'शी-हुवांग-ती' (=प्रथम सम्राट) नाम धारण किया। इसने अपने शासन-काल में अनेक बर्बर कार्य किये। अनेक विद्वानों को मरवा डाला। अनेक

पुरानी पोथियाँ जलवा डालीं। सिर्फ वैद्यक और विज्ञान की पुस्तकें उसने सुरक्षित रहने दीं।

इसी सम्राट् ने चीन की वह विशाल दीवार भी बनवाई जो संसार की सात आश्चर्यजनक वस्तुओं में गिनी जाती है। यह दीवार इतनी बड़ी है कि इसके सामने मिस्र का विशाल पिरामिड भी शून्य के बराबर है।

चीन की विशाल दीवार का एक भाग

उत्तर-पश्चिम की ओर से चीन पर हूणों के हमले हुआ करते थे। इन हमलों से बचाव के लिये जगह-जगह किले बनवाये गये थे, कुछ दीवारें भी। शी-हुवांग-ती ने इन सभी किलों और दीवारों को आपस में मिलाने के ख्याल से एक बहुत लंबी-चौड़ी दीवार बनाने का संकल्प किया, ताकि सदा के लिये हूणों के हमले को रोक दिया जाय।

यह दीवार बनकर तैयार हो गई। इसमें कितने जन-धन और

समय का खर्च हुआ होगा इसका अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि इस दीवार की कुल लम्बाई २२५० मील है। यह लगातार १५ से २० फुट तक ऊँची और १० से १५ फुट तक चौड़ी है। इस दीवार से जुड़े हुए लगभग २० हजार गुम्वज हैं जिनमें हरेक में लगभग १०० सिपाही रह सकते हैं। इस आश्चर्य-जनक दीवार के निर्माण का समय सन् २२८ से २१०ई० पू० माना जाता है।

आविष्कारों का मध्य महायुग :—

लोहे के आविष्कार से पहले ही *पहियों पर चलने वाली गाड़ियाँ* बना ली गई थीं। और ज्यों-ज्यों नगर-सभ्यता का विकास होने लगा, पक्के मकानों के बनाने के तौर-तरीकों में भी विकास होता गया। *मोरी के पाईप* भी बनाये जाने लगे थे। विभिन्न देशों में अपनी-अपनी लिपियाँ भी विकसित हो चुकीं थीं। आज से हजारों वर्ष पहले—शायद ईस्वी सन् से दो-तीन हजार वर्ष पहले ही चीन में *कागज बनाने और छापने के तरीके* मालूम हो चुके थे। ई० पू० १ हजार के आस-पास *पहली पनचक्की* बनने की बात भी कही जाती है। लगभग सन् ७०० ई० के आस-पास भारत ने *अंकोंका आविष्कार* कर लिया था। ये ही अंक बाद में भारत से अरब में और अरब से युरोप के देशों में पहुँचे। ६ ठी सदी में भारतीय ज्योतिषी आर्यभट्ट ने *सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने का सिद्धान्त* भी स्थापित कर दिया था।

सन् १००० ई० के आस-पास यूरोप के किसी ईसाई मठ में पहले-पहल *पेंडुलम् (यांत्रिक) घड़ी का आविष्कार* किया गया। सन् १२८५ ई० में *चश्मे का आविष्कार* अलकृसन्दर-द्-स्पीना ने किया। १३ वीं सदी में युरोप पर मंगोलों का हमला हुआ था। १३७० ई० के आस-पास मंगोलों द्वारा चीन से

बारूद, दिग्दर्शक-यन्त्र, चुम्बक, कागज और छपाई की कला युरोप में लाई गई। १५ वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कई छापेखाने युरोप में खुल गये। इंग्लैंड का पहला छापाखाना सन् १४५५ ई० में खुला। और इन सब आविष्कारों ने मिलकर युरोप में एक नये युग को जन्म दिया जिसे 'रिनेसाँ' (Renaissance) या 'पुनर्जागरण-युग' कहते हैं।

आविष्कारों का आधुनिक महायुग :—

आधुनिक युग से मतलब है 'पुनर्जागरण-युग' के बाद से लेकर अब तक का काल। इससे पहले मनुष्य के मस्तिष्क पर धार्मिक अंध संस्कार और रूढ़ियों का कुछ ऐसा जाल बिछा हुआ था कि स्वतन्त्र रूप से कुछ सोचने की शक्ति उसकी कमजोर पड़ चुकी थी। लेकिन जब वही मस्तिष्क रूढ़ियों और कुसंस्कारों के जाल से मुक्त हुआ तो आविष्कारों का ऐसा ताँता बँधता गया कि मानव-समाज विकास के पथ पर बड़ी तेजी से दौड़ने लगा। तब से कुछ सौ वर्षों के अन्दर ही समाज के कितने रूप बने और बिगड़े और अब भी बनते और बिगड़ते जा रहे हैं।

दूरबीन का आविष्कार—इटली-निवासी वैज्ञानिक गैलेलियो ने १६१२ ई० में दूरबीन(Telescope)का निर्माण किया। इस दूरबीन की मदद से लाखों मील दूर के ग्रहों और नक्षत्रों को आसानी से देखा जा सकता है। इस यन्त्र में सामर्थ्य है दूर की किसी भी वस्तु को बहुत बड़ा करके दिखाना। आकाश के रहस्यों को जानने में इस यन्त्र ने बड़ी सहायता पहुँचाई।

भाप के इंजन का आविष्कार—स्काटलैण्ड में ग्लैस्गो-निवासी जेम्स वाट ने सन् १७६५ ई० में भाप का पहला इंजन तैयार किया। शुरू-शुरू में इस इंजन से केवल कोयले की खानों से पानी

बाहर फेंकने का काम लिया जाता। लेकिन आगे चलकर जेम्स वाट ने इसी में कुछ ऐसा सुधार कर दिया कि सन् १७८५ ई० में भाप के इंजन से चलने वाली कपड़े की सबसे पहली मिल 'नॉटिंघम' नामक स्थान में खोली गई।

भाप के इंजन से चलने वाला पहला जहाज—अमेरिका के एक इंजीनियर 'फिल्टन' ने सन् १८०७ ई० में सर्व-प्रथम जहाज में भाप के इंजन का प्रयोग किया। समुद्र में भाप के इंजन द्वारा यात्रा करने वाले सबसे प्रथम जहाज का नाम 'फोनिक्स' (Phoenix) था। तभी से समुद्र पर चलने वाले जहाज का नाम स्टीमर (Steamer) भी पड़ा। अर्थात् स्टीम=भाप से चलने वाला=स्टीमर। सन् १८०६ ई० में पहली स्टीमर ने अटलांटिक समुद्र को पार किया।
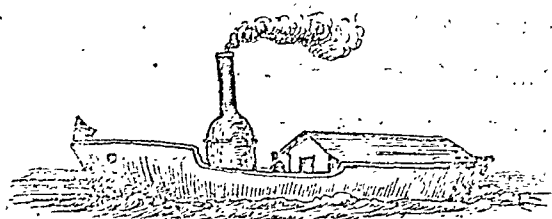
भाप से चलने वाला आरंभिक जहाज

रेल का इंजन—सन् १८१४ ई० में इंगलैंड के जार्ज स्टीफन्सन ने रेल का सबसे पहला इंजन तैयार किया। यह इंजन भी भाप पर ही चला करता था। इस इंजन से कोयले की छोटी-छोटी गाड़ियाँ खींची जाती थीं। फिर इस इंजन में कुछ और सुधार करके ही स्टीफन्सन ने १८२५ ई० में स्टोकटन और डार्लिंगटन के बीच संसार की सबसे पहली रेल्वे लाइन तैयार कराई। इस लाइन पर माल-गाड़ी चलने लगी। फिर

उसने एक द्रुतगामी इंजन तैयार किया। लिवरपूल और मैंचेस्टर नगर के बीच सवारी गाड़ी की पहली रेल्वे लाइन बनाई गई। इस लाइन पर प्रति घण्टा ३५ मील की चाल से वह इंजन चला था। इस इंजन का नाम राकेट था।
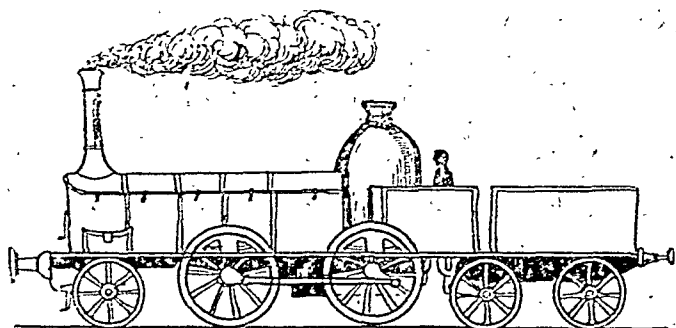
रेल का आरंभिक इंजन

इस प्रकार भाप की शक्ति पर काम करने वाले अन्य अनेक प्रकार के इंजन बनाये जाने लगे, मशीनें भी बनाई जाने लगीं।

बिजली का आविष्कार—भाप के आविष्कार के बाद बिजली के आविष्कार ने मानव-समाज को सबसे अधिक प्रभावित किया। सर्वप्रथम इंगलैंड के वैज्ञानिक 'फराडे' ने इसका पता लगाया। बिजली के आविष्कार के आधार पर ही *तार* और *टेलीफोन* का आविष्कार हुआ। सबसे पहली तार की लाइन १८३५ ई० में बनाई गई। १८५१ ई० में सबसे पहले फ्रांस और इंगलैंड के बीच तार भेजने की व्यवस्था की गई। १८६१ ई० में लोहे आदि धातुओं को गलाने के लिये *बिजली की भट्टी* बनाई गई। १८७६ ई० में *टेलीफोन* का पहले-पहल उपयोग हुआ। इसके बाद १८७८ ई० में अमेरिकन वैज्ञानिक 'एडीसन' और ब्रिटिश वैज्ञानिक 'स्वान' ने *बिजली की रोशनी और बल्ब* का आविष्कार किया।

कुछ और आविष्कार—सन् १८२७ ई० में *दियासलाई* का आविष्कार हुआ और सन् १८३६ ई० में *फोटोग्राफी* का। सन् १८४० ई० में स्काटलैंड के 'मेकमिलन' ने *वाइसाइकल* वनाई। १८५८ ई० में *लोहे से फौलाद* वनाने का तरीका निकाला गया। १८६४ई० में अमेरिका के 'वाटरमैन' ने '*फाउन्टेनपेन*' का निर्माण किया। सन् १८७३ई० में जर्मनी के 'शोंज' ने '*टाइपराइटर*' का आविष्कार किया।

मोटर और विमान—सन् १८६२ में फ्राँस के 'टिनोय' ने गैस से चलने वाली मोटर-कार वनाई। सन् १८८० ई० में पेट्रोल का पता लगा। पेट्रोल एक प्रकार का तेल होता है, जिसमें से भाप और विजली जैसी शक्ति पैदा होती है। सन् १८८७ में इसका उपयोग मोटर चलाने में किया जाने लगा। फिर १८६७ ई० में अमेरिका के प्रो० 'लेंगवे' ने विमान (हवाई जहाज) का निर्माण किया। पेट्रोल के द्वारा १६०३ ई० में अमेरिका के राइट-वन्धुओं ने पहले-पहल विमान को उड़ाया। १६०६ ई० में ऐसा विमान वना लिया गया जिसमें कुछ लोग वैठ कर यात्रा कर सकते थे। लेकिन विमानों
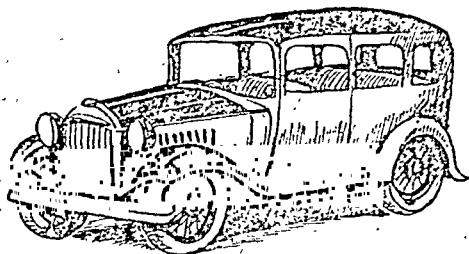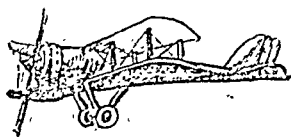
विमान और मोटर के आरंभिक नमूने

का पूरा उपयोग तो सन् १९१४-१८ के प्रथम विश्व महायुद्ध में ही किया गया और अब दिन-दिन उसका उपयोग अनेक क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है।

ग्रामोफोन, सिनेमा, रेडियो, टेलिविजन—अमेरिका के वैज्ञानिक 'एडीसन' ने सन् १८७६ ई० में *ग्रामोफोन* का आविष्कार किया। फिर सन् १८९३ ई० में इसी वैज्ञानिक ने *चल-चित्र* (फिल्म) का आविष्कार किया। फ्रांस के वैज्ञानिक 'लुमेरे' ने १८९५ ई० में एक यंत्र 'फिल्म-प्रोजेक्टर (Film-Projector) का आविष्कार किया, जिससे *सिनेमा* का निर्माण होना शुरू हुआ। इटली के वैज्ञानिक 'काउण्ट मार्कोनी' ने सन् १८९५ ई० में *वायरलेस* और *रेडियो* का आविष्कार किया। १२ दिसम्बर १९०२ को रेडियो द्वारा प्रथम समाचार भेजा गया। सन् १९२६ ई० में इंगलैंड के वैज्ञानिक 'बियर्ड' ने *टेलिविजन* का आविष्कार किया। टेलिविजन
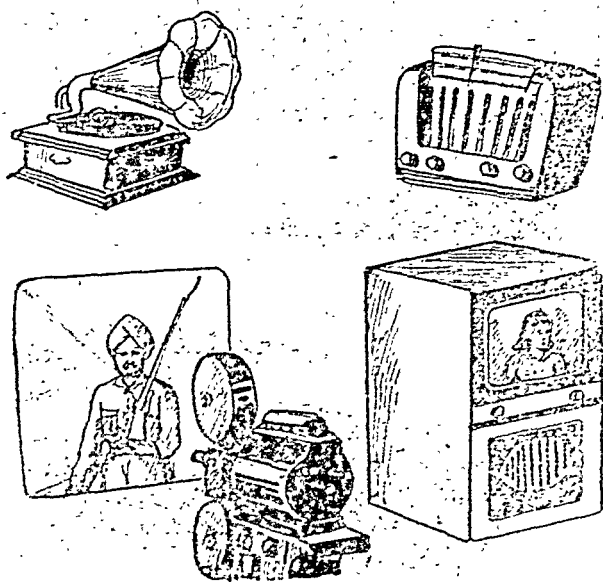
ग्रामोफोन सिनेमा रेडियो और टेलिविजन के नमूने

भी एक प्रकार का रेडियो है जिसमें बोलने या गाने वाले के छाया-चित्र भी दिखाई देते हैं।

परमाणु बम—इस बम का आविष्कार सन् १६४५ ई० में हुआ। इस बम में इतनी शक्ति है कि एक ही आघात में बड़े-से-बड़े नगर को नष्ट किया जा सकता है। अमेरिका ने पहले-पहल इस बम का प्रयोग ६ अगस्त १६४५ को जापान के 'हिरोशिमा' और 'नागाशाकी' नगर पर किया था। एक ही बम में सारा-का-सारा नगर नष्ट हो गया था। कुछ ही क्षणों में हिरोशिमा का वैभवशाली नगर ध्वस्त हो गया। गगन-चुम्बी इमारतों की जगह राख के ढेर लग गये। मुँह से आवाज निकली—'कोई मुझे बचाओ!' और दूसरे ही क्षण उसके प्राण-पखेरू उड़ चले। परमाणु बम चलते ही किसी को खून की कै हुई, सिर के बाल एकाएक उड़ गये, और वह मर गया। लोगों के अंग-अंग कटकर जहाँ-तहाँ बिखर गये! नरक का दृश्य उपस्थित हो गया! मानव-मस्तिष्क के इस आधुनिकतम आविष्कार में जिस प्रकार विनाश की यह चरमता प्रगट हुई, वैज्ञानिकों के मतानुसार इसमें उसी प्रकार निर्माण की चरमता भी छिपी हुई है। उनका मत है कि यदि मानव-समाज स्वार्थ के संकुचित दायरे से निकलकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से सोचना और आचरण करना आरम्भ कर देगा, तो उस दशा में परमाणु बम जैसे विनाशकारी शस्त्रों को निर्माण के कार्य में लगाकर सारे संसार को नरक के बजाय स्वर्ग बनाया जा सकेगा।

मानव की साहित्यिक प्रगति :—

अब तक हमने सांस्कृतिक विकास की धारा पर जो सामान्य प्रकाश डाला है, उसका अधिकतर सम्बन्ध मस्तिष्क से है। अब हम थोड़े में संस्कृति की उस धारा का भी उल्लेख कर दें, जिसमें

मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय का सहयोग अधिक है। इसे हम मृदु-साहित्य कहते हैं।

वेद—वेद मानव जाति का सबसे पुराना साहित्य है। जिस समय मिस्र और मेसोपोटेमिया में मानव-जाति की एक शाखा बड़े जोर से विकास की ओर अग्रसर हो रही थी, उसी समय मध्य एशिया में, सम्भवतः पामीर-पर्वतावली और काश्पियन सागर के आस-पास मनुष्य जाति की एक दूसरी शाखा अभी बिल्कुल घूमंतू हालत में ही मौजूद थी। इस जाति के मनुष्यों को 'आर्य' कहा जाता है। इन्हीं प्राचीन आर्यों ने वेदों की रचना की। प्रकृति के प्रति, ईश्वर के प्रति, देवी-देवताओं के प्रति उनके हृदय में उठी हुई भावनाओं को वेदों में व्यक्त किया गया है। उन प्राचीन आर्यों के रहन-सहन और जीवन के प्रति दृष्टिकोण का बड़ा सुन्दर वर्णन इन वेदों में पाया जाता है। इनकी रचना तो हजारों वर्षों से होती आ रही थी, किन्तु उन्हें नियमित रूप से लिखा जाने लगा तब जब आर्य-लोग सिंधु-उपत्यका में आकर बस गये थे। वेदों का रचना-काल ई० पू० २००० से ६००० वर्ष तक आँका जाता है।

योचिन और शूचिन—इसी प्रकार चीन में ह्वांगहो और यांग्सी नदी की उपत्यका में भी मानव-सभ्यता का विकास शुरू हो गया था। चीन के लोग मानव जाति की 'मंगोल' शाखा से उत्पन्न हुए बताये जाते हैं। सन् २३५७ से २२०६ ई० पू० समय में यहाँ पहले-पहल दो पुस्तकों की रचना हुई, जिनके नाम हैं 'यीचिन' और 'शूचिन'। यीचिन का मतलब होता है 'परिवर्तन के नियम'। इस पुस्तक में सृष्टि के रहस्य सम्बन्धी विचारों का संग्रह है। 'शूचिन' का मतलब है 'गीतों की पुस्तक'। इसके गीतों

में प्राचीन चीनी लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज और वैयक्तिक तथा सामाजिक भावनाओं का सुन्दर चित्रण कियागया है।

गिलगमिश—ई० पूर्व २००० वर्ष से भी पहले मेसोपोटेमिया के वावुल प्रदेश में 'गिलगमिश' महाकाव्य की रचना की गई। वावुल में गिलगमिश नाम का सम्राट् हो गया है। उसकी जीवन-कथा इस महाकाव्य में है। लेकिन इसके रचयिता का नाम शायद अभी मालूम नहीं हो सका है।

होमर—होमर उसी प्रकार युनान का आदि कवि माना जाता है जिस प्रकार वाल्मीकि भारत का। सन् ८०० ई० पू० के आस-पास उसने दो महाकाव्यों—'इलियड' और 'ओडेसियस' की रचना की। इनमें प्राचीन युनानी समाज और सामाजिक भावनाओं का वड़ा प्रभावोत्पादक चित्रण किया गया है। होमर सारे युरोप और सारे पश्चिमी जगत् का आदिकवि माना जाता है।

महाभारत—भारतवर्षमें ई०पू० छठी-सातवीं सदी में 'महाभारत' की रचना आरम्भ हुई ऐसा अनेक विद्वानों का मत है। यह भी वताया जाता है कि यह महान् ग्रन्थ किसी एक व्यक्ति की कृति नहीं है। सदियों तक इसकी रचना होती रही। किन्तु ई० पू० दूसरी शताब्दी तक महाभारत का वह रूप तैयार हो चुका था जिस रूपमें हमें आज वह उपलब्ध है। अर्थात् ई० पू० दूसरी शताब्दी तक महाभारत की रचना पूरी हो चुकी थी। इसके श्लोकों की संख्या एक लाख से भी ऊपर है। इतना निःसन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दू आर्यों के प्राचीन जीवन और आदर्श का इतना सही और सुन्दर चित्रण अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हो सकेगा।

वाल्मीकि—वाल्मीकि के समय के वारे में अभी विवाद है। कुछ लोग 'वाल्मीकीय रामायण' का रचना-समय ई० पू० दूसरी-

तीसरी शताब्दी बताते हैं और कुछ लोग इससे भी पूर्व। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसकी रचना ईस्वी सन् के आरंभ से पहले ही हुई। आर्यों के इस आदिकाव्य में पद-पद से रस की छलकती हुई धारा, और प्रकृति का मनोहर चित्रण आज भी पाठकों के मन को मुग्ध किये बिना नहीं रहता। इस महाकाव्य में उस समय के आर्यों के सामाजिक जीवन और जीवन के प्रति उनके निश्चित आदर्शों का बड़ा सजीव और संयत चित्र खींचा गया है।

कालिदास और दूसरे कवि—भारतवर्ष में वाल्मीकि के बाद सबसे कमाल की प्रतिभा कालिदास में प्रगट हुई। कालिदास से पहले भी भास, सौमिल्ल, अश्वघोष आदि कई प्रख्यात कवि और नाटककार हुए, किन्तु कालिदास की प्रतिभा का लोहा आज सारा संसार मान रहा है। कालिदास की मुख्य कृतियाँ हैं—अभिज्ञान शाकुन्तल, मालती-माधव, रघुवंश, कुमार-सम्भव, और मेघदूत। इसी प्रकार भारवि, भवभूति, माघ, बाणभट्ट और हर्ष आदि प्रसिद्ध कवियों ने अपनी-अपनी अमूल्य रचनाओं से संस्कृत-साहित्य को खूब समुन्नत किया है।

दाँते—इटली में महाकवि दाँते ने (१२६५-१३२१ ई०) 'दीवाइना कोमेदिया' (Divina Comedia) नामक काव्य में अपने सारे हृदय को उड़ेल कर रख दिया है। सारे युरोप और पश्चिमी संसार में इस काव्य का बड़ा ही सम्मान हुआ।

युरोप के अन्य साहित्यकार—*शेक्सपीयर* (१५६४-१६१६) इंगलैण्ड का सबसे प्रख्यात और प्रतिभाशाली नाटककार हुआ। इसकी कृतियों में 'रोमियो जुलियट' 'हेमलेट' 'टेम्पेस्ट' 'मर्चेंट आफ वेनिस' आदि नाटक सारे विश्व में सम्मान के साथ पढ़े जा रहे हैं। फ्रांस में अठारहवीं शताब्दी में *वोल्तेयर* और *रूसो* जैसे प्रसिद्ध साहित्यकार हुए, जिनके विचारों ने फ्रांस की उत्पीड़ित

जनता को क्रान्ति की ओर अग्रसर किया। उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध फ्रांसीसी कथाकार *विक्टर ह्यूगो* ने अपनी कृतियों द्वारा समाज में मानवता के भावों को संचारित करने की कोशिश की। जर्मनी के महाकवि *गेटे* अपनी कविताओं द्वारा मानव-हृदय के तल तक पहुँचने के प्रयत्न में सफल हुआ। रूस में रूसी साहित्य के पिता *अलेक्सान्द्र पुश्किन* ने अपनी कविताओं और कथाओं में जहाँ मानव-हृदय की रागिनी को अलापा, वहाँ शोषकों की अन्धेर-गर्दी का बड़ी निर्भीकता से पर्दाफाश भी किया। महान् रूसी कथाकार *टालस्टाय* के उपन्यास अपनी मानवीय भावनाओं के कारण सारे संसार में सम्मानित हैं। दलितों और शोषितों की इच्छा-आकांक्षा को रूस के अमर कथाकार *गोर्की* ने अपनी कृतियों में बड़े कौशल से अभिव्यक्त किया है। बीसवीं सदी के अंग्रेज नाटककार स्वर्गीय *बर्नार्ड शा* ने आज के सभ्य-सफेदपोशों के पाखण्ड का खुलकर पर्दाफाश किया है।

आधुनिक भारतीय साहित्यकार—इसी प्रकार भारत में कवि *रवीन्द्र*, कथाकार *शरत्* और *प्रेमचंद्र* आदि दर्जनों साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में मानव-मन को, उसकी इच्छा और आकांक्षा को बड़ी गहराई से अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। भारत की विभिन्न भाषाओं में आज दर्जनों प्रतिभावान् साहित्यकार अपनी अमूल्य एवं सजीव कृतियों से भारतीय वाङ्मय को समृद्ध करने जा रहे हैं। आजका भारतीय मृदु-साहित्य विश्व के किसी भी मृदु-साहित्य के समक्ष हेय नहीं कहा जा सकता।

प्रमुख दार्शनिक और वैज्ञानिक :—

प्राचीन भारत और प्राचीन युनान ने एक-से-एक दार्शनिक पैदा किए। ई० पूर्व कई सौ वर्षों से ही भारत ने कपिल, कणाद,

गौतम जैसे दार्शनिकोंको उत्पन्नकर संसारमें बड़ी धाक जमा ली। भगवान् बुद्ध जहाँ एक ज़बर्दस्त धर्म-प्रचारक थे, वहाँ उनके अनुयायियोंमें असंग, वसुबन्धु, नागार्जुन और धर्मकीर्ति जैसे जबर्दस्त दार्शनिक हुए, जिनकी बुद्धि का लोहा आज भी दुनिया स्वीकार करती है। युनान में हेराक्लितु, देमोक्रितु, सुकरात, अफलातूँ और अरस्तू जैसे विचारक पैदा हुए जिनकी प्रतिभा सारे युरोप और पश्चिमी संसारपर सैकड़ों-हजारों वर्षों से प्रभाव डालती आ रही है। सत्रहवीं सदी के युरोपीय दार्शनिकों मुख्य हैं बैकन, हाव्स, लाइपनिट्ज, लॉक, दकार्त और स्पिनोजा आदि। १८-१९ वीं सदी में जर्मनी में फ्रेडरिख हेगेल नाम का बहुत बड़ा दार्शनिक हुआ, जिसने मार्क्स जैसे विचारकों को भी खूब प्रभावित किया। १९ वीं सदी में जर्मनी में 'कार्ल मार्क्स' के रूप में समाज-विज्ञान एक ऐसा जबर्दस्त विचारक प्रगट हुआ जिसके विचारों ने संसार के कोने-कोने में दलितों और शोषितों को संगठित रूप में उठ खड़े होने का सन्देश दिया।

वैज्ञानिक क्षेत्र में १६-१७ वीं शताब्दी में इटली के वैज्ञानिक 'गेलेलियो' ने सबसे पहला दूरबीन बनाया। १७-१८ वीं सदी के ब्रिटिश वैज्ञानिक 'न्यूटन' ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त स्थापित किया। इस सिद्धान्त द्वारा यह जाना जा सका कि ये सारे ग्रह—पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य आदि एक-दूसरे के आकर्षण के बल पर एक-दूसरे के चारों ओर चक्कर लगाया करते हैं।

१९—वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इंगलैण्ड के चार्ल्स डार्विन ने विकासवाद के सिद्धान्त को स्थापित कर सारे संसार में एक बड़ी हलचल पैदा कर दी। २०—वीं सदी के आरम्भ में जर्मनी-निवासी आइन्स्टाइन के सापेक्षता-सिद्धान्त(Theory Of Relativity) ने विज्ञान-जगत् में एक नई क्रान्ति पैदा कर दी।

इस सापेक्षता-सिद्धांत का सारांश नीचे लिखे अनुसार है—प्रकृति द्वारा एक समान नियम में बँधे होकर ये सारे ग्रह-नक्षत्र और दूसरे पदार्थ निरंतर गतिशील हैं। इन सबकी गति परस्पर सापेक्ष है। अर्थात्, इन सबकी अलग-अलग गतिशीलता का पता हमें एक दूसरे की गति को देख कर ही चलता है। हम आकाश में ग्रह-नक्षत्रों को निरंतर चलते और स्थान बदलते देखते हैं। यह हमें इसलिये दिखाई देता है कि ये सब एक समान नियम के अनुसार अपनी भिन्न-भिन्न चालों से आकाश में चलते रहते हैं। एक की गति को देख हम दूसरे की गति पहचानते हैं। यदि आकाश में किसी एक ग्रह-नक्षत्र को छोड़ अन्य सभी ग्रह-नक्षत्र दिखाई न दें, तो हम उस एक ग्रह-नक्षत्र की गति का कतई पता नहीं पा सकते। अतः आइन्स्टाइन का सापेक्षता-सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि इस विश्व के सभी पदार्थ अपनी-अपनी परख के लिये एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। अर्थात् किसी एक पदार्थ की गति अथवा शक्ति की परख के लिये दूसरे पदार्थ की गति और शक्ति की अपेक्षा पड़ती ही है।

इसी प्रकार किसी भी पदार्थ की चरम गति अथवा शक्ति का निश्चय नहीं किया जा सकता। अर्थात्, यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक ग्रह-नक्षत्र अथवा पदार्थ की गति या शक्ति इतनी ही तक सीमित है, इससे अधिक की संभावना नहीं है। उदाहरण के तौर पर, यदि दो पौंड कोयले को बिल्कुल शक्ति में परिवर्तित कर दिया जाय तो उससे उतनी बिजली पैदा की जा सकेगी जितनी कि संयुक्त राज्य अमेरिका के बिजली के सारे कारखाने लगातार दो महीने चलते रहकर उत्पन्न कर सकेंगे। वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि परमाणु-बम को बनाने में आइन्स्टाइन के इस सिद्धांत से बड़ी मदद मिली है। अलबर्ट आइन्स्टाइन मार्च सन्

१८७१ में जर्मनी में एक यहूदी-कुल में पैदा हुए। फासिस्ट हिटलर द्वारा अपनी जन्म-भूमि से निर्वासित किये जाने के कारण अब वे संयुक्त राज्य अमेरिका में रह रहे हैं।

धर्म और पैगम्बर :—

यह हम पहले बता आये हैं कि जबसे मनुष्य के हृदय में भय और आश्चर्य की भावना का संचार हुआ तभी से धर्म ने मनुष्य के जीवन में प्रवेश किया। मिस्र में, मेसोपोटेमिया और सिन्धु की उपत्यकाओं में सभ्यता के विकास के साथ धर्म का विकास भी हुआ। आर्यों में धर्म का आरम्भ यज्ञ के रूप में हुआ जिसमें वे अपने देवताओं को प्रिय वस्तुओं और भोग्य पदार्थों का उपहार दिया करते थे। इसे *वैदिक धर्म* कहते हैं।

ईसा से हजारों वर्ष पहले फारस में *जरथुस्त्र धर्म* का आरम्भ हुआ जिसमें अग्नि, जल और सूर्य की पूजा की प्रधानता है। इसी धर्म को आजकल भारत के पारसी-लोग माना करते हैं। इस धर्म के अनुसार इस सारे संसार का कर्ता-धर्ता 'अहुरमज्द' (महान् देवता) है। पारसी धर्म के पैगम्बर का नाम जरथुस्त्र था।

सन् १६०० ई० पू० में फिलस्तीन में *यहूदी धर्म* उत्पन्न हुआ। इस धर्म का पैगम्बर था 'मूसा'। कहा जाता है कि मूसा को ईश्वर ने दस आदेश दिए। उन्हीं दसों के आधार पर उसने यहूदी-धर्म-शास्त्र का निर्माण किया।

ईसा से सैकड़ों वर्ष पहले चीन में *कन्फ्युशियस* धर्म का, और जापान में *शिन्तो* धर्म का उदय हुआ। कन्फ्युशियस पूर्वजों की पूजा पर अधिक जोर देता है और शिंतो राजाओं की पूजा पर। शिंतो धर्म के अनुसार 'सूर्य देवी' ने अपने वंशकी जिम्मू नामक संतान को जापान में सम्राट् बनाकर भेजा और उसी से सन् ६६०

ई० पूर्व से जापानी सम्राटों का वंश आरम्भ हुआ। 'सूर्य-देवी' इस धर्म का पूज्य देवता है।

ईसा से पूर्व सातवीं-छठी सदी में भारतवर्ष में एक महान् धर्म का उदय हुआ जिसे *बौद्ध-धर्म* कहते हैं। बुद्ध इस धर्म के पैगम्बर या प्रचारक थे। उस समय वैदिक-धर्म में कर्मकाण्ड का आडम्बर और पशु-हिंसा का बड़ा जोर हो चला था। उन्हीं के विरुद्ध बुद्ध ने आवाज बुलन्द की थी। इस धर्म का इतना अधिक प्रचार हुआ कि कुछ सौ साल के भीतर ही सारे एशिया-खण्ड में इसकी तूती बोलने लगी।

इसके बाद संसार में जिस दूसरे महान् धर्म का उदय हुआ उसे *ईसाई* या *क्रिश्चियन-धर्म* कहा जाता है। फिलस्तीन के यहूदियों में ही 'मरियम' नाम की एक कुमारी के गर्भ से 'यीशू' नामक एक पुत्र पैदा हुआ। इसी 'यीशू' ने आगे चलकर यहूदी-धर्म के खिलाफ *ईसाई धर्म* का प्रचार किया। यीशू को ही 'ईसामसीह' या "क्राइस्ट' कहा जाता है। वर्तमान 'ईस्वी सन्' ईसा के जन्म-दिन से आरम्भ हुआ माना जाता है।

ईसाई-धर्म के जन्म के बाद सन् ५७० ई० में अरब देश के 'मक्का' नगर में हजरत मोहम्मद का जन्म हुआ, जिन्होंने 'इस्लाम' या *मुस्लिम-धर्म* को जन्म दिया। बचपन में मुहम्मद गडरिया था। बाद में उसने मक्का के एक धनी व्यापारी की विधवा 'ख़दीजा' नामक स्त्री के यहाँ नौकरी कर ली। फिर २५ वर्ष की उम्र में उसने ४० वर्ष की ख़दीजा से विवाह किया, और फिर अपने 'इस्लाम' धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया।

मानव-समाज के विकास की ऐतिहासिक धारा

[६]

हम पहले बता आये हैं कि अब तक के शोध और खोज के आधार पर विद्वानों ने मनुष्य के सांस्कृतिक व सामाजिक विकास को मुख्यतः तीन युगों में बाँटा है—(१) *पाषाण-युग*, जिसमें मनुष्य का रहन-सहन मुख्यतः पत्थर के औजारों पर निर्भर था; (२) *ताम्र-युग*, जिसमें मनुष्य ने अपने औजारों के लिए ताँबे को विशेष रूप से अपनाया; और (३) *लौह-युग*, जिसमें मनुष्य की प्रगति का सारा दारोमदार लोहे पर आ पड़ा। अत्यन्त संक्षेप में पहले यह भी बताया जा चुका है कि मनुष्य ने धीरे-धीरे किस प्रकार वाणी, लिपि, शिल्प, साहित्य और संगीत आदि का विकास करते-करते अन्त में विज्ञान के चमत्कार-पूर्ण युग में प्रवेश किया। लेकिन अब हम संक्षेप में मानव-समाज के उस ऐतिहासिक धारा के सम्बन्ध में बताने जा रहे हैं जो आदिमानव के समय से आज तक बहती आई है, बहती जा रही है, और इस धारा से गुजरते हुए समाज के अनेक रूप बने, बनकर बिगड़े, और आज भी बन-कर बिगड़ते और सुधरते जा रहे हैं। इस अध्याय में समाज के उन्हीं रूपों की एक सरसरी झाँकी हम देने जा रहे हैं।

मानव-समाज क्या है ? :—

विद्वानों ने बताया है कि व्यक्तियों के समूह को 'समाज' कहते हैं। लेकिन केवल दो, चार, दस अथवा दो, चार, दस लाख

व्यक्तियों का एक स्थान पर समूह रूप में इकट्ठा हो जाना 'समाज' नहीं कहा जायगा। उस समूह को 'समाज' तभी कहा जायगा यदि हर व्यक्ति के आचार-विचार अथवा जीवन व्यतीत करने के तरीकों का एक-दूसरे पर असर पड़ता हो, और सारे समूह का असर उस व्यक्ति पर पड़ता हो। जिस समूह में प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति-गत रूप से अलग-अलग हरकतें करता हुआ भी समूह से अपने को अलग न समझे, अपने पर उस समूह के नियम-कानून की पावन्दी महसूस करे, तभी वह समूह 'समाज' कहा जाता है। एक व्यक्ति तथा उस व्यक्ति का निजी जीवन—अर्थात् उसका आचार-विचार सारे समाज का एक अंग होते हुए भी 'समाज' नहीं कहा जायगा। घड़ी के पुर्जों के अलग-अलग रूप हैं, अलग-अलग गुण हैं। इन्हीं पुर्जों को फिर एक साथ मिलाकर घड़ी वनाई जाती है। किन्तु उन पुर्जों को वेतरतीव ढंग से एक जगह ढेर कर देने से ही तो घड़ी नहीं वन जाती? हर पुर्जे को तरतीव से सजाना पड़ता है। इसी प्रकार मानव-समाज के वारे में भी जानना चाहिए। अर्थात् मनुष्यों के व्यवस्थित समूह और उस समूह के जीवन-यापन का व्यवस्थित तरीका इन सवको मिलाकर ही 'समाज' कहा जाता है।

समाज की ऐतिहासिक अवस्थाएँ :—

मानव-समाज के इतिहास की पूरी तरह छान-वीन करने के वाद विद्वानों ने निश्चित किया है कि समाज अव तक पाँच अवस्थाओं को देख चुका है—(१) आदिम साम्यवाद, (२) दास्यवाद, (३) सामन्तवाद, (४) पूँजीवाद और (५) समाजवाद। समाज ज्यों-ज्यों एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता गया, त्यों-त्यों वह जीवन और विचार के ऊँचे स्तरों पर पहुँचता गया। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में वह यों ही प्रवेश

नहीं कर गया, बल्कि इसके लिए उसे बहुत जबर्दस्त संघर्ष भी करना पड़ा।

अब हम आगे संक्षेप में यह बताने जा रहे हैं कि समाज-की इन अवस्थाओं के रूप क्या हैं, और किस प्रकार समाज एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता गया है।

(१) आदिम साम्यवाद

जंगलीयुग—यह बताया जा चुका है कि इस पृथ्वी पर लगभग ५ लाख वर्ष पूर्व मनुष्य प्रगट हुआ। जावा-मानव, हेडेलवर्ग-मानव, पेकिंग-मानव, नीअंडर्थल-मानव और क्रोमेग्नन्-मानव आदि सभी मानव जातियाँ एक-एक कर इस धरा-धाम पर आईं और विनष्ट होती गईं। इनके विनाश में कारण यह बताया जाता है कि इस बीच इस पृथ्वी पर बारी-बारी से चार बार भीषण हिमपात (प्रलय) हुए। सारी पृथ्वी बरफ से पट गई। इन्हीं हिमपातों में ये जातियाँ मौत के मुँह में समा गईं। प्राकृतिक वातावरण से निरन्तर संघर्ष करते रहने के बाद जो कुछ लोग बच गये उनमें जाति-परिवर्तन होकर नई नई जाति भी पैदा होती रही। सबसे पिछला हिमपात अभी दस हजार वर्ष पहले हुआ बताते हैं। इसके बाद जो नई मानव-जाति इस पृथ्वी पर आई उसे 'होमोसपिअन-मानव' कहते हैं। होमोसपिअन का अस्तित्व इससे पहले भी था। इस युग से पहले के क्रोमेग्नन और ग्रिमाल्डी मानव इसी होमोसपिअन जाति के माने गये हैं। इसी होमोसपिअन जाति से आज पृथ्वी की सारी मानव-जातियाँ उत्पन्न हुई मानी जाती हैं। इस जाति का भी आरम्भिक जीवन जंगली ही रहा और इससे पहले के मनुष्यों के जीवन भी जंगली ही थे।

विद्वानों का अनुमान है कि मनुष्य का यह लाखों वर्षों का जंगली जीवन आपस में समानता की भावना से सराबोर रहा।

इस जंगली मानव की सम्पति बहुत थोड़ी होती और समाज भी बहुत छोटा होता। एक परिवार एक समाज होता। उनके पास जो कुछ भी था उस पर सारे समूह का अधिकार माना जाता। उनके पास पत्थर, लकड़ी और हड्डी के औजार थे। इन औजारों पर भी सबका अधिकार था और इन औजारों के सहारे किये गये शिकार पर भी। जंगल से कन्द, मूल, फल आदि जो कुछ भी वे लाते सब पर समूह का अधिकार होता। सब उसे बाँटकर खाते।

आदिम साम्यवादी समाज में माता का स्थान—इस समय मनुष्य का समाज उसके परिवार तक ही सीमित था। एक परिवार के लोग गिरोह बाँधकर एक साथ रहा करते थे। उनमें उस समय शादी-ब्याह का रेवाज न था। जिस प्रकार उनका अधिकार सामूहिक था, उसी प्रकार शादी-ब्याह भी। अर्थात् परिवार की सारी स्त्रियाँ पत्नी मानी जातीं और सारे पुरुष पति माने जाते। इसे विद्वानों ने "यूथ-विवाह" (Grroup-mariage) नाम दिया है। सब स्त्रियों पर सब पुरुषों का अधिकार था, और सब पुरुषों पर सब स्त्रियोंका। आज हम-लोग भले ही उस आदिम-मानव के इस रीति-रेवाज पर आश्चर्य अनुभव करें, किन्तु उनके लिए इसमें न कोई आश्चर्य था, न अस्वाभाविकता थी। जहाँ, जब, जैसी भी रीति प्रचलित होती है वहाँ वह स्वाभाविक ही महसूस होती है। आज भी तिब्बत में सभी भाइयों के एक ही पत्नी होती है। हिमालय पर्वत पर यमुना और टौन्स नदी के बीच 'जौन-सार बावर' के इलाके के हिन्दुओं में आज भी एक स्त्री के अनेक पति होने की प्रथा प्रचलित है। सगे भाइयों का अपनी पत्नियों पर उपभोग का सामूहिक अधिकार आज भी वहाँ मान्य है। दक्षिण भारत में केरल प्रान्त के निंबूदरी ब्राह्मणों

में सगी भान्जी और सगे मामा का परस्पर ब्याह बड़ा ही उत्तम माना जाता है।

मिस्र और ईरान के पुराने राजाओं—फ़ेरों और शाहों में भाई-बहन की शादी के अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं। महाभारत में भी शादी-ब्याह के ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं, अनेक प्रमाण हैं, जिनके आधार पर बड़ी दृढ़ता से कहा जा सकता है कि आदिम मनुष्यों का जैसे भोजन और अधिकार सामूहिक था वैसे ब्याह भी।

हाँ, तो इस परिवार में माताओं का स्थान बड़ा ऊँचा था। क्योंकि ऐसे समाज में पिता का निश्चय करना बड़ा कठिन था, इसलिए बच्चे माँ का नाम लिया करते थे। केरल प्रदेश (ट्रांवनकोर कोचीन राज्य) में तो आज भी बच्चे माँ का ही नाम लेते हैं। उस आदिम समाज की माताओं में भी एक बड़ी माँ होती, जो सारे परिवार की मालकिन होती। परिवार की सारी व्यवस्था और देख-रेख की मुख्य जिम्मेवारी इसी बड़ी माँ पर होती। भोजन के लिए जब आग के चारों ओर परिवार के सभी स्त्री-पुरुष इकट्ठे होते, तो भोजन परोसने और बाँटने का काम भी यही बड़ी माँ करती। हर एक स्त्री के मन में एक समय परिवार की बड़ी माँ बनने की लालसा छिपी ही रहती।

जन-युग—जब यह जंगली मानव-समाज कुछ और आगे बढ़ा, जब उसकी जन-संख्या में धीरे-धीरे वृद्धि होने लगी तो उसके अनेक परिवार भी बनने लगे। ये ही सब परिवार एक स्थान पर रहने लगे। परिवारों के इस समूह को विद्वानोंने 'जन' या 'कबीला' कहा है। इन जनों के परिवारों में भी माताओं की ही प्रधानता रही। सम्पत्ति पर सबका अधिकार समान ही रहा। इस युग के मनुष्य की मुख्य सम्पत्ति पशु और पशु से उत्पन्न वस्तुएँ थीं।

वह अब तक पशु-पालक बन चुका था, किन्तु खेती-बाड़ी के काम से अनभिज्ञ था। उसके हथियारों में भी बहुत कुछ सुधार हो चुका था। अब वह पत्थर के कुल्हाड़े बनाने लगा था। वह धनुप-बाण का आविष्कार भी कर चुका था।

पृथ्वी के कुछ भाग में आज भी जनयुग—पृथ्वी पर सभी मनुष्यों का विकास एक-जैसा नहीं हुआ। कहीं तो आज से हजारों वर्ष पहले ही मनुष्य विकास की काफी ऊँचाई पर जा पहुँचा था, और कहीं आज भी वही हजारों वर्ष पुरानी जंगली अवस्था मौजूद पाई जाती है। पिछली शताब्दी में मोर्गन नामक विद्वान ने अमेरिका के आदि-निवासी रेड-इण्डियनों के सम्बन्ध में काफी छान-बीन की है, जिससे पता चलता है कि इन रेड-इण्डियनों की अनेक जातियाँ आज भी जन-युग में ही चक्कर काट रही हैं। मोर्गन के अनुसार इनकी जनसंख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, वे कई जनतों (परिवारों) में बँटते जाते हैं। फिर कई कबीलों में। इनके आपसी झगड़े निबटाने के लिए अपना संगठन होता है, किन्तु बाहरी झगड़ों का निबटारा वे युद्ध के द्वारा ही करते हैं। एक कबीला दूसरे कबीले का सर्वनाश भले ही कर दे, किन्तु विजयी कबीला पराजित कबीले को गुलाम नहीं बनाता। हम यह आगे बतायेंगे कि विजयी कबीले के मन में जब पराजित कबीले को गुलाम बनाने की भावना पैदा हुई, तभी से मनुष्य जन-युग से दास-युग में प्रविष्ट हुआ, और तभी से मनुष्य के मन में वैयक्तिक (निजी) सम्पत्ति की भावना का भी उदय हुआ।

हाँ, तो इन रेड-इण्डियनों में दासता और परतन्त्रता नहीं पाई जाती। उनके घर के भीतर भी स्त्री-पुरुषों का काम स्वाभाविक तौर पर बँटा होता है। पुरुष लड़ाई करते हैं, मछली और जानवर का शिकार करते हैं, हथियार बनाते हैं। स्त्रियाँ घर का काम-

काज देखती हैं। खाना-कपड़े का इंतजाम, रसोई, बुनाई, सिलाई का काम करती हैं। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों ही मालिक हैं। जंगल का स्वामी पुरुष है और घर के भीतर स्त्री का राज है। पुरुष मछली और जानवर के शिकार में काम आने वाले हथियारों का स्वामी है, तो स्त्री घरके समान की मालकिन है। घर कई परिवारों के लिए एक ही होता है। कभी-कभी वह इतना बड़ा होता है कि उसमें ७०० व्यक्ति तक एक साथ रहते हैं।

इसी प्रकार पृथ्वी के कई अन्य जंगली जातियों में भी इससे मिलते-जुलते सामाजिक संगठन पाये जाते हैं।

जन-युग में शादी-ब्याह—आदिम साम्यवादी अवस्था में ही मनुष्य जब कुछ आगे बढ़ा, शादी-ब्याह के रेवाज में भी परिवर्तन होना शुरू हुआ। एक परिवार के भीतर ब्याह निषिद्ध माना जाने लगा। इसी युग में नजदीक खून वाले सम्बन्धियों में भी विवाह वर्जित कर दिया गया। अब सामूहिक विवाह न होकर दो स्त्री-पुरुषों में शादी होने लगी। इस प्रकार के विवाह को विद्वानों ने "मिथुन-विवाह" (Pairing Marriage) कहा है।

इस विवाह में लेकिन फिर भी कुछ ढीलापन था। एक पुरुष की स्त्री के साथ दूसरा पुरुष भी रमण कर सकता था। इस सम्बन्ध में महाभारत के आदि-पर्व में श्वेत-केतु ऋषि की कथा प्रसिद्ध है। उसमें बताया गया है कि श्वेत-केतु के सामने ही उसकी माता को एक ऋषि रमण करने के लिए ले जाना चाहता था। श्वेत-केतु ने इसका विरोध किया, किन्तु उसके पिता ने यह कहकर उस ऋषि का अनुमोदन किया कि यह तो सामाजिक-धर्म है, सदा से ही ऐसा होता आया है। श्वेत-केतुने

इस प्रथाको उसी समय हटा देने की प्रतिज्ञा की और आगे ऋषि बनकर उसने दृढ़-विवाह की प्रथा चलाई।

(२) दास्यवाद

जन-युग तक में मनुष्य की स्थिति साम्यवादी ही रही और परिवार में स्त्रियों का सम्मान और अधिकार पुरुषों के बराबर रहा। इस साम्यवादी युग के बाद मनुष्य दास-युग में प्रविष्ट हुआ। अब हम संक्षेप में उस वातावरण पर प्रकाश डालने जा रहे हैं जिसने मानव-समाज में दास्य-वाद को जन्म दिया।

पितृ-सत्ता और व्यक्तिगत सम्पत्ति—मनुष्यों में आबादी की वृद्धि के साथ उनके जन या कबीले भी बढ़ने लगे थे। अब एक खास जगह पर टिके रहना उनके लिए आसान न था। एक स्थान पर टिके रहने पर आहार-सामग्री की कमी पड़ जाती थी, पशुओं के चारे की कमी हो जाती थी। तब वे स्वभावतः झुण्ड बनाकर ऐसी नई जगहों की खोजमें निकला करते थे, जहाँ पशुओं के लिये चारे की सुविधा और मनुष्यों के लिए कन्द, मूल, फल और शिकार की बहुतायत होती। इसप्रकार चलते-चलते रास्ते में नई जाति के नये कबीलों (जनों) से उनकी मुठ-भेड़ हो जाती। युद्ध शुरू हो जाता। एककबीले के लोग दूसरे कबीले वालों को हराकर उनका कत्लेआम कर देते। यदि पुराना कबीला जोरदार हुआ तो वह नवागंतुक कबीले को नष्ट कर देता, और यदि नवागंतुक जोरदार हुआ तो पुराने को नष्टकर वहाँ स्वयं जम जाता।

इस प्रकार कबीलों में युद्ध की भावना बढ़ने लगी और साथ ही दूसरे कबीले से अपने कबीले की रक्षा की भावना भी। इस रक्षा की भावना ने उनमें ऐसे व्यक्ति को नेता चुनने की सूझ पैदा

की जो शरीर से बलवान् होता, युद्ध-विद्या में सबसे निपुण होता, अन्य बातों में भी चतुर होता।

मनुष्य अब खेती-बाड़ी की ओर भी अग्रसर हो चुका था। खेती-बाड़ी के काम में अधिक मनुष्यों की जरूरत उसे महसूस होने लगी थी। अब यदि कबीलों का परस्पर युद्ध आरंभ होता, तो पराजित कबीलों के लोगों को जान से मार डालने के बजाय उन्हें दास बना लेने में ही उन्हें अधिक लाभ दिखाई दिया। वे उन दासों से खेती-बाड़ी और पशु-पालन का काम लेने लगे। इसमें फायदा ही फायदा नजर आया। धन-दौलत बढ़ने लगी। अब तो मनुष्य पर दासों का स्वाद इस प्रकार हावी हो गया कि वह अधिक-से-अधिक दास प्राप्त करने के लिए ही अपने आस-पास के कबीलों पर हमले करने लगा। बाकायदा युद्ध का महत्त्व भी बढ़ गया। और इस युद्ध के महत्त्व ने पुरुषों के महत्त्व को बढ़ा दिया। क्योंकि स्त्रियाँ इस काम में कमजोर साबित हुईं। तभी से समाज में स्त्रियों का मान और अधिकार कम होने लगा, और पुरुषों का मान-अधिकार बढ़ चला। परिवार पर से मातृ-सत्ता समाप्त होती गई, और पितृ-सत्ता उस पर हावी होती गई। समाज में 'दास्यवाद' के प्रवेश से जहाँ धन-दौलत में वृद्धि होने लगी वहाँ व्यक्तिगत लोभ, लालच, ईर्ष्या और द्वेष भी बढ़ने लगे। मनुष्य के मन में यह भाव पैदा होने लगा—"मुझे अधिक चाहिए, मुझे अधिक चाहिए।" और इस "अधिक चाहिए, अधिक चाहिए" की होड़ में वह व्यक्ति विजयी होने लगा, जो बुद्धि और शरीर दोनों ही दृष्टि से मजबूत साबित हुआ। इस प्रकार दास्यवादी समाज में पिताओं का अधिकार तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रथा कायम हो चली।

भिन्न-भिन्न देशों में दास्यवाद का परिणाम—यह तो हम पहले ही बता आये हैं कि मनुष्य का विकास एक समय में सब जगह एक-जैसा नहीं हुआ। यही कारण है कि कहीं आज से हजारों वर्ष पहले ही मनुष्य विकास की कई सीढ़ियों को पार कर गया, और कहीं आज भी विकास की पहली सीढ़ी पर ही बैठा हुआ है। मनुष्य के इस विकास में प्राकृतिक वातावरण का भी बड़ा जबर्दस्त हाथ रहा है। आज से ७-८ हजार वर्ष पहले जब मनुष्य पहले-पहल मिस्र में नील नदी के किनारे, मेसोपोटेमिया की दजला-फरात की उपत्यका में, तथा भारत में सिन्धु नदी की उपत्यका में, जिसे आज मोहन-जो-दड़ो कहते हैं, आकर बस गया तो वहाँ का वातावरण ही ऐसा था कि वह बड़ी तीव्र गति से विकास की ओर बढ़ता गया। खेती के लिए पर्याप्त जमीन थी। पानी की सुविधा थी। दासों की बदौलत यहाँ खेती का काम भी खूब बढ़ चला। फलस्वरूप धन-दौलत बढ़ चली। जनसंख्या भी बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। सामूहिक भावना पर अब निजी भावना भी प्रबल होने लगी।

आरम्भ में केवल दो वर्ग थे। एक वह वर्ग जो अपने मालिकों के लिए काम करता था, और दूसरा मालिकों का वर्ग था। पहले वर्ग में पराजित कबीलों से आए हुए दास थे, और दूसरे वर्ग में विजयी कबीले के लोग। लेकिन बाद में जब वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना बढ़ने लगी, तो मालिकों के वर्ग में भी अमीर-गरीब का भेद कायम होने लगा। और जब कृषि के आरम्भ के साथ समाज में धर्म की भावना, देवी-देवताओं की भावना मजबूत होने लगी, तो मन्दिरों का निर्माण भी शुरू हो गया। इन मन्दिरों के साथ ही पुरोहित-पुजारियों का एक नया वर्ग भी पैदा हुआ, जो समाज का गुरु माना जाने लगा। भेट और चढ़ावे से बड़ी सम्पत्ति

इकट्ठी होने लगी। पुरोहितों को जीवन-निर्वाह के लिए शारीरिक श्रम करने की जरूरत अब नहीं रही। अब वे बड़ी बेफिक्री से दिमागी दुनिया में दौड़ लगाने लगे। इसी का यह परिणाम था कि मिस्र के पुरोहितों ने पहले-पहल ज्योतिष-शास्त्र और लिपि का आविष्कार किया। इस नई चीज के आविष्कार ने जनता पर इनकी धाक जमा दी। वे जनता के 'महापितर' बन गये। दजला-फरात के बीच सुमेर देश में भी इन पुरोहितों का प्रभुत्व कुछ इसी प्रकार बढ़ गया। बाद में इन्हीं पुरोहितों और महापितरों में से ऐसे लोग निकले जो अपने शारीरिक बल तथा युद्ध की निपुणता के सहारे समाज के राजा बन गये। समाज पर इन्हीं का पूरा कब्जा हो गया। तभी से समाज में 'सामन्तवाद' शुरू हो गया जिसके बारे में हम आगे बताने जा रहे हैं।

दासयवादी युग में परिवार और विवाह—आरम्भ में मानव-समाज में विवाह सामूहिक था यह बताया जा चुका है। उसके बाद वैयक्तिक विवाह (मिथुन-विवाह) शुरू हुआ। जब समाज में धन-सम्पत्ति का जोर न था अर्थात् धन पर जब तक व्यक्ति का अधिकार नहीं हुआ था, तब तक तो वैयक्तिक विवाह का सिलसिला कुछ ठीक सा रहा, लेकिन ज्यों-ज्यों धन पर व्यक्ति का—पुरुष का—अधिकार दृढ़ होता गया, वैयक्तिक विवाह का नियम केवल स्त्रियों पर ही लागू होने लगा जबकि पुरुष एक से अधिक ब्याह रचाने, रखेलें रखने और वेश्याओं के पास जाने में स्वतंत्र रहा। इस वैयक्तिक सम्पत्ति के युग में ही अन्य अनेक वर्गों की तरह वेश्याओं का एक नया वर्ग भी पैदा हुआ। युरोप में यद्यपि दासता के युग में भी विवाह केवल एक ही स्त्री से करने की प्रथा थी, किन्तु पुरुष अपने धन-दौलत के बल पर चाहे जितनी रखेलें और वेश्याएँ रख

सकता था। एशियायी देशों में तो पुरुष के बहु-विवाह पर कोई प्रतिबन्ध था ही नहीं। तभी तो भारत-वर्ष में बड़े-बड़े आदर्श राजाओं तक के सैकड़ों-हजारों रानियों तक की बातें शास्त्र-पुराणों में लिखी पाई जाती हैं? सम्पत्ति पर जितना ही पुरुष का अधिकार बढ़ता जा रहा था, स्त्री उतनी ही पुरुष की सम्पत्ति बनती जा रही थी। इस प्रकार दास्य-युग में जहाँ पुरुषों के एक बहुत बड़े वर्ग की स्वतन्त्रता छीन ली गई, वहाँ सारी-की-सारी स्त्री-जाति की स्वतंत्रता भी अपहृत कर ली गई।

(३) सामन्तवाद

सामंतवाद का जन्म—यह बताया जा चुका है कि समाज में लोभ-लालच की भावना पैदा होने के बाद वैयक्तिक सम्पत्ति की नींव पड़नी शुरू हुई। समाज में पराजित दासों के आगमन ने इस लोभ को और भी उकसा दिया। दासों के हड्डीतोड़ परिश्रम से समाज की सम्पत्ति काफी समृद्ध हो चली। इधर समाज में धार्मिक-भावना और अन्ध-विश्वास ने भी जड़ जमाना शुरू किया। देवी-देवताओं के मन्दिर बनने शुरू हुए। इन मन्दिरों के पुजारी या पुरोहित जनता में खूब पूजे जाने लगे। क्योंकि वे देवी-देवताओं के प्रतिनिधि समझे जाते। इन पुरोहितों के इशारे और सलाह से ही समाज का सारा कार्य होता। मिस्र और मेसोपोटेमिया में पुरोहितों का वर्ग अपनी बुद्धि के बल पर पहले समाज का मुखिया, फिर शासक और बाद में महाशासक बन बैठा। पुरोहित-शाही के शुरू के दिनों में समाज का संगठन कबीले या जनपद के रूप में था। अभी राज-सत्ता शुरू नहीं हुई थी। लेकिन अपने कबीले की रक्षा के लिए और दूसरे कबीलों को दास बनाने के लिए लड़ाकू लोगों की आवश्यकता हो चली थी। ऐसे लड़ाकू लोगों का एक गिरोह कायम हो चुका था।

इन लड़ाकुओं का दल दूर या निकट के किसी भी कबीले पर हमलाकर उसे हराकर उसकी हर वस्तु पर अधिकार जमा लेता। दास-दासी और लूट के दूसरे सभी माल वह प्रधान पुरोहित के सामने ला रखता। पुरोहित उनमें से खास-खास चीजें और कुछ चुने हुए दास-दासी अपने लिए रखकर शेष को लड़ाकू सरदारों में बाँट देता। इस प्रकार इन सरदारों के पास भी काफी दास-दासी और धन-सम्पत्ति जमा होने लगी। इन सरदारों को 'सामन्त' कहा जाता। अन्त में इन सामन्तों की लोभ-लालच और शक्ति यहाँ तक बढ़ चली कि एक समय उनमें से कोई एक चतुर और बलवान् सरदार, पुरोहित को अँगूठे दिखाकर स्वयं समाज का शासक और महाशासक बन बैठा। अपनी पाया मजबूत करने के लिए यह आवश्यक था कि अपने वर्गके अन्य सामन्तों को वह खुश रखता। उन्हें लूट के माल में हिस्से देता, जमीनों के बड़े-बड़े रकबे इनाम में देता। सेना और शासन-कार्य में उन्हें ऊँचे-ऊँचे ओहदे देता। इस प्रकार समाज में इन सामन्तों का बोल-बाला शुरू हो गया। समाज के ये ही सर्वेसर्वा बन गये। फलस्वरूप समाज पितृ-सत्ता और दास्य-युग से सामन्त-युग में प्रविष्ट हुआ।

भिन्न-भिन्न देशों में सामन्तवाद का प्रचलन—इतिहास इसका साक्षी है कि किसी भी वाद या वस्तु का प्रचार एक ही समय में एक-सा सब जगह नहीं हो जाता। मिस्र और मेसोपोटेमिया की भूमि में पहले-पहल आज से सात-आठ हजार वर्ष पहले यह सामन्तवाद प्रगट हुआ। इसके बाद संसार के भिन्न भिन्न भागों—भारत, चीन, ईरान और युनान आदि देशों में धीरे धीरे फैलता गया। लेकिन ढूँढ़ने पर दुनिया में आज भी कुछ ऐसे प्रदेश मिलेंगे जहाँ सामन्तवाद कभी गया ही नही। अमेरिका के रेड-इण्डियनों के बारे में पहले ही बताया जा चुका है।

❀ कार-निकोवार द्वीप की जंगली जाति के जीवन का ढंग लेखक स्वयं अपनी आँखों देख आया है, जहाँ अंग्रेजों के आगमन से पहले तक जन-युग का ही वोल-वाला था। पादरियों के प्रयत्न से अव वे नई सभ्यता के सम्पर्क में आने लगे हैं। लेकिन इतना तो निःसन्देह कहा जा सकता है कि मानव-जाति की सभ्यता और संस्कृति को वहुत तेजी से आगे वढ़ाने का श्रेय इस सामन्तवाद को भी है। इस सामन्ती प्रथा के प्रचलन होते ही मिस्र में वड़े-वड़े पिरामिड वने। लिपि का आविष्कार हुआ। ज्योतिष-शास्त्र, अंक-गणित और रेखा-गणित आदि का जन्म हुआ। कला-कौशल की उन्नति शुरू हुई।

सामन्ती युग में वर्ग-भेद—जिस समय कवीलों में पराजित दासों का प्रवेश आरंभ हुआ उस समय वहाँ वर्ग नाम की कोई चीज नहीं थी। भेद-भाव अभी शुरू नहीं हुआ था। हम वता आये हैं कि सारा कवीला अपने ही सगे-रिश्तेदारों का एक गिरोह था। लेकिन जव दासों के परिश्रम से कवीलों में धन-सम्पत्ति की वृद्धि होने लगी, तो उसके साथ लोभ-लालच भी वढ़ चला और तव व्यक्तिगत सम्पत्ति की नींव कायम होकर मजवूत होने लगी। लेकिन दासता के युग में अभी वर्ग केवल दो ही थे। एक दासों का वर्ग, और दूसरा कवीले के अपने लोगों का वर्ग। पर समाज में ज्योंही व्यक्तिगत सम्पत्ति की नींव दृढ़ हो गई, और उस नींव पर सामन्तवादी विशाल महल उठ खड़ा हुआ, तो समाज में अनेक वर्ग भी पैदा होने लगे। इन वर्गों को हम नीचे लिखे अनुसार विभक्त कर सकते हैं—

पुरोहित, सामन्त (लड़ाकू), व्यापारी, कारीगर, खेतीहर और दास।

❀ यह द्वीप अव भारतीय संघ का अंग है।

(१) *पुरोहित-वर्ग* समाज में सबसे ऊपर था और सम्मान की दृष्टि से आज भी कई देशों में वह श्रेष्ठ माना जाता है। मिस्र और सुमेर में इन्हीं पुरोहितों के लड़ाकू सरदार बाद में वहाँ के शासक बन बैठे।

(२) *सामन्तों* के सम्बन्ध में बताया जा चुका है।

(३) *व्यापारी*-वर्ग का समाज में तभी से उदय हुआ, जब से सामन्ती युग में नगरों का निर्माण होना शुरू हुआ। नगर की धन-दौलत और चका-चौंध के बढ़ाने में इन व्यापारियों का बड़ा हाथ रहा। सस्ते-से सस्ते मूल्य पर खरीदना और मँहगे-से-मँहगे मूल्य पर बेचना यह शुरू से ही व्यापारियों का धर्म बना हुआ है। एक जगह की चीजें दूसरी जगह पहुँचाना यह व्यापारियों का ही काम था। यह व्यापारियों का ही काम था कि प्राचीन युग में भी, जब कि यातायात की सुविधाओं की बड़ी कमी थी, मिस्र और सुमेर की चीजें भारत और चीन के सुदूर देशों में पहुँचाना और फिर भारत और चीन की चीजों का मिस्र और सुमेर में ले जाना। राजा लोग अपने नगर की शान-शौकत और धन-दौलत बढ़ाने के लिये व्यापारियों को बहुत प्रोत्साहन दिया करते। कुशल व्यापारियों को दूर-दूर से सम्मानपूर्वक बुलाकर अपने नगरों में बसाते। इससे जहाँ उनके राज्य की शान-शौकत बढ़ती वहाँ कर के रूप में उन्हें लाभ भी खूब होता।

(४) *कारीगरों* की आवश्यकता भी स्वभाव से ही बढ़ चली जब सामन्तों का जीवन अधिक विलासमय बनने लगा। बढ़ई, लुहार, जुलाहे जहाँ सामन्तों के लिए हथियार और वस्त्र आदि तैयार करते, वहाँ समाज के साधारण जनों की आवश्यकता की चीजें भी बनाते। इन कारीगरों में कुछ तो दासों में से आये होते और कुछ कबीले के ही दूसरे लोग होते। ये अपनी बनाई चीजें व्यारियों के हाथ बेचते अथवा जनता के हाथ। जरूरत पड़ने पर

राजा या सामन्त इन कारीगरों से मुफ्त में या केवल पेट पर अपना काम कराते।

(५) खेतीहरों में अधिकतर वे ही लोग थे जो दास तो न थे, पर उनके श्रम का फायदा सामन्त, व्यापारी, राजा और पुरोहित लोग उठाते। जमीनों पर अधिकार सामन्तों का था। सामन्तों की ओर से वे खेती करते और सामन्तों की मर्जी के मुताबिक कर चुकाते।

(६) दासों के बारे में कहा जा चुका है। पशुओं की तरह उन की भी खरीद विक्री होती थी। व्यापारियों, सामन्तों, पुरोहितों और राजाओं के वे निजी सम्पत्ति बने हुए थे। ये अपनी मर्जी से कुछ भी कर सकने में असमर्थ थे।

इस प्रकार सारांश यह निकला कि सामन्त-युग में भी अनेक वर्गों के रहते भी मुख्य दो ही वर्ग थे—एक शोषकों का, दूसरा शोषितों का।

सामन्ती युग के गुण-दोष—इस युग का गुण तो यह रहा कि इसने समाज के रूप को आगे बढ़ाने में मदद की। आदिम साम्यवादी समाज में जहाँ मनुष्य केवल पेट की चिन्ता में ही व्यस्त रहा करता, वहाँ अब पेट की चिन्ता से मुक्त होकर उसने चिन्तन के क्षेत्र में प्रगति की। लेकिन पेट की चिन्ता से मुक्त होने की यह सुविधा बहुत थोड़े लोगों को ही नसीब हो सकी। और इन थोड़े लोगों में से भी बहुत थोड़ों ने ही अपने चिन्तन द्वारा समाज को आगे बढ़ाया। शेष ने समाज में केवल विलासिता का ही प्रचार किया। इसके साथ झूठ, दगा, फरेब, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, लालच आदि की बीमारियाँ भी खूब फैलीं। और इन दुर्गुणों के कारण धीरे धीरे मानव की मूल मानवता नष्ट होती गई।

मिस्र में सामन्ती समाज का रूप—यह समाज सांसारिक सुख को ठोस और वास्तविक सुख मानता था। मिस्र में धार्मिक त्योहारोंके अवसर पर नाचने-गाने और नशा-शराब पीने का खूब शौक था। सामन्तों में से कुछ निठल्ले लोग गोटी-मुहरें आदि के खेल से मन बहलाते और कुछ लोग पढ़ने-पढ़ाने और नई-नई बातों के सोचने में लगे रहते। सामन्त लोग अच्छे महलों में रहते, अच्छा खाना खाते, कीमती कपड़े और गहने पहना करते। ये लोग इस दुनिया में सब तरह के सुखों का उपभोग करते। मरने के बाद दूसरी दुनिया में भी इन्हीं सुखों की आशा लगाये रहते। तभी तो पिरामिड के अन्दर राजा-रानी के कब्र के पास भोग की अनेक कीमती चीजें रखी जातीं, ताकि राजा-रानी को मृत्यु-लोक में भी वे सारी चीजेंप्राप्त होती रहें जिन्हें वे इस दुनिया में भोगते रहे थे। अपने जीवन में ही पिरामिड जैसी विशाल कब्र के स्तूप तैयार करा जाने में भी उनकी यही भावना निहित होती।

राजा को समाज में देवता अथवा देवता का अंश माना जाता। देश की सारी भूमि के मालिक राजा और सामन्त होते। दासों और गरीब किसानों की संख्या बहुत ज्यादा थी। करों की वसूली बड़ी कड़ाई से की जाती थी। साधारण लोग किसान, मल्लाह, बढ़ई, लुहार, बनिया और दास थे। कुछ थोड़े से लोग मध्य वर्ग के भी थे। सामन्तों में लोभ-लालच का बाजार बहुत गर्म था। जनता दुख से कराह रही थी। तभी तो मिस्र का राजा 'हेन्कू' ने जो सन् २८५० ई० पू० के आस-पास मौजूद था, अपने एक लेख में सामंतो को लक्ष्य कर कहा है—"(उनके) हृदय निर्लज्ज हैं। हर एक अपने पड़ौसी की चीज को लूटना चाहता है।.... भले आदमी बच नहीं रहे हैं। संसार में वे ही अधिक हैं जो बुराई करते हैं।"

राजा हेन्कू स्वयं बड़ा दयावान् राजा था। यह उसकी व्यक्तिगत विशेषता थी। पुराने लेखों से पता चलता है कि वह भूखों में रोटी और नंगों में कपड़ा बाँटता। उसने मामूली आदमियों को राज्य के अफसर बनाये। उसने दुर्बलों को नहीं सताया। अनाथों को नहीं डराया। वह ग्रामीण जनता का सच्चा हितैषी था। वह बिना अंग-रक्षक के अकेला ही जनता में विचरा करता था।

भारतवर्ष में सामन्ती युग—भारत का प्राचीन सामन्ती-समाज महाभारत-युद्ध के बाद के युग में विकास के ऊँचे स्तर पर पहुँच चुका था। भारत की सारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता सामन्त-युग की ही देन है। हम सातवें अध्याय में भारतीय समाज के विकास की एक झाँकी देने जा रहे हैं, जिसमें भारतीय समाज के सभी युगों और सभी अवस्थाओं की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की जा सकेगी।

मेसोपोटेमिया में सामन्ती समाज—दजला और फरात की उपत्यका में सुमेर नामक प्रदेश में जिस मानव-सभ्यता का विकास आरंभ हुआ वह प्राचीन मिस्री सभ्यता की समकालीन मानी जाती है। यहाँ भी कृषि की बड़ी उन्नति हुई, और यहाँ भी मिस्र की ही तरह सामन्तवाद का विकास हुआ। पहले समाज केवल गाँवों में रहा। फिर मन्दिरों और पुरोहितों के प्रभाव बढ़ने के साथ नगर बसने लगे। निपुर और निनेवेह नामक नगरों का उल्लेख प्राचीन लेखों में पाया गया है। पहले तो नगर-राज्य कायम हुए जिनके शासक पुरोहित होते। और फिर ये ही नगर-राज्य फैलते-फैलते किसी समय साम्राज्य में बदल गये। मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में जिस प्राचीन सिन्धु-सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं, विद्वानों का अनुमान है कि वह सभ्यता भी सुमेरी सभ्यता की समकालीन थी। किन्तु अभी कुछ निश्चित

रूप से नहीं कहा जा सका है। मिस्र की तरह सुमेर ने भी एक चित्र-लिपि आविष्कार की थी। मिट्टी के खपड़ों और पट्टियों पर यह लिपि कुरेदी जाती। फिर बाद में वे पट्टियाँ आग में पका ली जातीं। इस प्रकार वे काफी दिनों तक सुरक्षित रह पातीं। सुमेर लोगों की भाषा का नाम विद्वानों ने 'क्यूमी-फर्न' (Cumei-fern) कहा है और इसको पढ़ने में वे सफल भी हो चुके हैं।

फिर बाद में अरब के रेगिस्तान की ओर से सेमेटिक जाति के लोगों ने सुमेर पर हमला कर वहाँ अपना राज्य कायम कर लिया। इनके सरदार का नाम 'सार्गन' था, जिसे इतिहास का प्रथम सैनिक-शासक माना जाता है। इसका समय लग-भग २७५० ई० पू० अनुमान किया गया है। इसके बाद सेमेटिक लोगों की एक अन्य जाति ने सुमेर पर कब्जा करके 'बाबुल' नाम का नगर बसाया। इस जाति ने साम्राज्य का खूब विस्तार किया। इसी जाति का प्रसिद्ध राजा 'हम्मूरबी' हुआ। हम्मूरबी का मतलब होता है 'बड़ा चाचा'। इसका समय २१०० ई. पू. माना जाता है। इसके राज्य-काल में व्यापार की भी बड़ी उन्नति हुई। शासन के नियम-कानून (धर्म-शास्त्र) भी बनाये गये। हम्मूरबी का धर्म-शास्त्र शायद संसार का सबसे पुराना धर्म-शास्त्र है। भूमि के नीचे से इस धर्म-शास्त्र का एक शिला खंड मिला है, जो आठ फुट ऊँचे और सात फुट चौड़े पत्थर पर ३६०० पंक्तियों में लिखा हुआ है। हम्मूरबी के कानून में लिखा है :—

"यदि किसी आदमी ने एक उच्चवर्गीय (सामन्त) व्यक्ति की आँख फोड़ी है तो उसकी भी आँख निकलवानी होगी।" लेकिन न्याय सबके लिए समान न था। "यदि एक आदमी

※The Code Of Hammurabi Section ,196 (F. R. Harder, Chicago University Press 1904)

(सामन्त) ने एक गरीब की आँख फोड़ी हो तो उसे चाँदी का एक मीना दण्ड देना होगा।" और यदि किसी राजगीर ने एक आदमी (समान्त) के लिये मकान बनाया, लेकिन उसे मजबूत नहीं बनाया, और उसके गिर जानेसे घर के मालिक की मौत हो गई, तो राजगीर को मृत्यु-दण्ड होना चाहिए।" लेकिन "यदि घर के गिरने से एक दास मरा है, तो राजगीर मालिक को एक दास लाकर दे। यदि घरके गिरने से बेटा मरा हो तो राजगीर के एक बेटे को मृत्यु-दण्ड होगा।" इत्यादि-इत्यादि। हम्मूरबी के कानून में सामन्तों के स्वार्थ का पूरा ध्यान रखा गया था। यदि किसी ने अपने मालिक के यहाँ से भागे हुए दास को शरण दे दी, तो फिर उसकी खैर नहीं। उस शरण-दाता को कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाती थी।

चीन का सामन्ती समाज—चीन में तो अभी तक (कम्युनिस्ट शासन स्थापित होने से पहले तक) सारे समाज और सरकार पर सामान्तों और पूँजीपतियोंका ही अधिकार रहा है। चीनी समान्त-वाद का सबसे जबर्दस्त पोषक सन्त कन्फ्यूशियस हुआ है। इस सन्त का समय सन् ५५१-४७८ ई० पू० माना गया है। पूर्वजों तथा समाज के बड़ों की पूजा पर वह बड़ा जोर देता था। उसके उपदेश का सार यही है कि हर पुरानी प्रथा हर नई प्रथा से अच्छी है, हर पुराना आदमी हर नये आदमी से बुद्धिमान है। चीनी सामान्तों का जीवन भी भोग-विलास से परिपूर्ण था। अनेक स्त्रियाँ और रखेलें रखने की उन्हें पूरी छूट थी। जिस स्त्री के पैर छोटे होते उसे भोग-विलास के अधिक उपयुक्त माना जाता। उसी की शादी भी हो पाती। इसी लिए जन्मते ही लड़कियों के पैरों में लोहे या काठ के सख्त जूते पहना दिये जाते ताकि

उनके पैर अधिक न बढ़ने पायें। यह प्रथा तो अभी हाल में ही वहाँ खत्म हुई है। स्त्री के बारे में चीन की पुरानी एक कहावत है—"पत्नी ठीक घोड़ी के समान है, जिसे तुम अपनी गाँठ के पैसे से खरीदते हो। जब मर्जी हो उस पर सवारी कसो, और जब चाहो जीभर-कर पीटो।" इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों की खरीद-बिक्री की प्रथा हजारों वर्षों से वहाँ जारी थी। अन्य देशों के सामन्तों की तरह यहाँ के सामन्तों ने भी राष्ट्र की सारी जमीन पर कब्जा जमा रखा था। लेकिन इन बुराइयों के बावजूद भी चीनी सामंतवाद ने आरंभ के दिनों में अनेक उत्तम आविष्कार भी किये जिनके विषय में पहले बताया जा चुका है।

युनान में सामन्तवाद—सामन्तवादी युग में युनान ने भाषा, लिपि, कला और दर्शन हर क्षेत्र में उन्नति की। यहाँ भी समाज पर धनियों का ही प्रभुत्व था। दासों और दरिद्रों का विशाल वर्ग यहाँ भी मौजूद था। युनान में कबीलों के अनेक गण-राज्य थे, किन्तु इन गण-राज्यों पर धनी वर्ग का ही कब्जा था। प्रजातन्त्र के रहते भी विषमता बड़ी मात्रा में मौजूद थी। इसी लिए वहाँ सुक्रात और अफलातूँ जैसे विचारक पैदा हुए, जिन्होंने शोषकों के अन्यायों की ओर खुलकर इशारा किया। उनके विरोध में आवाज उठाई। नए समाज के निर्माण की बात बताई। इसीलिए शासकों ने सुक्रात की हत्या करा दी। सुक्रात पर शासकों की ओर से यह दोष लगाया गया था कि वह तरुणों को बिगाड़ता है। धर्म और देवी-देवताओं के विरुद्ध प्रचार करता है। इसी प्रकार युरोपके अन्य देशों में सामन्त-वाद का प्रचार हुआ। और सामन्तवाद की सबसे गहरी मित्रता धर्म से रही। जिस प्रकार समाज की सारी सम्पत्ति पर सामन्तों का कब्जा हो गया था, उसी प्रकार धर्म पर भी। वे धर्म के लिए न थे,

वल्कि धर्म ही उनके लिए था। सभी देशों की धार्मिक संस्थाएँ सदा से ही शासक-वर्गका गुणगान करती आ रही हैं। वे शासक-वर्गकी रक्षा का जवर्दस्त कवच साबित हुई हैं।

(४) पूँजी-वाद

अव हम सामाजिक विकास की उस महत्त्वपूर्ण अवस्था में आते हैं जिसमें विकास की गति काफी तेज हो गई। दूसरी अवस्थाओं में विकास की जितनी मंजिलें पार करने में समाज को हजारों वर्ष लग गये, इस अवस्था में पहुँचकर कुछ-सौ वर्षों के भीतर ही वह कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया! आज से लगभग डेढ़ सौ साल पहले जव इङ्गलैण्ड में भाप के इञ्जन का आविष्कार हुआ, तो लोगों ने उसे भूत-प्रेत या राक्षस समझकर उससे भय खाया था। और रेल-इंजन के सबसे प्रथम आविष्कारक जार्ज स्टीफेन्सन ने जव लोगों से अपना संकल्प वताया कि मैं एक ऐसा इञ्जन वनाना चाहता हूँ जो प्रति घण्टे १२ मील की चाल से चले, तो लोगों ने पागल कहकर उसका परिहास उड़ाया था। लेकिन आज जिस तीव्र गति से आविष्कार-पर-आविष्कार होते जा रहे हैं, समाज की विकास-धारा में जो प्रखर प्रवाह आ गया है, इस पर किसने सोचा था सौ-डेढ़ सौ साल पहले ?

आज तो इतिहास भी अवाक है सामज के विकास की इस तीव्रता को देखकर! आज हम तीव्रगामी विमान पर वैठकर कुछ दिनों में ही सारी दुनिया की परिक्रमा कर सकते हैं। हजारों मील दूर वैठे आदमियों से हम इस प्रकार वातें कर सकते हैं जिस प्रकार मेज पर आमने-सामने वैठे दो आदमी आपस में वातें करते हैं। सैकड़ों-हजारों मील दूर से कही जाने वाली वात को, गाये जाने वाले गीत को वड़ी आसानी से हम घर वैठे सुन सकते हैं। संसार के किसी भी कोने में घटी हुई कोई भी महत्व की घटना सारे

संसार पर बहुत जल्द असर डालती है। इस युग ने बड़े-बड़े विचारक, बड़े-बड़े वैज्ञानिक पैदा किये जिनके विचारों और आविष्कारों ने बड़ी तेजी से समाज को आगे धकेला और आज भी धकेले जा रहे हैं। समाज जो आज इतना आगे बढ़ा है उसका सारा श्रेय समाज के विकास की उस अवस्था का है जिसे विद्वानों ने 'पूँजीवाद' कहा है।

पूँजीवाद क्या है—अब हम संक्षेप में सीधे-सरल ढंग से 'पूँजीवाद क्या है' इस बारे में बतायेंगे। उदाहरण के तौर पर, कोई एक आदमी नौकरी की तलाश में गाँव से शहर में आया। नौकरी उसे मिली नहीं। अथवा मिली तो कुछ दिन के लिए ही। लेकिन पैसे उसे जरूर चाहिएँ। अपना पेट भी भरना था, घर वालों का भी। नौकरी या मजदूरी न मिलने की हालत में उसने स्वतन्त्र व्यवसाय की बात सोची। गाँठ की पूँजी बहुत थोड़ी थी। फिर भी उसने काम शुरू किया। शायद खोमचे का काम। काम चल निकला। रोटी के पैसे तो निकल ही आते। कुछ बच भी जाते। बचे हुए पैसों को उसने जमा करना शुरू किया। गाँठ जरा गरम हो चली। फिर उसने कुछ और काम करने की सोची जिसमें बिक्री भी ज्यादा हो, मुनाफा भी। उसने कपड़े की फेरी का काम शुरू किया। काम चल निकला। अच्छा बेच लेता, अच्छा कमा लेता। अब वह पेटभर रोटी खाकर कुछ घर भी भेजता, कुछ बचा भी लेता। बची हुई रकम रोज-रोज जमा होकर एक अच्छी खासी पूँजी उसके पास जमा हो चली। उसका मन बढ़ चला। उसने फेरी न लगाकर कपड़े की दूकान लगाने की सोची। बाजार में साख उसकी जम चुकी थी, वह दूकान लगाकर बैठ गया। काम यहाँ भी उसका चल पड़ा। देखते देखते ही कुछ वर्षोंमें

ही वह अच्छा-खासा मालदार बन गया। उसके पास काफी पूँजी जमा हो गई।

अब तक तो वह सिर्फ एक शहर का व्यापारी था। व्यापार का सिद्धान्त है सस्ता-से-सस्ता खरीदकर महँगा-से महँगा बेचना। सो उसने भी इस सिद्धान्त का अनुकरण किया। लेकिन अब, जब उसके पास अच्छी रकम इकट्ठी हो गई, उसने छोटे-मोटे कल-कारखाने खोलने की सोची। उसने पूँजी लगाई। काम शुरू किया। सफलता यहाँ भी उसके पीछे-पीछे ही आई। वह देखते-देखते ही बड़े कल कारखाने भी खोलने लगा। धीरे-धीरे एक, दो, तीन········जाने कई मिलों का मालिक! देश का महाधन-सेठ! ·· ····

ऊपर की इस छोटी-सी कहानी से पहले आपको यह समझना चाहिए कि वह आदमी कल-कारखाने खोलने से पहले तक तो खालिस व्यापारी था। जो कुछ उसने कमाया वह मालों के हेर-फेर करने से। इधर से माल खरीदना और उधर बेच देना, सस्ता खरीदना और महँगा बेच देना, यही व्यापार का मूल मन्त्र है, यही व्यापार का खास उसूल है। वह स्वयं माल पैदा न करके दूसरों के पैदा किए हुए माल को खरीद और बेचकर पैसा कमाता। किन्तु जब वह कारखानेदार और मिल-मालिक बना, तो व्यापार के माल को स्वयं पैदा भी करने लगा। यहीं पर वह 'पूँजीपति' कहा जाता है। क्योंकि स्वयं माल पैदा करने की जो क्षमता उसमें आई वह पूँजी के द्वारा ही। पूँजी के द्वारा ही उसने कल-कारखाने खड़े किए। पूँजी के बल पर ही उसने अनेक आदमी नौकर रखे, अनेक आदमियों के श्रम को खरीदा। और जब इन्हीं पूँजी वालों का—कल-कारखानेदारों या मिल-मालिकों का—समाज के ऊपर कब्जा हो जाता है, समाज में उनका स्थान सर्वोपरि हो जाता है, तब समाज की इस अवस्था को 'पूँजीवाद' के नाम से पुकारा जाता है।

पूँजीवाद का प्रारम्भ—ऊपर के वर्णन से आपने व्यापारी और पूँजीपति के भेद को अच्छी तरह समझ लिया होगा। समाज में व्यापारी-वर्ग की उत्पत्ति भी सामन्त-वर्ग की उत्पत्ति के साथ ही हुई। सामन्तवादी समाज में व्यापारियों का स्थान सम्मानजनक रहा। प्राचीन-युग के धन-कुबेर व्यापारियों की कहानियों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। किन्तु फिर भी उनके हाथ अधिकार नहीं आ सका था। समाज पर और समाज की सम्पत्ति और इज्जत-आबरू पर सामन्तों का ही आधिपत्य बना रहा। सामन्तों के हाथ में फौज थी, पुलिस थी, शासन की सारी बागडोर थी। लेकिन जब तेरहवीं-चौदहवीं सदी में युरोप पर मंगोलों के हमले शुरू हुए, और उनके साथ चीन से बारूद, कुतुबनुमा, चुम्बक, कागज और छपाई की कला युरोप में पहुँची तो लोगों की आँखें खुलनी शुरू हुईं। कागज और छापेखाने की बदौलत नई-नई पुस्तकों का छपना आरम्भ हुआ।

युनान के प्राचीन दार्शनिक अरस्तू के यथार्थवादी विचारों का प्रचार शुरू हुआ। पुरानी मान्यताओं और रूढ़ियों पर से लोगों के विश्वास उठने लगे। मानव के मस्तिष्क में नये विचार, नई कल्पनाएँ और नये संकल्प उत्पन्न होने लगे। युरोप में जहाँ-तहाँ पोपशाही का विरोध होने लगा। ईसाइयों के 'कैथलिक' (सनातनी) सम्प्रदाय के मुकाबले एक नये 'प्रोटेस्टैंट' सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। इङ्गलैण्ड में सामन्तवादी मठों की जगह ईसा-इयत का एक नया संगठन "इंगलिश-चर्च" कायम हुआ। इंगलिश चर्च को गैर-सामन्ती धनियों का सबसे ज्यादा समर्थन प्राप्त हुआ।

इधर व्यापारियों के व्यापार में उन्नति होने लगी। उनके

पास पर्याप्त धन इकट्ठा होने लगा। पूँजी जमा होने लगी। लोभ बढ़ने लगा। व्यापार को बढ़ाने की इच्छा प्रबल होने लगी। सौदे को खरीदने और बेचने के लिए नई जगहों, नये देशों का पता लगाने की रुचि बढ़ने लगी। तेरहवीं—चौदहवीं सदी में युरोप का प्रसिद्ध यात्री 'मार्कोपोलो' भारत और चीन की यात्रा कर गया था। उसके यात्रा-वृत्तान्त को पढ़कर युरोप के लोग इन देशों में पहुँचने के लिए बैचेन होने लगे। साहसी यात्रियों का सन्मान बढ़ने लगा। इसी प्रसंग में कोलम्बस ने सन् १४९२ ई० में भारत का पता लगाते-लगाते अमेरिका का पता लगा लिया। वास्को-द-गामा ने सन् १४९८ ई० में भारत का पता लगाया।

अब युरोप के व्यापारी युरोप से बाहर खरीद-बिक्री करने लगे। नये देशों और नये बाजरोंके आविष्कारके बाद सौदों की माँग बढ़ने लगी। अब तक कारीगर व्यापारियों से स्वतंत्र थे। व्यापारी उनसे माल खरीदते। लेकिन अब जब सौदोंकी माँग बढ़ने लगी, और कारीगर उन्हें ठीक समय पर सारा माल मुहैय्या नहीं कर पाते, तो उनके दिमाग में स्वयं माल तैयार करने की बात सूझी। अब वे कारीगरों को अच्छी मजदूरी पर अपने यहाँ नौकर रखने लगे। उनसे माल तैयार कराने लगे। इस प्रकार छोटे-छोटे कारखाने खुलने लगे। देखा-देखी दूसरे व्यापारियों ने भी कारखाने खोलने की ओर कदम बढ़ाया।

इससे पूर्व माल पैदा करने के औजार और कच्चा माल भी कारीगरों के अपने होते थे; किन्तु जहाँ वे अब स्वयं नौकर बन गये, वहाँ उत्पादन के अन्य साधन भी उनके हाथ से निकलकर व्यापारियों के हाथ में चले गये। अब भी जो कुछ स्वतन्त्र कारीगर बचे थे, उन्हें भी अब व्यापारियों के आगे घुटने टेकने पर मजबूर होना पड़ा। क्योंकि व्यापारी अपने कारखानों में तैयार माल को

वाजार में कुछ दिनों के लिए सस्ता करके स्वतंत्र कारीगरों को झुकने पर मजबूर कर देते। अन्त में कोई दूसरा चारा न देख ये स्वतंत्र कारीगर भी इन व्यापारियों के कारखानों में नौकर बन जाते। इस प्रकार धीरे-धीरे कारीगर, कच्चा माल और औजार, हर चीज पर व्यापारियों का कब्जा होता गया।

अब शहरों में व्यापारियों के बड़े-बड़े महल उठ खड़े हुए। अब वे अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ भी खोलने लगे। अनेक शिक्षण-संस्थाओं की धन से सहायता करने लगे। फलतः समाज में, पढ़े-लिखे लोगों में इनकी धाक बढ़ने लगी। इनके बढ़ते हुए प्रभाव और बढ़ती हुई धन-सम्पत्ति से सामन्त लोग सशंक हो उठे। फलस्वरूप सामन्तों और व्यापारियों में संघर्ष आरम्भ होने लगा।

इंगलैंड के व्यापारियों और सामन्तों का संघर्ष सन् १६४० ई० तक काफी उग्र हो चला था। वहाँ की सामान्य जनता ने भी सामन्तों के विरुद्ध व्यापारियों का साथ दिया। क्योंकि उन लोगों ने सामन्ती अत्याचारों से ऊबकर इन धनी व्यापारियों के नेतृत्व में अपने उद्धार की आशा देखी थी। क्रॉमवेल के नेतृत्वमें व्यापारियों और नागरिकों ने इंगलैंड के सामन्तों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह आरम्भ किया। क्रॉमवेल विजयी हुआ और ३० जनवरी सन् १६४६ ई० में इंगलैंड के राजा चार्ल्स (प्रथम) का सिर काटकर वहाँ से उसने सामन्तशाही को समाप्त किया। इसके बाद इंगलैंड में जो नया राजा बना और नई पार्लियामेंट बनी उन सब पर वहाँ के व्यापारियों का प्रभाव और अधिकार दृढ़ हो गया। इस प्रकार संसार में सबसे पहले इंगलैंड में मानव-समाज ने पूँजीवादी अवस्था में प्रवेश किया।

विभिन्न देशों में पूँजीवाद—जिस प्रकार सामंतवाद संसार के सभी देशों में एक साथ एक ही समय में प्रगट नहीं

हुआ, उसी प्रकार पूँजीवाद भी अनुकूल अवसर पाकर ही विभिन्न देशों में प्रगट हो सका। जब कि इंगलैंड में सामन्तों की शक्ति सन् १६४६ ई० में ही समाप्त हो गई, स्काटलैण्ड में उनकी शक्ति को सन् १७४७ ई० में समाप्त किया जा सका। फ्रांस में भी व्यापारियों का धन और प्रभाव बढ़ रहा था। वहाँ भी जनता सामन्ती अत्याचारों से ऊब उठी थी। सामान्य जनता के सहयोग से वहाँ भी व्यापारियों ने १७८६ ई० में सामन्तों पर विजय पाई।

इसी प्रकार जापान में १८७१ ई० में शासन पर व्यापारियों का प्रभुत्व कायम हुआ। १७८३ ई० में जब संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन के प्रभुत्व से मुक्त हुआ, और जिन लोगों के हाथ में वहाँ के शासन की बागडोर आई, वे भी अधिकतर व्यापारी और भूमिपति ही थे। लेकिन एक बात। जहाँ शासन पर पूँजीपतियों का अधिकार हुआ, वहाँ सामंत-वर्ग बिल्कुल समाप्त नहीं हो गया। बल्कि ये सामंत लोग भी धीरे-धीरे पूँजीपतियों के वर्ग में शामिल होने लगे। नये-नये कल-कारखाने खोलकर उन्होंने भी आर्थिक लाभ उठाना शुरू किया। आगे चलकर इन दोनों का ही स्वार्थ समान बन गया। सेना और शासन के ऊँचे पदों पर सामन्तों की भी नियुक्तियाँ होती रहीं। इन सामन्तों का ही ख्याल करके जहाँ-तहाँ पार्लियामेंट के ऊपरी भवनों में इनके लिए स्थान सुरक्षित रखा गया। किन्तु वास्तविक अधिकार पूँजीपतियों के ही हाथ रहा।

पूँजीवाद और साम्राज्यवाद—समाज-शास्त्र के विद्वानों के मत में साम्राज्यवाद समाज की कोई विशेष अवस्था नहीं है। जब किसी राज्य की सीमा अपनी निश्चित सीमा को पारकर दूर-दूर तक फैल जाती है, तब उसे साम्राज्य कहते हैं। अर्थात् सामन्तों के शासन में जब किसी एक देश के सामन्तों का अधिकार उस देश की सीमासे बाहर जितने

विस्तृत-क्षेत्र में फैल जाता उस सारे क्षेत्र को 'साम्राज्य' कहा जाता। पूँजीवादी युग में एक देश के पूँजीपतियों का अपने देश से बाहर जितने विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार होता है उसे भी 'साम्राज्य' ही कहते हैं। जैसे, जब ब्रिटेन की सरकार पर पूँजीपति-वर्ग का अधिकार हो गया, तो ब्रिटेन की अधीनता में जितने भी दूसरे देश आते गये वे सब-के-सब ब्रिटेन के 'साम्राज्य' बनते गये। इसी लिए आगे चलकर ब्रिटेन की पार्लियामेंट ने ब्रिटेन के राजा को 'सम्राट' की उपाधि दी। 'सम्राट' का अर्थ होता है सारे साम्राज्य का स्वामी। इतना कहने का तात्पर्य यह कि साम्राज्यवाद सामन्त-वाद के साथ भी जुड़ा रहा; और जब समाज ने पूँजीवादी युग में प्रवेश किया तो उसके साथ भी उसका सम्बन्ध कायम रहा। और साम्राज्यवाद का यह सम्बन्ध किसी भी वाद के साथ तब-तक कायम रहेगा, जब तक कि किसी एक देश की सरकार या शासक-वर्ग का किसी दूसरे देश की सरकार या जनता पर अधि-कार कायम रहेगा।

हाँ, तो अब हम विचार करें, कि किस प्रकार पूँजीवाद के साथ साम्राज्यवाद का सम्बन्ध कायम हुआ। यह तो बता ही आए हैं कि पूँजीवाद सबसे पहले इंगलैंड में उत्पन्न हुआ। जब वहाँ के पूँजीपतियों का इंगलैंड की सरकार पर अधिकार हो गया, तो बड़ी तेजी से वहाँ उद्योग-धन्धों का विकास होने लगा। आगे चलकर भाप के इंजन के आविष्कार ने औद्योगिक विकास की गति में बड़ी तेजी ला दी। इंगलैंड में बड़ी मात्रा में माल तैयार होने लगा और दूसरे देशों में उनकी खपत भी होने लगी। लेकिन इंगलैंड के बाद दूसरे देशों ने भी अधिक मात्रा में माल बनाना शुरू किया। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी और जापान आदि देशों में विदेशी माल की खपत कम करने के ख्याल से वहाँ की सरकारों ने चुंगी की दीवारें खड़ी करनी शुरू कीं। विदेशी माल पर इतनी

बड़ी मात्रा में चुंगी लगा दी जाती कि वह स्वदेशी माल के मुकाबले काफी मँहगा पड़ जाता। फलस्वरूप दूसरे देशों में दूसरे देशों के माल के लिए बाजार खत्म होता गया।

लेकिन जब इन सभी देशों में बहुत मात्रामें माल तैयार होने लगा, तो उसी मात्रा में उन्हें बाजार की आवश्यकता भी महसूस होने लगी। इंगलैंड में पूँजीवादी शासन शुरू होने के साथ वहाँ के व्यापारी धीरे-धीरे साम्राज्य-स्थापना की ओर भी ध्यान देने लगे। भारत में इंगलैंड के व्यापारियों ने व्यापार के लिए 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' स्थापित की थी। उस समय भारत के सामन्त-शासकों में परस्पर घोर कलह छिड़ा हुआ था। इस स्थिति से कम्पनी ने लाभ उठाया, और धीरे-धीरे सारे भारत पर अंग्रेजों का अधिकार कायम होता गया।

इस प्रकार इंगलैंड को अपने माल खपाने के लिए भारत जैसा विशाल बाजार मिल गया। जहाँ वह भारत में अपने तैयार माल बेचता, वहाँ यहाँ से सस्ते कच्चे माल भी प्राप्त करता। इसके अतिरिक्त उसने समुद्र-पार अनेक उपनिवेश भी कायम किए। अनेक नये क्षेत्रों पर अधिकार जमाया। इधर फ्रांस भी हिन्द-चीन और अफ्रिका में अपने साम्राज्य फैलाने में सफल हुआ। दूसरे पूँजीवादी देश भी-इस ओर अग्रसर होने लगे। इस प्रकार आधुनिक साम्राज्यवाद का मतलब हो गया 'बाजार-वाद' और इसी बाजार की खोज में दुनिया के कोने-कोने में युद्ध के नगाड़े बजने लगे। और इसी भावना का यह परिणाम था कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में संसार को दो भयानक विश्व-युद्धों से गुजरना पड़ा।

मजदूर और पूँजीपति—यह हम पहले ही बता आए हैं कि सामन्तवाद के साथ ही समाज में अनेक-वर्ग पैदा हुए। इन्हीं में एक व्यापारियों का वर्ग भी था और एक कारीगरों का भी। लेकिन जब समाज में 'पूँजीवाद' प्रविष्ट हुआ, तो व्यापारी पूजीपति बन गये। और बाद में सामन्त लोग भी कल-कारखाने खोल कर पूँजीपति बने। और जो कारीगार थे वे मजदूर बनने पर मजबूर हुए। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि पहले के वे वर्ग समाप्त हो गये। केवल कारीगर ही मजदूर नहीं बने, बल्कि किसानों का एक बहुत बड़ा समूह भी मजदूर बना। यह इतिहास-सिद्ध सचाई है कि इंगलैंड में सामन्ती युग के अन्त में जब व्यापार बहुत बढ़ चला और तैयार माल की भाँति ही कच्चे ऊन की भी माँग बढ़ गई, तो सामन्तों (जमीनदारों) ने किसानों से खेत छीन-छीन कर भेड़ों के लिए चरागाह बनाने शुरू किए। इस प्रकार गाँव-के-गाँव उजड़ गये और लाखों किसान जीविका की खोज में शहर की ओर बढ़े। उनमें से बहुतों को कल-कारखानों में मजदूर बनना पड़ा। इधर ज्यों-ज्यों उद्योग-धन्धों का विकास होने लगा, मजदूरों की संख्या भी बढ़ने लगी। इन मजदूरों में वे लोग भी आ मिले जो सामन्तवादी युग में दास थे। क्योंकि इस पूँजीवादी युग में ही दास-प्रथा को समाप्त करने के आन्दोलन चले। संयुक्त राज्य अमेरिका में अब्रा-हम लिंकन के नेतृत्व में इस दास-प्रथा को समाप्त करने के लिए भयानक गृह-युद्ध रचा गया था। इस दास-प्रथा की समाप्ति से पूँजीवाद को फूलने-फलने का खूब मौका मिला। इस प्रकार समाज में दो और नये वर्ग उत्पन्न हुए—एक मजदूरों का, दूसरा पूँजीपतियों का। ये दोनों ही वर्ग विशेष रूप से पूँजीवाद की देन हैं।

पूँजी और मजदूरी का सम्बन्ध—पूँजी पर पूँजीपतियों का अधिकार होता है और मजदूरी पर मजदूरों का। पूँजी उस धन-राशि को कहते हैं जिससे पूँजी-पति कल-कारखाने के लिए मकान बनवाता है, मशीन खरीदता है, और माल तैयार करने के लिए कच्चे माल तथा मजदूरों का श्रम खरीदता है। इन सबों के सहयोग से माल जितनी भी राशि में तैयार हो उस सब पर पूँजीपति का अधिकार होता है। मजदूरों को सिर्फ एक निश्चित रकम मजदूरी में दी जाती है। किन्तु एक मजदूर जितना पैदा करता है, उसके मुकाबले उसे दी जाने वाली मजदूरी बहुत थोड़ी होती है।

अर्थ-शास्त्र के विद्वानों ने हिसाब लगाकर देखा है कि एक रुपये की रूई में एक मजदूर चार रुपये का कपड़ा तैयार करता है। इस चार रुपये में मजदूर को अधिक-से-अधिक आठ आने मजदूरी मिलती है। बाकी साढ़े तीन रुपये में से एक रुपया रूई का मूल्य हुआ। एक रुपया मशीन की घिसाई, मकान का भाड़ा, और मामूली मुनाफा का हुआ। शेष बचता है डेढ़ रुपया। यह डेढ़ रुपया पूँजी-पति के पाकेट में जमा होता है। विद्वानों का मत है कि इस डेढ़ रुपये पर न्यायतः मजदूर का अधिकार होना चाहिए, न कि पूँजीपति का। अर्थात् उस एक रुपये की रूई से जो चार रुपये का कपड़ा तैयार हुआ है, उसमें से पूरे दो रुपये पर मजदूर का अधिकार होना चाहिए। लेकिन होता है ठीक इसके विपरीत। जहाँ पूँजीपति मकान का भाड़ा, मशीन की घिसाई और रुपये के सूद वगैरह के रूप में उस चार रुपये में से एक रुपया तो लेता ही है, वहाँ वह मजदूर की उचित मजदूरी दो रुपये में से स्वयं डेढ़ रुपया भी हथिया लेता है।

कई प्रख्यात विद्वानों ने, खासकर प्रसिद्ध समाजवादी विद्वान्

स्त्रों ने हथियाने के इस ढंग को 'चोरी' नाम दिया है। इसी चोरी की पूँजी से पूँजीपति अपने कल-कारखानों और उद्योग-धन्धों को बढ़ाते हैं; इसी से उनकी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ खड़ी होती हैं; हाकिम-हुक्कामों को भेंट-नजराने पेश किए जाते हैं; दान-पुण्य का स्वांग रचा जाता है; जीवन के सारे रास-रंग रचे जाते हैं। मजदूरों को मजदूरी के रूप में जो थोड़ी रकम प्राप्त होती है उसका भी अधिकांश पूँजीपतियों के ही पाकेट में चला जाता है। क्योंकि निर्वाह के लिए जो सामग्री उन्हें खरीदनी पड़ती है, वह भी अधिकांश पूँजीपतियों के कल-कारखानों में ही तैयार की जाती है। इस प्रकार मजदूर का हाथ सदा खाली ही रहता है।

पूँजीवाद के वरदान—पूँजीवाद ने समाज में जहाँ अनेक अनैतिकताएँ पैदा कीं वहाँ उसने समाज को ऐसे अनेक वर भी प्रदान किए जो सामन्तवादी युग में नहीं थे। उदाहरण के तौर पर—सामन्ती युग में समाज के मानस पर धर्म और रूढ़ियों का कुछ ऐसा जाल बिछा दिया गया था कि समाज का विकास बिल्कुल रुक-सा गया था। विचारों में स्वतन्त्रता नाम की चीज नहीं रह गई थी। यदि किसी ने प्रचलित विश्वास और रूढ़ियों के विरुद्ध कुछ नई बात कहने का साहस भी किया तो उसकी खैर नहीं। धर्म और शासन, इन दोनों का ही वह सम्मिलित रूप से कोप-भाजन बनता। उसे तरह-तरह की यातनाएँ दी जातीं। मध्य-युग के युरोप में ऐसे अनेक स्वतन्त्र चिन्तकों को सताने, उन्हें जिन्दा जलाने तक की घटनाएँ घटित हुईं।

लेकिन उद्योग-धन्धों की उन्नति के साथ जब समाज में व्यापारियों की शक्ति बढ़ने लगी; जब व्यापारी-वर्ग समाज की सत्ता पर अधिकार जमाने की ओर अग्रसर होने लगा; तो स्वभाव

से ही, अपने स्वार्थ के कारण ही, इसने ऐसे सभी विचारों को प्रोत्साहित करना शुरू किया जिनसे कि समाज की पुरानी व्यवस्था की नींव हिलती था। फलस्वरूप अनेक स्वतन्त्र विचारक पैदा होने लगे। समाज में स्वतन्त्र भावनाओं का विकास होने लगा। और सामन्तवाद की समाधि पर पूँजीवाद का महल भी खड़ा हुआ। और जब एक बार समाज रूढ़ियों के बन्धन से आजाद हो गया, तो उसमें ऐसे-ऐसे विचारक और वैज्ञानिक भी पैदा होने लगे जिनके आविष्कारों ने संसार को चकाचौंध में डाल दिया। समाज की विकास-धारा में सहसा एक तीव्र वेग उत्पन्न हो गया। संसार के विभिन्न भाग और विभिन्न समाज जो पहले बहुत दूर-दूर थे, एक दूसरे से अपरिचित थे, अब धीरे-धीरे निकट होते गये, एक दूसरे से परिचित होने लगे। फलस्वरूप सारे मानव-समाज और संसार को एक झण्डे के नीचे लाने के सपने देखे जाने लगे। मनुष्यों में समता, बन्धुता और स्वतन्त्रता कायम करने के भाव उत्पन्न होने लगे। और वह दिन भी अब दूर नहीं दिखाई देता जबकि पूँजीवाद की समाधि पर ही संसार के सारे मानव-समाज का एक संयुक्त विशाल महल खड़ा होगा। उसमें समता विराजेगी, बन्धुता नाचेगी और वातावरण के कण-कण से स्वतन्त्रता और मानवता का सन्देश गूँजता रहेगा।

पूँजीवाद के अभिशाप—ऊपर हमने संक्षेप में पूँजीवाद के पेट से पैदा हुए वरदानों के बारे में संकेत कर दिया। अब हम उसके अभिशापों के सम्बन्ध में भी कुछ कह दें। सबसे पहले यह कि पूँजीवाद समाज में व्यक्तिवाद का—स्वार्थ का—बहुत ज्यादा प्रचार करता है। मनुष्य में जब अपने स्वार्थ की प्रधानता हो जाती है, तो वह स्वभाव से ही

दूसरों के स्वार्थ की, अर्थात् अपने पड़ोसियों के, समाज और राष्ट्र के स्वार्थ की उपेक्षा करता है। समाज में मनुष्य के चरित्र की अपेक्षा धन-दौलत (पूँजी) का ही मान बढ़ने लगता है। यही कारण है कि मनुष्य चरित्र की उपेक्षाकर धन पैदा करने की ओर अग्रसर होता है। वह कम-से-कम परिश्रम और कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक धन कमाना चाहता है। फलस्वरूप वह किसी भी ऐसे उपाय से बाज नहीं आता जो चरित्र और नैतिकता की दृष्टि से घृणित होते हुए भी धन पैदा करने में सहायक होता है। ऐसा व्यक्ति अपने भ्रष्टाचार को छिपाता है। अथवा दलीलों द्वारा उसे उचित ठहराने की कोशिश करता है। इससे समाज में दगा, फरेब और झूठ का बोलबाला हो जाता है।

सरकार के कल-पुर्जे पर पूँजीवादियों का अथवा उनके गुर्गों का कब्जा होने के कारण निरन्तर भ्रष्टाचार में लगा रहकर भी धनी व्यक्ति घूस-रिश्वत के बलपर दण्डित होने से बचा रहता है। पूँजीवादी समाज में जहाँ पैसे से हर वस्तु खरीदी जाती है वहाँ न्याय भी खरीदा जाता है। जब पैसे की महिमा इतनी महान बन जाती है, तो क्यों न मनुष्य उसे प्राप्त करने के लिए धर्म और ईमान को तिलांजलि देने को तैयार हो जाय? इसका यह मतलब नहीं कि सामन्तवादी समाज में पैसे की महिमा थी ही नहीं। पैसे की महिमा वहाँ भी थी, पर थोड़े से लोगों में। और इसके साथ ही उसमें शारीरिक शौर्य-वीर्य की भी महिमा थी। सामंती समाज में भ्रष्टाचार का दायरा छोटा था, किन्तु पूँजीवादी समाज में वह दायरा काफी बड़ा हो गया।

यह तो हुई पूँजीवादी समाज में व्यक्ति और समाज के पतन की बात। अब हम उसके दूसरे अभिशाप को लें। यह अभिशाप मंदी की, भूख और बेकारी की है। विज्ञान ज्यों-ज्यों उन्नति करता जाता है, त्यों-त्यों मशीनों में सुधार होता जाता है। नई-नई मशीनों

का आविष्कार होता रहता है। फलस्वरूप मशीनों की उत्पादन-शक्ति बढ़ जाती है। वे कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक माल पैदा करने लग जाते हैं। मशीनों के आविष्कार और लगातार होते सुधार का यह परिणाम होता है कि बाजार माल से भर जाता है। बाजार में जब माल अधिक आता है, तो कीमत सस्ती हो जाती है। जब चीजें सस्ती होगी तो मिल-मालिक का मुनाफा कम हो जायगा। जब मुनाफा कम होगा, तो वह माल कम पैदा करेगा। क्योंकि पहले का स्टाक ही उसके पास काफी जमा होता है। जब वह माल कम पैदा करेगा तो मजदूरों को काम पर से हटायेगा भी। तब मजदूर बेकार हो जायेंगे। बेकार होने के साथ ही मजदूरों की खरीदने की शक्ति भी समाप्त हो जाती है।

उधर जब मिल की बनी चीजें सस्ती होंगी तो किसानों के पैदावार की कीमत भी सस्ती होगी। मिलों के लाखों मजदूरों के बेकार हो जाने से किसानों के पैदावार के खरीदने वालों में भी कमी आ जाती है। इस प्रकार किसान का हाथ भी खाली रहने लगता है। उसकी खरीदने की शक्ति भी कम हो जाती है। इसी प्रकार इस सस्ती-मन्दी का प्रभाव पूँजीपति, मजदूर और किसान सब पर पड़ता है। लेकिन पूँजीपति को भुखमरी का सामना नहीं करना पड़ता, किसान को भी नहीं, किंतु मजदूरों के लिए बेकारी की हालत में सिवा इस भुखमरी के और कोई चारा ही नहीं रह जाता।

पूँजीवादी देशों में इस प्रकार की मंदी-सस्ती हर नवें दसवें साल आती रहती है, और समाज में त्राहि-त्राहि मचा देती है। इसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर भी पड़ता है। सिक्कों के दर गिर जाते हैं। सन् १९२९–३३ ई० में आई हुई मन्दी को हममें से बहुत लोग जानते होंगे। इस मन्दी का असर सारे संसार पर पड़ा था।

सिक्कों के दर गिर गये थे। पूँजीवादी देशों के पास पिछड़े देशों में लगाने के लिए पूँजी नहीं रह गयी थी। चाय के वगीचों में चाय की पत्तियाँ तोड़नी बन्द कर दी गई थीं। रवड़ के वृक्षों में छेवा लगाना छोड़ दिया गया था। जहाज भर कर नारंगियाँ समुद्र में फेंक दी गई थीं।

सन् १६३३ ई० में संयुक्त-राज्य-अमेरिका की सरकार ने ५० लाख सुअर खरीद कर नष्ट कर दिए, पर किसी को खाने नहीं दिया। डेनमार्क में हर सप्ताह १५०० गायें मारकर उनका मांस जमीन में सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता था। अर्जेन्टाइना में लाखों भेड़ों को चरागाहों में नष्ट कर दिया गया, क्योंकि कसाई-खाने तक उन्हें ले जाने में जो खर्च पड़ता, उतना भी उनके मांस की विक्रीसे नहीं निकल पाता था। गेहूँ के ढेर में आग लगा दी गई। काफी के वक्स-के-वक्स पानी में फेंक दिये गए। जव करोड़ों नर-नारी भूख और वेकारी के कारण त्राहि-त्राहि मचा रहे थे, संसार के पूँजीपति उत्पादित चीजों को इस वेदर्दी से नष्ट किये जा रहे थे। इस प्रकार नष्ट करने में उनका उद्देश्य यह होता कि इस तरह वाजार में चीजों का अभाव वना रहेगा, तो उनके माल की माँग भी वनी रहेगी। अर्थात् उनके माल महँगे भाव पर विका करेंगे।

अर्थ-शास्त्रियों ने इस मंदी के कारणों पर प्रकाश डालते हुए वताया है कि पूँजीपति द्वारा मजदूरों की उचित मजदूरी न देकर स्वयं अधिक-से-अधिक हथियाने की प्रवृत्ति के कारण ही यह मंदी पैदा होती है। यदि वह मजदूरों को आठ आने के वजाय पूरे दो रुपये दे दे, तो मजदूरों में पहले से चौगुनी चीजें खरीदने की शक्ति आ जाय। यदि वह ज्यादा घी-दूध खाता तो ग्वाले को ज्यादा पैसे मिलते। वह सेठजी की मिल से वनी चीजों का अधिक-से-अधिक उपयोग करता। उसका सारा परिवार जूता-मोजा पहनता; रजाई-दरी

इस्तेमाल करता; कोट-कमीज, साड़ी-जम्पर पहना करता; वह चाय-चीनी आदि का भरपूर इस्तेमाल करता; सारे घर के साथ हर चीज पेटभर खाता; साग-भाजी का, फलों का खुलकर व्यवहार करता। इस प्रकार समाज के हर तबके को उचित पैसा मिलता। लेकिन ऐसा न करके मजदूरों की मजदूरी कम करके उनकी खरीदने की, खाने-पीने की शक्ति कम कर दी जाती है। उसी का परिणाम होता है बाजारों में मन्दी, किसानों में त्राहि-त्राहि और मजदूरों में बेकारी। इस मन्दी को दूर करने के लिए पूँजीपति वस्तुओं को नष्ट कर देते हैं, अथवा संसार में नये युद्धों को उत्तेजित करते हैं। युद्ध के जमाने में उनके माल की खपत बढ़ जाती है। मजदूरों को काम मिलने लगता है। और इस प्रकार फिर कुछ वर्षों के लिए मन्दी, बेकारी और भूख की समस्या टल जाती है। मजदूरों का असंतोष भी टल जाता है।

सन् १८१७ के आस-पास कारखानों में अधिक उत्पादन के कारण इंग्लैंड में बड़े जोर की मन्दी आ गई थी। उस समय वहाँ के प्रसिद्ध समाजवादी राबर्ट ओवेन ने कहा था—"मशीन के उपयोग से पृथ्वी मालामाल हो रही है, किन्तु मजदूरी-खाता छोटा होता जा रहा है। हाथ में पैसे की कमी से मजदूर उस धन में से अधिकांश को नहीं खरीद सकते जिसे कि वे स्वयं पैदा करते हैं। इसीलिए सौदा गोलों या गोदामों में पड़ा रहता है। जब वितरण उसी परिमाण में होता रहता है जिस परिमाण में चीजें पैदा की जाती हैं, तभी काम सबको मिल सकता है, और मंदी तथा बेकारी से पिण्ड भी छूट सकता है।......कैसी अजीब और हृदय-द्रावक बात है! मजदूर इसलिए भूखों मर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने बहुत ज्यादा धन पैदा करने का अपराध किया।"

स्मरण रहे ओवेन स्वयं पूँजीपति था। अपने मिल के मजदूरों

की हालत सुधारने, तथा पार्लियामेंट में मजदूरों के हक में बिल पास कराने में उसका बड़ा जबर्दस्त हाथ था। वह स्वयं पक्का समाजवादी भी था और स्वयं कारखानेदार होने के कारण पूँजीवाद के अभिशाप को उसने निकट से, ईमानदारी से अध्ययन किया था।

(५) समाजवाद

सफल समाजवादी क्रान्ति—पूँजीवाद के अभिशाप की चर्चा हम कर आए हैं। हम यह भी समझा आए हैं कि समाज में ये अभिशाप इसलिए प्रगट होते हैं कि श्रमिकों को उनके श्रम की उचित मजदूरी नहीं दी जाती। पूँजीपति मजदूरों की तीन-चौथाई मजदूरी को स्वयं हथिया लेते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि कुछ थोड़े से लोग तो अत्यन्त धन-कुबेर बन जाते हैं, और समाज का एक विशाल-वर्ग कौड़ी-कौड़ी को मुँहताज बना रहता है। विचारकों के मत में यह विशाल विषमता ही इन सारे अभिशापों की माँ है। स्वयं ये अभिशाप समाज में असन्तोष उत्पन्न करते हैं, और जब-तब असंतोष की ही उग्रता क्रान्तियों की ओर अग्रसर होती है। ऐसे उदाहरणों से संसार के इतिहास भरे पड़े हैं। अनेक देशों में अनेक बार ऐसी क्रान्तियों के प्रयत्न हुए और क्रान्तियाँ हुईं भी। वे कुछ दिन के लिए समाज में आकर हलचल मचा विनष्ट हो चलीं। लेकिन अन्त में अक्टूबर, सन् १६१७ ई० में इन असंतोषों के उदर से रूस में जो एक सफल और महान् क्रांति हुई उसे मानव-समाज क्या कभी भुला सकेगा? आज वह क्रांति जीवन के अनेक वर्ष बिताकर पूरे यौवन में पहुँच चुकी है। उसने पृथ्वी के एक विशाल भू-भाग से सारी सड़ी हुई पुरानी मान्यताओं और व्यवस्थाओं

को मिटाकर मानव-समाज को एक बिलकुल नई अवस्था में पहुँचा दिया है। उस क्रान्ति को हम अक्टूबरकी महान मजदूर-क्रान्ति कहते हैं। पृथ्वी के जिस विशाल भाग पर वह क्रान्ति प्रगट हुई, उसे आज 'सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ' कहा जाता है, और उस क्रान्ति के फलस्वरूप वहाँ का समाज जिस नई अवस्था में प्रविष्ट हुआ उसे 'समाजवाद'। अब हम आपको संक्षेप में बतायेंगे कि—

समाजवाद क्या है ? :—

जिस प्रकार सामन्तवाद की स्थिति में समाज पर सामन्तों का प्रभुत्व होता है; पूँजीवाद की स्थिति में पूँजीपतियों का; उसी प्रकार समाज जब समाजवाद की अवस्था में प्रवेश करता है, तब समाज पर किसी व्यक्ति या किसी वर्ग का प्रभुत्व न होकर सारे समाज का प्रभुत्व होता है। अर्थात् समाज की सारी पैदावार और पैदावार के सारे साधनों पर सारे समाज का अधिकार होता है। और इन सबका उपयोग किसी एक जमात या वर्ग की भलाई के लिये न होकर सारे समाज की भलाई के लिये होता है।

समाजवाद के सिद्धान्त के अनुसार समाज के हर व्यक्ति को काम अवश्य करना होगा *। समाजवादी समाज हर व्यक्ति के लिए काम का इन्तजाम करेगा। बेकारी का भय किसी को नहीं रहेगा। अपने व्यक्तिगत विकास के लिए अवसर और सुविधा की समानता सबको रहेगी। अर्थात् हर व्यक्तिको इस बात का समान अधिकार होगा कि अपने-आपको चाहे जिस काम, पेशे या धन्धे के योग्य बनाने के लिए वह कोशिश करे। इसके लिए एक खास दर्जे तक की शिक्षा का प्रबन्ध सरकार करेगी। शिक्षा का प्रबन्ध सबके लिए समान होगा। विशेष कार्य के लिए विशेष प्रकार की योग्यता

---

* बच्चों, बूढ़ों और बीमारोंको छोड़कर।

दिखाने पर उसकी विशेष शिक्षा का प्रबन्ध सरकार करेगी। उसके भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था भी सरकार ही करेगी। किसी एक काम में लगे रहने पर फालतू समय में दूसरे काम की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा भी सरकार ही जुटायेगी। हर व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार काम करने का अवसर मिलेगा और अपने किये काम का पूरा फल, यानी पूरी मजदूरी पाने का अधिकार भी होगा। तो इस प्रकार समाजवाद का तात्पर्य नीचे लिखे अनुसार निकलता है :—

"हर व्यक्ति के लिए जीविका कमाने का समान अवसर और समान सुविधा होना और हर व्यक्ति का अपने परिश्रम के फल पर समान रूप से अधिकार होना।"

तो, समाजवाद की इस व्याख्या का तात्पर्य हुआ कि समाजवादी अवस्था में समाज के हर स्वस्थ स्त्री-पुरुषको एक निश्चित उम्र के भीतर काम अवश्य करना होगा। और हर व्यक्ति को अपने काम के फल पर, अर्थात् अपनी मजदूरी पर पूरा अधिकार होगा। पूँजीवादी व्यवस्था की तरह उसकी मजदूरी का तीन चौथाई भाग पूँजीपतियों की जेब में जाने का खतरा नहीं रहेगा। तो, इस प्रकार समाजवादी समाज में हर व्यक्ति काम करता है, हर व्यक्ति मजदूर है। चूँकि हर व्यक्ति मजदूर है, इसलिए मजदूर होना सबसे बड़े गौरव की बात समझी जाती है।

मजदूर से मतलब केवल हल, फावड़ा या हथौड़ा चलाने वालों से नहीं, बल्कि उन सभी लोगों से है जो अपने परिश्रम की कमाई से निर्वाह करते हैं। इस प्रकार मजदूरों की श्रेणी में किसान भी आ जाते हैं, कल-कारखानों में काम करने वाले सामान्य मजदूर भी। क्लर्क, अध्यापक, इञ्जीनियर, लेखक, डाक्टर, गायक, सिनेमा आदि में काम करने वाले अभिनेता, चित्रकार सभी मजदूर कहे जाते हैं। मिलों के मैनेजर भी

मजदूर कहे जाते हैं। उन सभी लोगों को मजदूर कहा जाता है जो समाज के लिए कोई-न-कोई उपयोगी कार्य करते हैं, किन्तु उन्हें मजदूर नहीं कहा जाता जो दूसरों से काम कराकर अपना मुनाफ़ा निकाला करते हैं।

मुनाफा निकालने के कार्य में जितना भी व्यक्तिगत परिश्रम किया जाय, समाजवादी सिद्धान्त के अनुसार वह दूसरों का शोषण ही कहा जाएगा। और इसलिए वह एक भयंकर सामाजिक अपराध माना जाएगा। मुनाफा कमाने के परिश्रम की तुलना उस चोर या डाकू के परिश्रम से की जाती है जो अन्धेरी रात में अत्यन्त कष्ट और खतरा मोल लेकर दूसरों का घर लूटने जाता है।

तो, इस सबका मतलब यह हुआ कि समाजवाद समाज की वह अवस्था है जिसमें हर व्यक्ति को अपने परिश्रम के फल पर पूरा अधिकार है। समाजवाद में हर व्यक्ति मजदूर है। मजदूरी का काम सबसे सम्मानजनक है। कोई भी व्यक्ति न किसी का शोषण कर सकता है, न मुनाफा कमाकर अपनी जेबें गरम कर सकता है। हर काम, हर चीज़ समाज की भलाई के लिए है और समाज के एक अङ्ग के रूप में हर व्यक्ति की भलाई समाज की भलाई पर निर्भर है। समाजवादी सरकार इस बात का बड़ी सतर्कता से ध्यान रखती है कि व्यक्ति, न व्यक्ति का शोषण कर सके, न समाज का।

समाजवादी विचार का विकास

सामन्त-युग के साम्यवादी :—

समाज में जब शोषण और अन्याय का जोर उठता है तो उसके विरोध में बोलने वाले भी पैदा होते ही हैं। भले ही उनकी संख्या नगण्य हो, भले ही उनकी आवाज़ में अधिक जोर

न हो, फिर भी उस वाणी में ऐसे बीज अवश्य छिपे होते हैं जो जाने-अनजाने पीढ़ियों तक अपना असर डालते रहते हैं। जब समाज में सभ्यता ने प्रवेश किया तो, उसके साथ शोषण और उत्पीड़न भी आया। आज से ७-८ हजार वर्ष पहले जब मिस्र में सभ्यता का प्रवेश हुआ, पुराना इतिहास इसका गवाह है कि सभ्यता के विकास के साथ ही वहां किस प्रकार अन्याय-अत्याचार का बाजार भी गरम हो उठा। तभी तो मिस्र के राजा हेन्कू का (ई. पू. २८५०) हृदय भी द्रवित हो उठा था ! तभी तो उसने कहा था—"हर एक अपने पड़ोसी की चीज़ को लूटना चाहता है। भले आदमी बच नहीं रहे हैं। संसार में वे ही अधिक हैं जो बुराई करते हैं।"

इसी प्रकार फिलिस्तीन में सन् ८०० ई. पू. के आस-पास 'अमो' नामक एक यहूदी संत ने अमीरों के बारे में कहा था—"वे हाथी-दाँत के पलँग पर लेटते हैं।..........रेवड़ के मेमनों को खाते हैं। सबसे अच्छी शराब पीते हैं। तेल-फुलेल लगाते हैं।..........इसके लिये वे रिश्वतें लेते हैं। घटिया अनाज बेचते हैं। तौल में घाटी मारते हैं।"

इसके लगभग दो साल बाद ही दूसरे यहूदी संत 'इसैया' ने अमीर अत्याचारियों को फटकारा था—"तुमने अँगूर के बगीचों को खा डाला। गरीब की लूट तुम्हारे घरों में है। तुम्हारे मन में क्या है जो मेरे लोगों को पीट-पीट कर बेकार करते हो और गरीबों के चेहरों को पीस रहे हो ?" फिर इसैया ने पृथ्वी पर भगवान् के राज्य की भविष्यवाणी की—"उस (भगवान् के) राज्य में सर्वत्र शान्ति रहेगी। जातियाँ अपनी तलवारों को तोड़-कर थाल बनायेंगी और अपने भालों से बागवान की कैंचियाँ बनायेंगी। ...एक जाति दूसरी जाति के विरुद्ध तलवार नहीं उठायेगी, और न वह फिर युद्ध करना ही सीखेगी।"

इसके बाद प्राचीन युनान में अफलातूँ (४२७–३४७ ई. पू.)

नामक एक जबर्दस्त विचारक पैदा हुआ। उस समय समाज में फैले शोषण और विषमता की ओर उसका ध्यान गया। समाज से शोषण और विषमता को हटाने के लिए उसने एक ऐसी साम्य-वादी सरकार की कल्पना की जिसका संचालन दार्शनिक साम्य-वादियों द्वारा होना चाहिये था। इन्हीं विचारों को लेकर उसने 'जनतंत्र' (Republic) नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। बाद में साम्यवादी विचारों को विकसित करने में इस ग्रन्थ ने बड़ी मदद पहुँचाई।

इसके बाद हम पहली सदी में इटली में 'सेनेका' नामक विद्वान् को साम्यवादी विचारों का प्रचार करते पाते हैं। उस समय रोमन समाज में एक ओर वैभव की अट्टालिकाएँ खड़ी थीं, उनमें रहने वाले नर-नारियों का जीवन विलासपूर्ण था। और दूसरी ओर गरीबों और दासों की झोपड़ियों में गरीबी का क्रूर अट्टहास था। 'सेनेका' ने अपने एक पत्र में लिखा था :—

"समाज का धर्म तभी तक पवित्र और बाधा-रहित रहा, जब तक समाज लोभ के जाल में नहीं फँसा, और गरीबी नहीं आ पहुँची। क्योंकि मनुष्य ने जैसे ही किसी चीज को 'मेरा' कहना शुरू किया, तभी से वह सभी चीजों का स्वामी नहीं रह गया। आदिमानव और उसकी नजदीकी सन्तानें प्रकृति का अनुसरण करती रहीं, इसलिए वे पवित्र और निर्मल रहीं। जब पाप (लोभ) भीतर घुसे तो राजा अपनी शक्ति दिखाने के लिए मजबूर हो गये और उन्होंने दण्ड के नियम-कानून बनाये। वह आदिम युग कितना सुन्दर था, जब प्रकृति की देन सब की साझी सम्पत्ति थी! सब मिलकर उसका उपभोग करते थे! लोभ और विलास ने मनुष्यों में फूट नहीं डाली थी, और न उन्हें एक दूसरे का दुश्मन बनाया था!······सार्वजनिक सम्पत्ति पर उनका सुरक्षित अधिकार था, जिनमें एक भी गरीब नहीं पाया

जाता था! उनके बारे में मैं क्यों न ख्याल करूँ कि वे सभी मनुष्यों में सब से धनी मनुष्य थे ?"

पूँजीवादी युग के साम्यवादी-समाजवादी विचारक :—

इसके बाद हमें मध्य युग में समाजवादी विचारों का परिचय फ्रांस और इंगलैंड के विचारकों में मिलता है। फ्रांस का पहला साम्यवादी विचारक सेंट साइमन (Saint Simon) था, जिसका जन्म सन् १७६० ई० में हुआ था। इंगलैंड के साम्यवादी रावर्ट ओवेनका जन्म सन् १७७१ ई० में हुआ था। इन दोनों व्यक्तियों पर उस समय अपने-अपने देश में पूँजीवाद से उत्पन्न विषमता का बड़ा गहरा असर पड़ा।

उस समय अंग्रेज मज़दूरों की दशा के बारे में प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक थामस किर्कप ने लिखा है--(१) किसानों और मज़दूरों का गुज़ारा उन्हें मिलने वाली मज़दूरी से होना असम्भव है। (२) उनके रहने के स्थान की दशा बड़ी शोचनीय है। (३) पूँजीपति और जमीन्दार लगातार मज़दूरी घटाने का यत्न करते हैं और इसके लिए मर्द मज़दूरों की जगह स्त्री और बच्चे मज़दूरों को काम पर लगाते हैं। काम उनसे शक्तिभर लिया जाता है, और मज़दूरी आधी या उससे भी कम दी जाती है। परिणामस्वरूप किसानों और मज़दूरों में खूब बेकारी बढ़ गई है। (४) मज़दूरों को किसी प्रकार का राजनैतिक अधिकार नहीं है। (५) शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं है। उनमें शराबखोरी और व्यभिचार खूब बढ़ा है। मर्दों की अपेक्षा स्त्रियों की मज़दूरी सस्ती है, इसलिए उन्हें आसानी से काम मिल जाता है। फलस्वरूप मर्द बेकार रहते हैं। स्त्रियों की कमाई पर निर्वाह करते हैं। बच्चों की मज़दूरी और भी सस्ती होने के कारण पाँच-छः बरस की उम्र में बच्चे काम पर भरती किए जाते हैं। चौदह-चौदह घण्टे काम लिया

जाता है, और बारह-चौदह वर्ष की उम्र तक इन बच्चों को बिलकुल निःसत्व करके भूखों मरने के लिए बेकार छोड़ दिया जाता है।

फ्रांस के मजदूरों की भी यही दुर्दशा थी। समाज की इन बुराइयों को दूर करने के लिए फ्रांस में सेंट साइमन ने आवाज उठाई। उसने अपनी कल्पना में समाज का एक ढाँचा तैयार किया, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार जीवन गुजारने का समान अवसर देने की व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में समाज की आवश्यकताओं के विचार से पैदावार के प्रबन्ध की जिम्मेवारी सरकार पर रखी गई। और यह सरकार ईसाई-धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार कायम होनी चाहिए थी। धार्मिक भावना के आधार पर प्रचार करने के कारण शुरू-शुरू में उसके प्रति फ्रांस की जनता में काफी सहानुभूति पैदा हो गई। किन्तु जब उसने पुराने धार्मिक विश्वासों का खण्डन करना शुरू किया तो यही सहानुभूति उसके प्रति विद्रोह में बदल गई। अपने जीवन में उसने अनेक साम्यवादी मठ स्थापित किए, जो उसकी मृत्यु के बाद ही समाप्त हो गए।

इंगलैण्ड में राबर्ट ओवेन ने सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। उसका आन्दोलन केवल शब्दों का न होकर कार्य के रूप में था। वह स्वयं एक जीनसाज का लड़का था। दस साल की उम्र में ही उसे एक कपड़े वाले के यहाँ नौकरी करनी पड़ी। मालिक के पास अच्छा पुस्तकालय था। ओवेन ने पुस्तकालय का खूब लाभ उठाया। व्यापार का काम सीखने के बाद उसने व्यापार करना शुरू किया, जिसमें उसे खूब सफलता मिली। वह अपनी योग्यता के बल पर केवल उन्तीस वर्ष की छोटी उम्र में मांचेस्टर के मिल का मैनेजर बन गया। बाद में वह मिल का साझीदार भी बना। देखते-देखते वह लखपति बन

गया। लखपति तो वह बन गया, पर इस लखपति बनने की तह में जो घोर सामाजिक अत्याचार छिपा हुआ था उसकी ओर उसका ध्यान गये बिना न रहा।

मज़दूरों की दशा में सुधार के लिए उसने एक कम्पनी बनाई। हिस्सेदारों को केवल ५ प्रतिशत मुनाफा देने का निश्चय हुआ। शेष मुनाफे को मज़दूरों की भलाई में खर्च किया जाने लगा। उसने अपने पास के पैसे से मज़दूरों के लिए अलग बस्तियाँ बसाईं। यहाँ उन्हें स्वास्थ्य और सफाई की शिक्षा दी जाती। उनके बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का प्रबन्ध किया गया। उसने मज़दूरों की दशा सुधारने के लिए पार्लियामेंट में कई कानून पास कराने के प्रयत्न भी किये।

बाद में उसके विचारों में उग्रता आने लगी। सन् १८३५ में "गरीबों का संरक्षक" (Poor Men's Guardian) नामक पुस्तक में उसने लिखा—"सारी पैदावार मज़दूरों और किसानों के श्रम से पैदा होती है। लेकिन सब कुछ पैदा करके भी उन्हें केवल प्राण-रक्षा के योग्य भोजन पाकर ही सन्तुष्ट हो जाना पड़ता है। शेष धन चला जाता है पूँजीपति, जमीन्दार राजा औ. पादरियों की जेब में।" बाद में समाजवाद के सबसे बड़े आचार्य कार्ल मार्क्स को ओवेन के इन विचारों से समाजवाद के वैज्ञानिक सिद्धान्त स्थिर करने में बड़ी ही मदद मिली। "समाजवाद" (Socialism) इस शब्द का प्रयोग पहले-पहल राबर्ट ओवेन ने ही किया था।

सेंट साइमन के बाद फ्रांस में एक जबर्दस्त समाजवादी प्रचारक हुआ लुईब्लाँ (Louis Blanc)। इसका जन्म सन् १८११ में हुआ था। यह पहला समाजवादी था जिसने मज़दूर किसानों को राजनैतिक शक्ति पर अधिकार जमाने की आवश्यकता बताई थी। उसका विचार था कि एक ऐसी सरकार स्थापित की

जाय, जो सारे राष्ट्र के उद्योग-धन्धों पर नियन्त्रण रखे। और सरकार की ओर से भारी-भारी व्यवसाय आरम्भ किये जायँ जिनकी सफलता के सामने वैयक्तिक सम्पत्ति अपने-आप नष्ट हो जायेगी। फ्रांस में सन् १८४८ में जो समाजवादी क्रान्ति हुई थी इसमें लुईब्लाँ के विचारों का जबर्दस्त हाथ बताया जाता है। लुईब्लाँ के बाद फ्रांस में प्रूधों (Proudhon) नामका जबर्दस्त समाजवादी हुआ जिसने बताया कि राष्ट्र की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होना चाहिए।

फ्रांस और इंगलैंड में समाजवादी आन्दोलन असफल रहे, किन्तु भविष्य के लिए क्रांति के बीज वे अवश्य बो गये। इसके बाद समाजवादी विचार-धारा का विकास जर्मनी और रूस में हुआ। जर्मनी में काल मार्क्स, फ्रेडरिख एंगल्स, लास्साल और राडबर्टस नामक समाजवादी विचारक पैदा हुए। इन सबकी विचार-धारा में यद्यपि काफी मेल था, किन्तु समाजवाद को ठोस वैज्ञानिक रूप दिया कार्ल मार्क्स और एंगल्स ने मिलकर। आज समाजवाद के सबसे बड़े आचार्य के रूप में इन्हीं दो नामों को याद किया जाता है।

मार्क्स जर्मनी के एक यहूदी परिवार में ५ मई, सन् १८१८ में पैदा हुआ था। बाद में इसका पिता ईसाई बन गया। इसका पिता वकील था, इसलिए मार्क्स को ऊँची शिक्षा प्राप्त करने का मौका मिला। दर्शन-शास्त्र की अनेक विचार-धाराओं का उसने गम्भीर अध्ययन किया। दर्शन के विषय पर निर्बन्ध लिखने के कारण युनिवर्सिटी की ओर से उसे पी० एच० डी० (दर्शनाचार्य) की उपाधि भी मिली। युनिवर्सिटी में वह प्रोफ़ेसर बनना चाहता था, किन्तु उसके उग्र विचारों के कारण उसे यह जगह न मिल सकी। इसका परिणाम यह हुआ कि मार्क्स पूरा क्रान्तिवादी बन गया। सन् १८४३ ई० में एक धनी परिवार (सामन्त) की लड़की 'जेनी'

962

से उसने शादी की। स्वतन्त्र विचारों के कारण जर्मनी में गुजारे की गुंजायश न देख वह फ्रांस की राजधानी पेरिस में चला आया। यहाँ वह एक 'वर्ष-पुस्तक' (Year Book) का सम्पादक बन गया, जिसमें अनेक क्रान्तिकारी लेखकों के लेख छपने लगे। इसमें एंगल्स का भी एक लेख छपा और तभी से मार्क्स-एंगल्स जीवन पर्यन्त अभिन्न मित्र बने रहे। इन दोनों ने मिलकर पुस्तकें लिख-लिखकर 'समाजवाद' को ठोस वैज्ञानिक रूप देना शुरू कर दिया।

मार्क्स को जीवन की अनेक कठिनाइयों से गुजरना पड़ा। उग्र विचारों के कारण फ्रांस की सरकार ने उसे फ्रांस छोड़ने पर मजबूर किया। फिर वह बेलजियम में आ गया। और अन्त में वहाँ से भी निकाले जाकर दोनों मित्र इंगलैंड आ गये। उम्र के पिछले ३४ साल मार्क्स ने लन्दन में बिताये। अपने गुजारे के लिए उसने पर्याप्त धन नहीं कमाया। पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिख-कर कुछ कमा लेता, लेकिन पूरा नहीं पड़ता। एक समय वह ब्रिटिश म्यूज़ियम के पुस्तकालय में अपनी पुस्तकों के लिए नोट लेते समय भूख और कमजोरी के कारण बेहोश होकर कुर्सी पर लुढ़क गया। उसकी लड़की बीमार हो गई थी, किन्तु पैसा पास में न होने के कारण बगैर दवा-दारू के वह मर गई। बाद में एंगल्स ने उसकी आर्थिक मदद करनी शुरू की। अपने मित्र की मदद के लिए एंगल्स को व्यापार तक का काम करना पड़ा था।

मार्क्स और कम्युनिस्ट-लीग :—

बेलजियम की राजधानी ब्रुसेल्स में रहते समय मार्क्स ने अपने मित्रों सहित सन् १८४७ में 'कम्युनिस्ट-लीग' (साम्यवादी-संघ) की स्थापना की। इसके प्रथम सम्मेलन के अवसर पर एक घोषणा-पत्र प्रकाशित करने का विचार किया गया। इसके लिखने का भार मार्क्स और एंगल्स पर सौंपा गया। यह घोषणा

फरवरी, सन् १८४८ में प्रकाशित हुई। इसे 'कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो' या 'साम्यवादी घोषणा-पत्र' कहा जाता है। इस घोषणा-पत्र को ही 'समाजवाद' और 'साम्यवाद' का आधार माना जाता है। समाजवाद क्या है पहले बता आये हैं, और साम्यवाद के बारे में आगे बतायेंगे।

फरवरी सन् १८४८ में साम्यवादी घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ, और इसी महीने के अन्त में फ्रांस की तीसरी राज्य-क्रान्ति हुई जिसे 'समाजवादी क्रान्ति' कहते हैं। यद्यपि यह क्रान्ति कार्य-कर्त्ताओं की अनुभवहीनता के कारण सफल न हो सकी, किन्तु इस घोषणा-पत्र का प्रभाव संसार भर के मजदूर-आन्दोलनों पर पड़ा। और तभी से मजदूरों का आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय बन गया। और तभी में मजदूरों में वर्ग-चेतना का भाव जागा। तभी से उन्होंने सही रूप से समझा कि संसार में दो ही वर्ग हैं—एक शोषकों का और दूसरा शोषितों का। शोषितों को एक झण्डे के नीचे संगठित होकर चाहिए कि शोषकों के हाथ से सारा अधिकार छीन लें। तभी संसार के मजदूरों का सही माने में कल्याण हो सकेगा। यह घोषणा-पत्र का सन्देश है—

"सभी देशों के मजदूरो! एक हो जाओ! तुम्हारे पास सिवा बेड़ियों के खोने के लिए और कुछ नहीं, और पाने के लिए सारा संसार है।"

संसार के समाजवादी देश :—

अब तक संसार के अनेक देशों में समाजवादी सरकारें कायम हो चुकी हैं। सबसे पहले अक्टूबर, सन १९१७ ई० में सफल समाजवादी क्रान्ति हुई रूस में। इस क्रान्ति से पहले एक विशाल भू-भाग पर 'जार' (रूस का बादशाह) का शासन था। यह रूसी साम्राज्य सारी पृथ्वी के छठे हिस्से पर फैला हुआ था। सामन्तों के सहयोग से जार वहाँ शासन किया करता। साम्राज्य की सारी भूमि

और शासन के सभी बड़े पदों पर सामन्तों का ही अधिकार था। पूँजीवाद अभी वहाँ पूरे रूप में प्रकट नहीं हुआ था। समाजवादी क्रान्ति से करीब आठ महीने पूर्व फरवरी, सन् १९१७ में जारशाही को समाप्तकर जो पहली क्रान्ति हुई थी उसकी सरकार पर केरेन्स्की के नेतृत्व में पूँजीवादियों ने कब्जा जमा लिया था। कहना चाहिए कि रूस में पूँजीवादी सरकार सिर्फ ८ महीने कायम रह सकी थी।

समाजवादी क्रान्ति का नेता लेनिन था। इस क्रान्ति को विफल बनाने के लिए संसार की पूँजीवादी सरकारों ने खूब कोशिश की। संसार के अमीरों ने इस क्रान्ति को कुचलने के लिए अपनी-अपनी फौजें भी भेजीं। किन्तु रूस के मजदूरों ने बड़ी दृढ़ता से इन सारी मुसीबतों का सामना किया। उन्होंने लाल-सेना का निर्माण किया। तीन वर्ष के भयङ्कर गृह-युद्धों में वे विजयी बने। सारे रूसी साम्राज्य पर से साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और पूँजीवाद को एक साथ समाप्त करके मजदूरों का झण्डा वहाँ लहराने लगा। अनेक देशों और जातियों को मिलाकर रूसी साम्राज्य बना था। अब उन सब देशों और जातियों को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप से बराबरी का दर्जा देकर उन सब का एक संघ बनाया गया, जिसका नाम रखा गया "सोवियत समाजवादी जनतन्त्र संघ"।

लेनिन की मृत्यु के बाद इस मजदूर-सरकार का नेता जोसेफ-स्तालिन बना। वहाँ किसान-मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए स्तालिन के नेतृत्व में अनेक पंचवार्षिक योजनाएँ बनीं और चालू की गईं। इन पंचवार्षिक योजनाओं में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इस सफलता ने सोवियत-समाज को अत्यन्त सुदृढ़ और समृद्ध बना दिया। तब से संसार के अनेक देशों में पंच-

वार्षिक-योजना की नकल की जाने लगी है। आज भारत की सरकार ने भी अपने तरीके से देश की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए एक पंचवार्षिक योजना बनाई और चालू की है।

बहुत वर्ष बाद रूस की समाजवादी क्रान्ति को एक भयङ्कर मुसीबत का सामना करना पड़ा। फासिस्ट हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी ने २२ जून, १९४१ को सोवियत-संघ पर हमला बोल दिया। लेकिन युरोप की अन्य पूँजीवादी सरकारें जिस प्रकार हिटलरी सेना के सामने कुछ दिनों और कुछ सप्ताहों में ही घुटने टेकती गईं, सोवियत-संघ इस बात के लिए तैयार न था। उसने इंच-इंच भूमि के लिये लड़ाइयाँ लड़ीं और अंत में सोवियत-संघ की समाजवादी सेनाएँ हिटलरी फौजों को खदेड़ती हुई, जर्मनी की राजधानी बर्लिन में प्रविष्ट हो गईं। हिटलर पहले ही आत्म-हत्या कर चुका था। इस कठिन परीक्षा से सोवियत की समाजवादी समाज और भी मजबूत बनकर निकला। सोवियत की विजयी लाल-सेना ने सिर्फ सोवियत की भूमि से ही नहीं, बल्कि पूर्वी युरोप के अनेक देशों से जर्मन-सेना को नष्ट करने में सफल हुई। लाल-सेना जहाँ भी गई अपने साथ समाजवाद का संदेशा भी लेती गई। फलस्वरूप पोलैंड, हंगरी, रूमानिया, बल्गेरिया, युगोस्लेविया, अलबानिया, चेकोस्लेविया देशों के अतिरिक्त पूर्वी जर्मनी के एक बड़े हिस्से में भी समाजवादी सरकारें बन गईं। आज इन सभी देशों के शासन पर समाजवाद का झंडा लहराता हुआ सारे संसार के शोषितों को आशा का संदेशा दिये जा रहा है।

इधर एशिया में पूँजीवादी-सामंतवादी सरकार को खत्म कर सन् १९४९ में चीन की सारी भूमि पर समाजवादी सरकार कायम हो चुकी है। कम्युनिस्ट-विरोधियों तक को यह स्वीकार करना पड़ा है कि कम्युनिस्टों ने अपने शासन के दो तीन वर्ष के भीतर ही वहाँ सदियों से फैली बेकारी, भुखमरी और भ्रष्टाचार को समाप्त

कर दिया है। इधर तिब्बत भी निश्चित रूप से चीन के समाजवादी शासन में शामिल हो चुका है।

ऊपर जिन समाजवादी (Socialist) देशों की चर्चा की गई है, वे वास्तव में साम्यवादी (Communist) हैं। उनका लक्ष्य है समाजवाद से साम्यवाद की ओर बढ़ना, जिसमें मनुष्य समाजवाद से भी अधिक समानता का उपभोग कर सकेगा। समाजवाद साम्यवाद की पहली सीढ़ी मानी जाती है।

कुछ विचारकों ने सोवियत रूस के समाजवादी शासन को पूँजीवादी शासन का ही एक रूप बताया है! पूँजीवाद में जहाँ व्यक्तिगत अधिकार स्वीकार किया जाता है, वहाँ सोवियत-शासन में पूँजी पर राज्य का अधिकार है। अर्थात् वहाँ 'राज्यकीय पूँजीवाद' है। इस प्रकार के विचारकों में इंगलैण्ड के प्रसिद्ध इतिहासकार और उपन्यासकार एच० जी० वेल्स का नाम आता है। और इसी मत को हथियार बनाकर संसार के सोवियत-विरोधी, कम्युनिस्ट-विरोधी लेखकों एवं पत्रकारों ने सोवियत-संघ को 'पूँजीवादी' देश कहकर प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

यह तो 'जितने मस्तक उतने विचार' वाली बात है। लेकिन इस असलियत से आज कौन इनकार कर सकेगा कि पृथ्वी के जिस विशाल भाग पर सोवियत् समाजवाद का झण्डा आज लहरा रहा है, वहाँ का समाज कुछ थोड़े से वर्षों में ही अर्थ और शिक्षा, कला और कौशल हर क्षेत्र में आश्चर्यजनक वेग से आगे बढ़ चला है, बढ़ता जा रहा है? वहाँ भुखमरी और बेकारी का भय किसी को नहीं है। सुन्दर और शिष्ट पारिवारिक जीवन है। समाजवादी देशों के पारिवारिक जीवन की झाँकी हमें लेनिन के नीचे लिखे वाक्यों से मिल जाएगी:—

"स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध शरीर की दूसरी आवश्यकताओं—भूख, प्यास, नींद—की तरह ही एक आवश्यकता है। इसमें

मनुष्य को स्वतन्त्रता होनी चाहिए। लेकिन प्यास लगने पर शहर की गन्दी नाली में मुँह डालकर पानी पीना उचित नहीं। उचित है स्वच्छ जल, स्वच्छ गिलास से पीना। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक संतोष तथा समाज की रक्षा के लिये होना चाहिए, न कि स्त्री-पुरुषों को रोग और कहल का घर बना देने के लिए।"

समाजवाद के गुण-दोष :—

समाजवादी अवस्था के गुण-दोषों पर अधिक कुछ कहना या लिखना अप्रासंगिक होगा। क्योंकि बहुत-से देशों में समाजवाद अभी-अभी ही प्रकट हुआ है। अभी उसे बहुत-सी परीक्षाओं से गुजरना है। और थोड़े से अरसे में जितनी विशाल प्रगति उसने की है उससे आशा करनी ही चाहिए कि समाजवाद हर क्षेत्र में मानव-समाज को समानता की ओर अग्रसर करने में सफलता प्राप्त करेगा। यह सच है कि संसार के समाजवादी देश अपने देश से भुखमरी और बेकारी को दूरकर अपने नागरिकों को भविष्य की चिन्ता से मुक्त कर चुके हैं। किन्तु अनुशासन की कड़ाई तथा हर व्यक्ति की आय में थोड़ा-बहुत अन्तर अभी भी मौजूद है। लेकिन समाजवादी सरकारों का यह विश्वास है कि अनुशासन की यह कड़ाई तभी तक मौजूद है जब तक समाजवाद को पूँजीवाद से खतरा बना हुआ है। और इस खतरा के दूर होते ही अनुशासन की कड़ाई और रहन-सहन के स्तर में जो थोड़ा अन्तर है वह समाप्त हो जायगा। और निरन्तर ईमानदारी और समुचित श्रम के वातावरण में शिक्षा और अनुशासन पाते रहने के कारण वे स्वभाव से ही सभ्य, शिष्ट और ईमानदार बन जायेंगे। समाज के लिये ईमानदारी से काम करना हर व्यक्ति के स्वभाव में शामिल हो जायगा। वैज्ञानिक साधनों में उत्तरोत्तर प्रगति के कारण पैदावार में भी

प्रगति होती रहेगी। तब समाज में साम्यवाद का सिद्धान्त लागू होते देर नहीं लगेगी। अर्थात्—"प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार काम लिया जायगा और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जायगा।" और तब, न राज्य की आवश्यकता रहेगी, न सेना की, न पुलिस की। तब संसार से सदा के लिये युद्ध मिट जायगा। क्योंकि लड़ाई-झगड़े मनुष्य के पिछड़ेपन और जंगलीपन के चिन्ह हैं, विकसित मनुष्य के नहीं।

कम्युनिस्ट-विरोधियों का यह तर्क है कि, "साम्यवादी समाज में जब मनुष्य को भविष्य की चिन्ताओं और परेशानियों से छुटकारा मिल जायगा, तब वह स्वभाव से आलसी और निकम्मा बन जायगा। ऐसी स्थिति में समाज का विकास रुक जायगा और मानव-समाज आगे बढ़ने के बजाय पीछे की ओर लुढ़क जायगा।" इस तर्क के विरोध में यह बड़ी आसानी से कहा जा सकता है कि, "अब तक जो संसार में अनेक आविष्कार हुए हैं उनके अधिकांश आविष्कारकों के समक्ष रोटी की कठोर समस्या न थी। जीवन के अन्य कठोर संघर्ष भी न थे। लेकिन फिर भी वे भोग-विलास व निकम्मेपन के जीवन को न अपनाकर बड़ी कड़ी साधना में लगे रहे। अनेक नये आविष्कारों से समाज को गतिमान् बनाते रहे। न्यूटन और आइन्स्टाइन जैसे तपस्वी साधक चाहने पर भोग-विलास का निकम्मा जीवन भी बिता सकते थे। किन्तु ऐसा न कर वे साधना में लगे रहे। इससे पता चलता है कि साम्यवादी समाज में भी मनुष्य की यह साधना की प्रवृत्ति नष्ट न होगी। अपितु साम्यवादी समाज का वातावरण उसे नये नये तथ्यों के आविष्कार करने की ओर हमेशा प्रेरित ही करता रहेगा। और सामान्य जनता के लिये काम करके खाना चूँकि आदत में शामिल हो जायगा, इसलिये उनके 'निकम्मा' बन जाने की आशंका भी नहीं रह जायगी। इसके विपरीत, पूँजीवादी

समाज में भविष्य की चिंताएँ और जीवन की परेशानियाँ मनुष्य में झूठ, बेईमानी, दगा और फरेब की कुप्रवृत्तियाँ पैदा करती हैं। जब कि साम्यवादी समाज में इन कुप्रवृत्तियों के लिये गुंजायश ही नहीं रह जायगी।"

भारतीय समाज के विकास की झाँकी

[७]

भारतीय समाज का रूप :—

भारतीय समाज का जो रूप आज हमारे सामने है, उसके पीछे हजारों वर्षों का इतिहास है। जिस प्रकार अनेक जातियों के योग से इस समाज का निर्माण हुआ है, उसी प्रकार इसके

मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में प्राप्त सील-मोहर

इतिहास का भी। विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अब तक जो छान-बीन की है उसके आधार पर तो यही कहा जा सकता

है कि इस देश में आर्यों के आगमन से पहले भी अनेक जातियाँ मौजूद थीं। सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर सन् १६२२
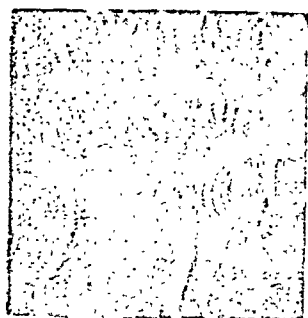
सील-मोहर (मो. जो. द.)
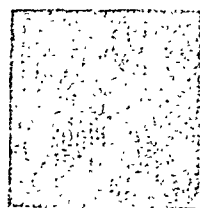
सील-मोहर

ई० में मोहन-जो-दड़ो (मुर्दों का टीला) की खुदाई में जो चीजें प्राप्त हुई हैं उनके आधार पर विद्वानों ने निश्चित किया है कि भारत में आर्यों के आगमन से पहले सिन्धु-उपत्यका में एक ऐसी जाति निवास कर रही थी जो सभ्यता और संस्कृति
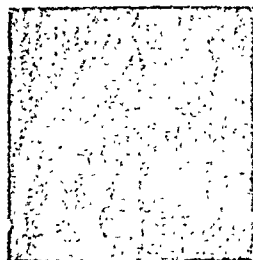
सील-मोहर (हाथी)
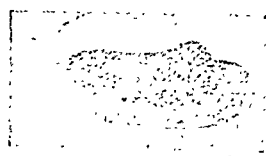
सील-बट्टा

की दृष्टि से आर्यों से आगे बढ़ी हुई थी। इस जाति का नाम 'द्रविड़' बताते हैं। इनमें शिव-पूजा एवं मातृ-पूजा के साथ वृक्ष-पूजा, सर्प-पूजा आदि की प्रथा भी प्रचलित थी। इन सब प्रथाओं का प्रभाव बाद में विजेता आर्यों पर भी खूब पड़ा, और आज भी वे प्रथाएँ किसी-न-किसी रूप में भारतीय समाज में प्रचलित दिखाई देती हैं।

मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में प्राप्त शिव-मूर्ति

मोहन-जो-दड़ो के प्राचीन अवशेषों से पता चलता है कि द्रविड़-नगरों में मकान, सड़कें और गलियाँ व्यवस्थित ढंग से बनाई जाती थीं। पक्की ईंटों से बने सार्वजनिक स्नानागार भी होते थे। राज-मार्ग की दोनों बगलों में पक्की ईंटों की चौड़ी नालियाँ बनाई जाती थीं। गहनों के नमूने सुन्दर होते थे। मिट्टी के पक्के बर्तनों पर सुन्दर चित्रकारियाँ की जाती थीं। मिट्टी के अनेक शक्ल-सूरत के खिलौने भी बनाये जाते थे।
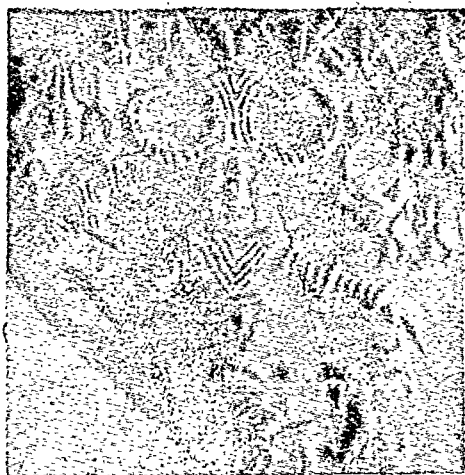
नक्काशीदार मिट्टी की हांडी का टुकड़ा

खिलौना

मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में विभिन्न जंतुओं की मूर्ति वाली

सैकड़ों सील-मुहरें प्राप्त हुई हैं। इन सुन्दर सील-मुहरों पर एक विशेष प्रकार की लिपि भी अंकित है जिसे पढ़ने में अब भी विद्वानों को सफलता नहीं मिल सकी है।
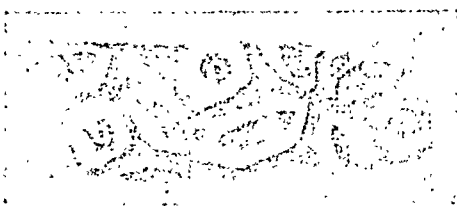
नक्काशीदार मिट्टी की हाँडी का टुकड़ा
(मोहन-जो-दड़ो)

खिलौना

इस विकसित सभ्यता के विनाश में अनेक कारण बताये जाते हैं। सिन्धु नदी में भीषण बाढ़ आने के कारण, अथवा लगातार सूखा पड़ने के कारण इस द्रविड़-सभ्यता का अस्तित्व संकट में पड़ चुका था। और बाद में ईसा से लगभग तीन-चार हजार वर्ष पूर्व जब आर्यों ने मध्य एशिया से पामीर-पर्वत तथा हिन्दू-कुश-पर्वत के रास्ते भारत में प्रवेश करना आरम्भ किया, तो सिन्धु-घाटी के सभी आदि-वासियों से इनका युद्ध छिड़ता गया। आर्यों के आगमन से पहले यहाँ घोड़े नहीं थे। आर्यों ने बाद में शायद लोहे के हथियारों का भी इस्तेमाल करना आरम्भ कर दिया था। वे घोड़ों और घोड़ों के रथों पर सवार हो लोहे के शस्त्रों से अपने शत्रुओं को युद्ध में परास्त करने लगे। क्योंकि द्रविड़ों के

खिलौना

पास न तो घोड़े थे, न लोहे के अस्त्र-शस्त्र ही। फलस्वरूप बर्बर आर्यों के सामने इस द्रविड़-सभ्यता को घुटने टेकने पर मजबूर होना पड़ा। उसे धीरे-धीरे विनाश के गर्भ में प्रविष्ट होना पड़ा। और इन द्रविड़ों से भी पहिले मनुष्य की कई अन्य जातियाँ यहाँ निवास करती थीं, जिनके अवशेष आज कोल, भील, सन्ताल, मुण्डा और प्रशान्त महासागर के टापुओं की कई जंगली जातियों के रूप में मौजूद हैं।

आर्यों के आगमन के बाद भी अनेक जातियाँ यहाँ आईं। यहाँ यवन आये; शक, सीथियन और हूण आये। और फिर आये अरब, तुर्क और मुगल आदि। ये सारी जातियाँ यहाँ विजेता के रूप में आईं। कुछ दिन अलग-थलग रहीं। फिर धीरे धीरे एक भारतीय समाज के रूप में बदलती गईं। इन सबको मिलाकर वर्तमान भारतीय समाज का रूप निर्मित हुआ है।

भारतीय समाज में आर्यों की प्रधानता :—

विद्वानों का मत है कि जिस समाज या जिस देश में जिस जाति की प्रधानता हो जाती है, उस जाति का इतिहास ही उस सारे समाज और सारे देश का इतिहास बन जाता है। जिस प्रकार प्राचीन युनान में अनेक जातियाँ थीं, अनेक कबीले थे, किन्तु 'ग्रीक' कबीले के लोग उन सबों में अधिक प्रभावशाली थे, इसलिये 'ग्रीक' जाति का इति।स ही सारे युनान का इतिहास बना। यहाँ तक कि उनके नाम पर उस देश का नाम ही 'ग्रीस' पड़ गया। प्राचीन इटली की अनेक जातियों में 'रोमन' लोग सबसे प्रभावशाली थे, इसलिए रोमन जाति का इतिहास ही सारे इटली का इतिहास माना गया। इसी प्रकार भारतीय समाज में भी 'आर्य' जाति के लोग सबसे अधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली साबित हुए, अतः आर्यों का इतिहास ही सारे भारत का इतिहास बन गया। यहाँ तक

कि सारे उत्तर भारत का नाम भी 'आर्यावर्त' अर्थात् 'आर्यों का देश' पड़ गया। इसलिए 'भारतीय समाज के विकास' पर प्रकाश डालते समय हमें मुख्यतः आर्यों के साहित्य और आर्यों के इतिहास का सहारा ही लेना पड़ेगा।

आर्यों का आदि-देश :—

इतिहास-वेत्ताओं का बहुमत इसी पक्ष में है कि आर्य-लोग बाहर से भारत में पधारे। आरम्भ में आर्य-लोग भारत से बाहर किसी एक स्थान में रह रहे थे। उन्हीं में से कुछ लोग पश्चिमी युरोप की ओर चल पड़े, कुछ लोग ईरान और ईराक की तरफ, और कुछ लोग पामीर को पार करते हुए सिन्धु नदी की उपत्यका में दाखिल हुए। आरम्भ में ये लोग किसी एक ही स्थान पर रहा करते थे इसके सबूत में इन सभी जातियों की भाषा में कुछ शब्दों की समानता को पेश किया जाता है। इन जातियों की पौराणिक कहानियों में पाई जाने वाली समानता भी इसमें प्रमाण माना जाता है।

तो फिर आप जानना चाहेंगे कि आर्यों का वह आदि देश कहाँ था? लोकमान्य तिलक जैसे विद्वान उत्तरी ध्रुव के निकट आधुनिक साइबेरिया को आर्यों का आदि देश बता गये हैं। कुछ लोग पामीर पर्वतमाला के आस-पास मध्य एशिया में, और कुछ लोग वोल्गा नदी के आस-पास काशपियन समुद्र के किनारे उनके निवास का आदि स्थान बताते हैं। काशपियन समुद्र का नाम आर्यों के 'कश्यप' मुनि से जोड़ा जाता है।

वे क्यों वहाँ से अलग हुए? इसके जवाब में कहा जाता है कि आहार की खोज में, अथवा किसी प्राकृतिक उत्पात के कारण। हिम-पात, भारी वर्षा अथवा भूकम्प के कारण उन्हें वहाँ से भिन्न-भिन्न दिशाओं में बिखरना

पड़ा। क्योंकि यहूदी, ईसाई, युनानी, रोमन और हिन्दू पौराणिक कथाओं में समान रूप से प्रलय की बात कही गई है।

तो, यह प्रलय कब हुआ जिसने आर्यों को बिखरने पर बाध्य कर दिया? अनुमान है कि आज से लगभग छः हजार से आठ हजार वर्ष पहले ऐसी कोई प्राकृतिक दुर्घटना हुई होगी जिसके कारण कुछ आर्यों को पामीर पारकर कश्मीर की ओर बढ़ना पड़ा और बाद में कुछ आर्य ईरान, अफगानिस्तान की ओर से सिन्धु की उपत्यका की ओर बढ़े। यही लोग इतिहास में भारतीय 'आर्य' के नाम से पुकारे गये हैं।

आर्यों का आदि-जीवन :—

भारतीय आर्यों का सबसे आदि और मूल ग्रन्थ वेद है। जब तक आर्यों ने लिपि का आविष्कार नहीं कर लिया, पीढ़ी-दर-पीढ़ी वेद की रचनाएँ स्मरण के बल पर ही सुरक्षित की जाती रहीं। लिपि के आविष्कार के बाद ही वेद के विभाग भी किये गये— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद। इन्हीं वेदों में भारतीय आर्यों के आदि-जीवन की झाँकी हमें मिलती है।

अन्य मानव-जातियों की तरह आर्यों ने भी अग्नि का आविष्कार किया। इसके बाद उनके जीवन में, रहन-सहन के ढंग में क्रान्ति आ गई, परिवर्तन आ गया। इसके पहले वे शिकार का मांस कच्चा ही खा जाते, किन्तु अब अग्नि में पकाये हुए मांस उन्हें अधिक सुपच और स्वादिष्ट मालूम होने लगे। जाड़े के दिनों में आग उन्हें ठंड से बचाती। गुफा के द्वार पर आग को जलाकर जंगल के खूँखार जानवरों को वे दूर भगाते। सूखी लकड़ी में आग की मशाल जलाकर वे अन्धेरे में रास्ता ढूँढ़ते। इस प्रकार अग्नि उनके जीवन का बहुत बड़ा मित्र, बहुत बड़ा रक्षक बन गया। वे अग्नि को देवता मानकर पूजने लगे।

तभी तो अग्नि की प्रशंसा में ऋग्वेद की ऋचाएँ भरी पड़ी हैं।

आग के आविष्कार के बाद जब भारतीय आर्यों ने पशुपालन का आविष्कार किया, तो इसके साथ ही उन्होंने सामूहिक रूप से काम करने और रहने का नया ढंग भी निकाला। यह ढंग आर्यों के यज्ञ-विधान में पाया जाता है। उन दिनों एक परिवार के लोगों का ही एक समाज होता था। वही उनकी दुनिया होती थी। जिसे हम 'यज्ञ' कहते हैं वेदों में उसका नाम 'क्रतु' और 'सत्र' भी है। 'क्रतु' शब्द का अर्थ होता है 'कर्म', 'सत्र' का अर्थ होता है वह कर्म जो मिलकर किया जाय। 'यज्ञ' शब्द का अर्थ देव-पूजा और दान होता है, और एक साथ मिलाना भी होता है। इस प्रकार अग्नि और यज्ञ के सहारे आर्यों का जीवन उत्तरोत्तर उन्नति करने लगा।

लेकिन आर्यों के यह यज्ञ का जीवन क्या था? उस जीवन के बारे में वेद-साहित्य के विशेषज्ञों ने संकेत किया है। उसका सारांश हम नीचे दे रहे हैं :—

परिवार के लोगों का काम आपस में बँटा होता था, लेकिन उनके अलग-अलग काम से जो पैदावार होती उसे एक साथ मिला दिया जाता। सबके परिश्रम की पैदावार को एक साथ मिलाने का कार्य 'यज्ञ' कहा जाता था। इस यज्ञ के कार्य में इस प्रकार काम बँटा होता था—'होता' का यह काम होता कि वह सवेरे उठकर देवताओं का आवाहन करे; परिवार के लोगों को एक जगह इकट्ठा होने के लिए आवाज लगाये। इसके बाद सबको काम दिया जाता। कुछ लोग सोम-रस के बूटे लाने जाते और उनको पीसकर रस बनाते। कुछ लोग घास काटने जाते। इस घास की चटाइयाँ बनाई जातीं, वल्कल-वस्त्र बनाये जाते,

* 'यज' देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (पाणिनीय धातुपाठ)

पशुओं को बाँधने के लिए रस्से बनाये जाते इत्यादि-इत्यादि। परिवार की लड़कियाँ गायें दूहने में लग जातीं। इसीसे उनका नाम 'दुहिता' (दुहने वाली) पड़ा। कुछ लोग पशुओं को मारने और मांस पकाने के काम में लग जाते। कुछ लोग जंगली अनाज और नीवार चुनकर लाते। उन्हें पत्थर से पीसते और पकाते। सबका एक मुखिया होता जिसे गृह-पति कहते। इस गृह-पति का भी चुनाव होता। वह परिवार के सभी पुरुषों को काम करने का आदेश देता। 'अध्वर्यु' लोग काम करने की शिक्षा देते, और स्वयं भी काम करते। 'ब्रह्मा' इन सबके कार्यों की देख-रेख करता और गलतियों की ओर इशारा भी करता। 'उद्गाता' गीत गा-गा कर काम करने वालों का मन बहलाते, ताकि उन्हें काम में अधिक परिश्रम महसूस न हो।

इस प्रकार सभी चीजें तैयार करके सीधे 'महावेदी' पर लाई जातीं। परिवार के सभी सदस्य महावेदी के चारों ओर बैठ जाते। पहले देवताओं और पितरों के उद्देश्यसे अग्नि में हवि डाली जाती। जो शेष रहता (हुतशेष) उसे सब मिलकर भोजन करते, उसे सबो म बाँट दिया जाता। प्रतिदिन किए जाने वाले 'हवन' (यज्ञ) का यह मतलब था कि जो कुछ सामूहिक परिश्रम से उत्पन्न किया जाय उसका सामूहिक रूप से ही उपभोग भी किया जाय। भोजन से पहले सभी सोमरस को पीते। फिर डटकर भोजन करते। आर्यों के जीवन का यह ढंग तब तक चालू रहा, जब तक कृषि की उन्नति के साथ समाज में वैयक्तिक सम्पति की प्रथा चालू नहीं हो गयी।

विद्वानों का मत है कि शुरू-शुरू में यज्ञ आर्यों के जीवन का, उनके रहन-सहन का मुख्य ढंग था। यज्ञ को वे 'धर्म' कहते थे। 'धर्म' शब्द का अर्थ होता है रहन-सहन का व्यवस्थित तरीका। किन्तु इस धर्म (यज्ञ) में कर्मकांड का नकली आडम्बर न था।

लेकिन जब समाज में वैयक्तिक संपत्ति की प्रथा चालू हुई, समाज की साम्यवादी भावना नष्ट हो गई, तो यज्ञ के इस विधान ने निरी धार्मिकता (कर्मकांड) का रूप ले लिया। बाद में होने वाले यज्ञ वास्तविकता से रहित होकर केवल प्रतीक बन गये। इसमें न आश्चर्य करने की आवश्यकता है, न संदेह करने की। क्योंकि आज भी हम ब्राह्मण-क्षत्रियों के यज्ञोपवीत संस्कारों को देखते हैं। उनमें ब्रह्मचर्य-आश्रम के वर्षों की क्रिया और वर्षों के जीवन का कुछ घण्टों में ही नकल करते देखते हैं। यही बात कर्मकांडी यज्ञ के बारे में भी समझनी चाहिये।

आर्यों का आदि संगठन गण और गोत्र :—

विद्वानों का मत है कि आज से पाँच-छः हजार वर्ष पहले आर्य लोग सिन्धु नदी के आस-पास पहुँच चुके थे। किन्तु अभी तक खेती बाड़ी के काम में लगे नहीं थे। उनका मुख्य काम पशु-पालन था। अच्छी चरागाह देख वे किसी एक जगह टिक जाते। उस चरागाह के समाप्त होने पर फिर किसी नई चरागाह की खोज में अपने पशुओं के साथ आगे बढ़ते। पशुओं में अधिकतर गायें होतीं। गो-पालक होने के कारण ही आर्य अपने सारे गिरोह को 'गोत्र' कहा करते। 'गोत्र' शब्द का अर्थ होता है 'गायों की रक्षा करने वाला कुल' और एक कुल में एक रक्त के अथवा एक परिवार के लोग रहा करते थे। उस कुल का जो सबसे वृद्ध या मुखिया होता उसी के नाम पर उस गोत्र का नाम रखा जाता। आरम्भ में एक गोत्र में एक ही परिवार होता। फिर जन-संख्या की वृद्धि के साथ एक परिवार से अनेक परिवार होने लगे। इन सबों का गोत्र एक ही कहा जाता। एक ही रक्त के अनेक परिवार अब एक साथ रहने लगे थे। उनके परिवारों के इस समूह को 'गण' कहा जाता था। आगे चलकर इन्हीं गणों को मिलाकर

'गण-संघ' 'गण-राज्य' आदि सामाजिक और राजनीतिक संगठन का सूत्रपात हुआ था।

गणों में कार्य का विभाजन :—

पहले बताया जा चुका है कि वैदिक आर्यों के परिवार में यज्ञ के द्वारा सामूहिक रूप से सब कार्य किया जाता था। सामूहिक परिश्रम से जो कुछ तैयार होता उसे सीधे 'महावेदी' पर लाकर सब मिलकर उसे खाते, उसका उपभोग करते। लेकिन काम सबको करना पड़ता था, और काम सबका आपस में बँटा होता था। जिसके जिम्मे जो काम होता परिवार में उसे उसी नाम से पुकारा भी जाता। जैसे—'माता' उसे कहते, जो परिवार के भीतर व्यवस्था करती, तैयार भोजन को सबमें बाँटती और सब कुछ का नाप-तोल करती। क्योंकि 'माङ्'[1] धातु से 'माता' शब्द बना है जिसका अर्थ है नाप-जोख करने वाली अर्थात् 'गृह-व्यवस्थापिका'। पिता शब्द का अर्थ होता है—'पालने वाला' 'रक्षा करने वाला'। गण का पिता शिकार करता और शत्रुओं से अपने गण की रक्षा करता। क्योंकि 'पा'[2] धातु से 'पिता' शब्द बनता है जिसका अर्थ रक्षा करना होता है। गायें दुहने का काम कन्याएँ किया करतीं। इसीलिए कन्या को 'दुहिता' कहा जाता। 'दुह'[3] धातु से दुहिता शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है दुहने वाली। इसी प्रकार होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा आदि पदों के कार्य के बारे में हम पहले ही बता आए हैं।

मातृ-सत्ता और विवाह :—

अधिकांश विद्वानों का मत है कि आरंभ में परिवार में माताओं की प्रधानता होती थी। गण और गोत्र के नाम

---

१ माङ्=माने, मा+तृच्=माता। २ पा=रक्षणे, पा+तृच्=पिता। ३ दुह=प्रपूरणे, दुह+तृच्=दुहिता।

भी उन्हीं पर होते थे। 'महाभारत' तथा हिन्दुओं के अन्य पुराणों में भी ऐसी अनेक कथाएँ हैं जिनसे इस मत की पुष्टि होती है। प्रजापति दक्ष की पुत्रियों के नाम पर उनकी सन्तानों के नाम और गोत्र हुए। इसीलिए दक्ष की पुत्री 'दिति' की सन्तान 'दैत्य' कहलाई। इसी प्रकार अदिति से 'आदित्य', कद्रु से 'काद्रवेय', दनु से 'दानव', विनता से 'वैनतेय' हुए। समाज की इस स्थिति को 'मातृ-सत्ता' कहा गया है।

समाज की इस स्थिति में 'विवाह' की निश्चित प्रथा चालू नहीं हुई थी*। बाद में जनसंख्या की वृद्धि के साथ एक परिवार से अनेक परिवार बनने लगे। तब एक परिवार के स्त्री-पुरुष का दूसरे परिवार के स्त्री-पुरुष से विवाह होने लगा। इसके बाद फिर वैयक्तिक विवाह की प्रथा चालू हुई। इसके बाद धीरे-धीरे समान गोत्र के लोगों में और निकट सम्बन्धियों में विवाह की प्रथा निषिद्ध कर दी गई।

जन और जनपद :—

आर्य अब खेती-बाड़ी भी करने लगे थे। कई परिवारों के समूह को वे 'जन' भी कहा करते थे। ये जन एक ही नस्ल के या एक ही वंश के होते थे। जन के सब लोगों को मिलाकर 'विश्' कहा जाता था। जन के सब लोग जितनी दूर में बसे होते उसे 'जनपद' कहा जाता था। प्रत्येक जन की कई टुकड़ियाँ होती थीं। कई टुकड़ियों को मिलाकर 'ग्राम' कहा जाता था। ग्राम शब्द का अर्थ होता है जत्था या समूह। बाद में खेती योग्य जमीन पाकर यह जत्था जहाँ कहीं भी बस

---

* "अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन् वरानने।
कामाचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि !" (महाभारत, शान्तिपर्व)

जाता उस सारी भूमि को भी ग्राम कहा जाने लगा। अनार्य लोगों से अथवा आर्य लोगों के ही दूसरे जनपदों से युद्ध के लिए एक जन पद के अनेक ग्राम इकट्ठा होते। इन सबको 'संग्राम' कहा जाता। बाद में इसी संग्राम का अर्थ युद्ध हो गया। और बाद में इन्हीं जनों और जनपदों को मिलाकर 'महाजनपद' भी बनने लगे।

जनपदों में युद्ध और यज्ञ :—

जब एक जन के परिवार में जन-संख्या की वृद्धि हो जाती, पशुओं के लिए चारागाह में चारे की कमी पड़ जाती, तो परिवार के कुछ लोग जत्था बनाकर नई जगह की खोज में निकल पड़ते, यह बताया जा चुका है। उनके साथ कई प्रकार के पशु भी होते, घर-गृहस्थी का सारा सामान भी। क्योंकि उनके फिर लौटकर आने की उम्मीद नहीं होती। अतः उन्हें बड़े समारोह के साथ विदा किया जाता। इस सारे जत्थे का एक नेता होता और जत्थे के आगे-आगे घोड़े चला करते। क्योंकि घोड़े अन्य पशुओं से बलवान् होते हैं। इस प्रकार उपयुक्त जगह की तलाश में उन्हें दिनों और महीनों तक चलना पड़ता। क्योंकि स्थायी जगह ऐसी होनी चाहिए थी जहाँ पशुओं के लिए चारे भरपूर हों, पीने के लिए पानी भरपूर हो, शिकार के जानवर हों, खेती के लिए जमीन भी हो। रास्ते में दूसरे जनपद के लोगों से उनकी मुठभेड़ हो जाती। इस मुठभेड़ में एक पक्ष को पूरी तरह नष्ट हो जाना पड़ता। पराजित लोगों में से कुछ बचे हुए लोग पीछे भागकर अपने गोत्र और गण के विभिन्न जनपदों को इसकी सूचना देते। फिर तो यह युद्ध बड़ा व्यापक बन जाता। दोनों पक्ष के गण-गोत्र वाले आमने-सामने मैदान में डट जाते। इस प्रकार के युद्धों की कहानियाँ ऋग्वेद और महाभारत में भरी पड़ी हैं। देव-गणों और असुर-गणों की लड़ाइयाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। दिति, अदिति, दनु, वसु,

कद्रु आदि के वंशों की लड़ाइयाँ भी हिन्दू पुराणों में काफी प्रसिद्ध हैं। फिर बाद में जब समाज में राज-सत्ता कायम हुई तो सुदास और दिवोदास के वंशजों की लड़ाइयों का ऋग्वेद में भी वर्णन पाया जाता है।

हाँ, तो इस प्रकार के छोटे या बड़े युद्धों में जो पक्ष विजयी होता वह विजय की खुशी में यज्ञ रचाता। पहले हम बता आये हैं कि वैदिक आर्यों के आदिम जीवन का जो तरीका था उसे 'यज्ञ' 'सत्र' या 'क्रतु' कहते थे। अब भी वह ढंग कायम था। युद्ध में विजय के उपलक्ष्य में गण के नेता गण-पति को बड़े आदर से महावेदी के बीच बैठाया जाता। उसे घेरकर गणों के दूसरे लोग बैठ जाते। सामूहिक रूप से गण-पति की प्रशंसा की जाती। उसे गण-पति, प्रिय-पति और निधि-पति कहकर पुकारा जाता। विजय की खुशी में सब मिलकर खाते, पीते, गाते, बजाते और नाचते।

इसके बाद उस घोड़े को नहलाया जाता जो सबसे पहले शत्रु के इलाके में दाखिल हुआ था। उस घोड़े को महावेदी की परि-क्रमा कराकर यज्ञ के खूँटे (यूप) से बाँध दिया जाता। फिर इस घोड़े को मारकर हवन के द्वारा अग्नि को प्रसन्न किया जाता। शेष मांस को गण के प्रत्येक व्यक्ति में बाँट दिया जाता। इस यज्ञ को 'अश्व-मेध' यज्ञ कहा जाता। आगे चलकर राजाओं के युग में भी 'अश्व-मेध' यज्ञ होता, किन्तु अब रूप उसका बदल गया था। अब यह यज्ञ राजाओं के 'दिग्विजय' के उपलक्ष्य में रचाया जाता। अब इसका रूप बिलकुल धार्मिक या कर्मकांडी बन गया था।

हाँ, तो अश्व-मेध यज्ञ के बाद आपस में उन सब चीजों को बाँटा जाता जो शत्रु को हराकर उसके घर से लूट कर लाई गई होतीं। गण-पति बाँटने का काम करता। शत्रु की स्त्रियाँ भी बन्दी बनाकर लाई जातीं। इन्हें भी आपस में बाँटा जाता। इन सारी

चीजों को बाँटने की क्रिया को 'दान' कहा जाता।

इसके बाद दो यज्ञ और किए जाते—'पुरुष-मेध' और 'ब्रह्म-मेध'। शत्रुओं के जो पुरुष लोग बन्दी बनाये जाते उन्हें सामूहिक रूप से मार डाला जाता। इसी को 'पुरुष-मेध' कहते। फिर शत्रु के साथ युद्ध में मरे हुए अपने आदमियों का सामूहिक रूप से दाह-संस्कार किया जाता। इस दाह-संस्कार को 'ब्रह्म-मेध' कहा जाता।

दास्यवाद, वैयक्तिक सम्पत्ति और वर्ण-व्यवस्था :—

अब आर्य लोग खेती-बाड़ी के काम से पूरी तरह परिचित हो चुके थे। अब वे पक्के खेतीहर बन चुके थे। अब वे जगह-जगह स्थायी रूप से बसने लगे थे। वे अपने अनार्य शत्रुओं पर, सम्भवतः द्रविड़ों पर पूरी तरह विजय प्राप्त कर चुके थे। मोहन-जो-दड़ो की सभ्यता, जो द्रविड़ सभ्यता कही जाती है, इन आर्यों द्वारा नष्ट की जा चुकी थी। आर्यों में अब युद्ध का बोल-बाला था। पराजित शत्रु के पुरुष बन्दियों की पहले तो वे 'पुरुषमेध-यज्ञ' में हत्या कर देते, किन्तु जब वे कृषि के काम में पूरी तरह लग गये तो इसमें अधिक-से-अधिक आदमियों के परिश्रम की आवश्यकता उन्हें महसूस हुई। आवश्यकता आविष्कार की माँ होती है। इनके दिमाग में भी यह बात सूझ गई की बन्दियों को मार डालने के बजाय यदि दास बना लिया जाय तो ठीक। इस काम में उन्हें लाभ ही लाभ दिखाई दिया। अब तो शत्रु के जन और धन दोनों को लूटने की उनकी हवस बढ़ चली। शत्रु के लूटे हुए माल आपस में बाँटने की प्रथा पहले से थी ही। अब उनके मन में लोभ-लालच का संचार और अधिक हो चला। पहले के सामूहिक लोभ-लालच का स्थान अब वैयक्तिक लोभ-लालच ने लेना शुरू किया। उनमें अब 'मुझे अधिक चाहिये, मुझे अधिक चाहिये, की भावना

प्रबल हो उठी। इस प्रकार आर्यों के साम्यवादी समाज में दास्य-प्रथा के प्रवेश के बाद ही वैयक्तिक भावना का प्रवेश भी हुआ और वैयक्तिक भावना से वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना का भी। और उससे फिर वैयक्तिक सम्पत्ति की प्रथा चालू हुई। इस प्रकार आज से पाँच हजार वर्ष पहले तक आर्यों में वैयक्तिक सम्पत्ति की प्रथा पूरी तरह जड़ जमा चुकी थी।

वैयक्तिक सम्पत्ति की प्रथा कायम होते ही आर्यों के सामाजिक जीवन में माताओं का स्थान गौण होने लगा। क्योंकि समाज में व्यक्ति की प्रधानता होते ही शारीरिक और बौद्धिक दृष्टि से भी आगे बढ़ा हुआ पुरुष-वर्ग ही समाज का कर्त्ता-धर्ता माना जाने लगा। विवाह की दृढ़ प्रथा चालू हो चुकी थी। अब उस वंश, गण या गोत्र के नाम माताओं के नाम पर न होकर पुरुषों के नाम पर होने लगे थे। इस प्रकार समाज में मातृ-सत्ता समाप्त होकर पुरुष-सत्ता या पितृ-सत्ता कायम हो गई।

वैयक्तिक-जीवन-बद्ध समाज में वर्ग भी स्वाभाव से ही उत्पन्न होते हैं। जब सारा समाज एक परिवार के रूप में था, सामूहिक रूप से पैदा की हुई वस्तु पर सामूहिक रूप से सब का अधिकार था, तो अलग-अलग काम करते हुए भी वर्गभेद वहाँ न था। लेकिन अब, जब अपनी-अपनी खिचड़ी अलग पकने लगी, तो जो व्यक्ति जैसा कार्य करता उसी के आधार पर उसका वर्ग भी बनना शुरू हुआ। इसी वर्ग को आर्यों के समाज में 'वर्ण' कहा गया। व्यक्तिगत कार्य के आधार पर ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों की प्रथा चालू हुई। व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रथा में भी यज्ञ का कार्य चालू रहा। लेकिन यज्ञ अब जीवन का असली ढंग न रहकर एक नकली चीज बन गया था। धार्मिकता के ताने-बाने में उसका असली रूप छिप गया था। इस यज्ञ को चालू रखने में यह भावना भी काम कर रही थी कि, चूँकि हमारे पूर्वज इस

यज्ञ के द्वारा सुख-समृद्धि से भरपूर होते थे इसलिए हम भी वैसा (नकली रूप में ही सही) करके सुखी और समृद्ध होंगे। बाद में जब समाज में कर्म-काण्ड का जोर बढ़ गया, तो मीमांसकों (कर्मकाण्डियों) ने इस सूत्र की रचना कर दी—"स्वर्गकामो यजेत" अर्थात् स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ करना चाहिए। इस प्रकार अब यज्ञ का उद्देश्य इहलौकिक न रहकर पूरा पारलौकिक बन गया।

यज्ञ की प्राचीन प्रक्रिया के पेट में से ही चारों वर्णों की भावना भी पैदा हुई। समाज में व्यक्तिवाद की प्रथा चालू होने पर भी लोगों का काम वही रहा जिसे वे सामूहिक जीवन में करने के आदी बन चुके थे। इनमें जिन्हें वेद अधिक याद था, जो पहले के यज्ञ में होता, उद्गाता, अध्वर्यु, और ब्रह्मा आदि का कार्य करते वे 'ब्राह्मण' कहलाये। जो शूर-वीर और लड़ाकू थे, जो शत्रुओं के हमले से अपने जनपद (गण) की रक्षा करते, उन्हें 'क्षत्रिय' कहा गया। जो पशु-पालन और कृषि में अधिक दक्ष थे, जो विश्—जनपद की सारी प्रजा का भरण-पोषण करते उन्हें 'वैश्य' कहा गया। और 'शूद्र' उन्हें कहा गया जो अनार्य थे, बाहर से आये थे, पराजित होकर दास बने थे। फिर तो उनकी सन्तानों ने भी यह काम अपना लिया। धीरे-धीरे यह पुश्तैनी पेशा बन गया। और आगे चलकर अन्य अनेक बातों की तरह हिन्दू आर्यों ने इस वर्ण-व्यवस्था को भी ईश्वर का बनाया हुआ ही मान लिया।

महाभारत-युद्ध के समय आर्यों की सामाजिक अवस्था:—

महाभारत-युद्ध का समय कुछ लोग आज से लगभग ५ हजार वर्ष पूर्व मानते हैं। लेकिन विद्वानों का बहुमत उस काल को तीन-साढ़े तीन हजार वर्ष से अधिक नहीं मानता। इस समय तक आर्यों की सभ्यता काफी विकसित हो चुकी थी। लिपि का आविष्कार हो चुका था। वेद का विभाग भी हो चुका था—ऋग्वेद, यजुर्वेद,

सामवेद और अथर्ववेद। इन वेदों के विभाग करने और लिखने वाले का नाम था द्वैपायन मुनि जिसे वेद-व्यास भी कहा जाता है। सुन्दर, मजबूत और विशाल भवनों के बनाने की कला का भी आविष्कार हो चुका था। बड़े-बड़े नगर भी बस चुके थे।

यह हम बता ही आए हैं कि जब समाज में दासों के प्रवेश से धन-धान्य में काफी वृद्धि हुई तो लोगों में लोभ-लालच का संचार हुआ, वैयक्तिक सम्पत्ति की प्रथा चालू हुई। इस अवस्था में समाज की व्यवस्था के लिये एक नेता चुना जाता था जिसका आदेश सभी मानते थे। इस नेता को 'राजा' कहते थे। राजा के चुनने-चुनवाने में ब्राह्मणों का विशेष हाथ रहता था। समाज पर सबसे अधिक ब्राह्मणों का ही प्रभाव था। इधर युद्ध-कला में निपुण होने के कारण क्षत्रियों का जोर भी बढ़ रहा था। इनमें से अधिक चतुर और चालाक लोग जब-तब ब्राह्मणों के विरुद्ध विद्रोह भी करते। राजा वेणु और पृथु की पौराणिक कथा में इस बात का स्पष्ट आभास हमें मिलता है। समाज पर महंती कायम रखने के लिए कई बार ब्राह्मणों और क्षत्रियों में संघर्ष भी चला। परशुराम की क्षत्रिय-विरोधी भावना में हम इसी बात का संकेत पाते हैं। लेकिन बाद में चलकर दोनों में समझौता हो गया। क्षत्रियों ने ब्राह्मणों को गुरु का पद दे दिया, और ब्राह्मणों ने क्षत्रियों का समाज पर आर्थिक और राजनैतिक अधिकार स्वीकार कर लिया।

महाभारत-काल में आर्य लोग सारे उत्तर भारत में छा गये थे। पश्चिम में अरब-सागर से लेकर पूर्व में बंग-सागर तक, तथा उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में विंध्य-पर्वत तक का प्रदेश 'आर्यावर्त' (आर्यों का देश) बन चुका था। आर्यों के कई गण उस समय तक विंध्य पर्वत को पारकर विदर्भ तक पहुँच चुके थे। इस विस्तृत प्रदेश में शासन और समाज के कई रूप भी बन चुके थे। कुछ भागों में गणों के राज्य थे। गण-राज्यों में राजा का बाका-

यदा चुनाव होता। दासों को छोड़कर सभी नागरिकों को मतदान का अधिकार था। महाभारत के भीष्म-पर्व में ऐसे २०० राज्यों का उल्लेख है। बाद में कई गणों का एक-एक संघ बनने लगा। पश्चिम में कुरुक्षेत्र से लेकर पूर्व में मगध तक गणों ने राज्य और साम्राज्य का रूप ग्रहण कर लिया। ऐसे अनेक राज्य कायम हो चुके थे जिनपर निरंकुश राजाओं का अधिकार था। इनमें मगध का राजा जरासंध, मथुरा का राजा कंस और हस्तिनापुर के कौरव-वंशी राजा मुख्य थे। ये सभी राजे अपने आस-पास के गण-राज्यों को मिलाकर अपना-अपना साम्राज्य कायम करने के प्रयत्न में लगे हुए थे।

इस काल में पंजाब में ऐसे अनेक गण-राज्य मौजूद थे जिनमें राजाशाही कायम नहीं हुई थी। उनमें उस समय भी प्रजातन्त्र की ही प्रथा चालू थी। इतिहास-वेत्ताओं का कथन है कि पंजाब के ये प्रजातांत्रिक गण-राज्य महाभारत-युद्ध के बहुत दिन बाद तक (भारत में सिकन्दर के आने तक) कायम थे। कृष्ण ने कंस को मारकर मथुरा में भोज, अन्धक और वृष्णि 'गणों को मिलाकर एक प्रजातांत्रिक 'यादव-गण-राज्य' कायम किया था। इस गण-राज्य का अध्यक्ष राजा उग्रसेन था और कृष्ण उसका नेता या मन्त्री था। इस गण-राज्य पर मगध के राजा जरासंध ने अनेक आक्रमण किए। अन्त में हार मानकर यादव-गणों को वहाँ से गुजरात की ओर चल देना पड़ा। वहाँ द्वारका नगर बसाकर इन यादवोंने काठियावाड़ का एक संघ-राज्य कायम किया।

इस समय ये सारे गण-राज्य, चाहे वे प्रजातांत्रिक थे अथवा राजतांत्रिक, दासों तथा साधारण किसानों के शोषण पर फल-फूल रहे थे। समाज पर क्षत्रियों का अधिकार था। इनमें भी उन क्षत्रियों का जो बलवान थे, युद्ध-विद्या में निपुण थे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' 'वीरभोग्या वसुन्धरा' यही उस समाज का मुख्य आदर्श बन गया था। और इसी आदर्श के कारण महाभारत का विनाशकारी

युद्ध भी रचा गया था। क्योंकि कौरवों के राजा दुर्योधन ने कृष्ण के द्वारा पाण्डवों को चुनौती दे दी थी–'सूच्यग्रं न दास्यामि विना युद्धेन केशव !' —बिना युद्ध के सुई के नोक बराबर भूमि भी मैं नहीं दूँगा। यह तो आप जानते ही होंगे कि कौरव और पाण्डव एक ही कुल के थे। उनकी नसों में एक ही खून बह रहा था। सारे साम्राज्य पर पाण्डवों का पुश्तैनी हक भी था। उस हक को हासिल करने के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में सारे आर्यावर्त के योद्धाओं की बलि देकर इस आदर्श को चरितार्थ कर दिखाया गया कि—'जिसकी लाठी उसकी भैंस'। लेकिन आर्यों के आदिम समाज में अपने कुल के लोगों का वध करना घोर अपराध या पाप माना जाता था। लेकिन अब जमाना बदल चुका था।

महाभारत-काल में समाज में स्त्रियों की स्थिति :—

समाज में इस समय स्त्रियों की स्थिति निकृष्ट हो चुकी थी। राजाओं और धनी लोगों के एक साथ अनेक स्त्रियाँ होतीं, रखेलें होतीं। स्वयं यादव-गण के नेता तथा अपने समय के सबसे प्रभावशाली आर्य-पुरुष श्रीकृष्ण के सोलह हजार स्त्रियाँ होने की बात महाभारत में भी पाई जाती है। और जब गृह-युद्ध के कारण यादव-गणों का विनाश हो गया, तो यादवों की स्त्रियों को लेकर महाभारत के महान योद्धा अर्जुन इन्द्रप्रस्थ को जा रहे थे, और जब मार्ग में अनार्य लोग इन स्त्रियों को लूटने लगे तो अनेक स्त्रियाँ अपनी इच्छा से ही उन अनार्यों के साथ भाग चलीं। स्त्रियों की निकृष्ट स्थिति का स्पष्ट आभास तो हमें उस घटना से मिल जाता है जब कि कौरवों की भरी सभा में द्रौपदी को नंगी करने का प्रयत्न किया गया। उसी घटना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियाँ पुरुष की चल-सम्पत्ति बन गई थीं। स्त्रियाँ पति की चिता पर जल भी मरती थीं।

महाभारत-युद्ध के बाद आर्य-राज्यों की स्थिति :—

महाभारत-युद्ध में आर्यावर्त के लगभग सभी वीरों की बलि दी जा चुकी थी। इस युद्ध में पाण्डव लोग विजयी बनकर भी प्रसन्न नहीं थे। उनके कुल का सत्यानाश हो चुका था। जात-बिरादर वालों का विनाश हो चुका था। युद्ध के खर्च में सारी धन-दौलत नष्ट हो चुकी थी। विजय की खुशी में 'अश्व-मेध' यज्ञ रचाने का रिवाज आर्यों में शुरू से ही चला आ रहा था। आदि काल में यह यज्ञ भी साम्यवादी जीवन का एक अङ्ग था यह बता आये हैं। लेकिन अब वह केवल एक धार्मिक संस्कारमात्र रह गया था। जब विजय के उपलक्ष्य में यज्ञ रचाने के लिए व्यास ने युधिष्ठिर से प्रस्ताव किया तो उसने जवाब दिया कि 'मेरे पास यज्ञ में दान देने के लिए धन बिल्कुल नहीं है।' तो इससे स्पष्ट है कि युद्ध के कारण जन और धन दोनों की ही बड़ी कमी पड़ गई थी।

उधर कृष्ण का यादव-गण-संघ भी भीतर-ही-भीतर निर्बल बनता जा रहा था। आपस की फूट बढ़ती जा रही थी। विला-सिता का जोर बढ़ता जा रहा था। मद्य, मांस और स्त्री यही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया था। और इसी का परिणाम था यादवों का भयानक गृह-युद्ध। ५ लाख यादव आपस में ही कट मरे। कृष्ण जैसा चतुर नेता और कूटनीतिज्ञ भी यादवों को गृह-युद्ध से नहीं बचा सका।

आर्यों की इस कमजोरी का अनार्यों ने लाभ उठाना शुरू किया। जगह-जगह विद्रोह शुरू हो गये। स्वयं कृष्ण एक अनार्य के हाथ मारे गये। अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को जाती हुई हजारों यादव-स्त्रियों को राह में अनार्यों ने लूट लिया। और यह सब कुछ हो रहा था महाभारत के सुप्रसिद्ध योद्धा अर्जुन के

आँखों के ठीक सामने !

यादवों के विनाश के बाद द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डव हिमालय की ओर चले गये। अर्जुन के पौत्र परीक्षित को वे गद्दी पर बैठाते गये। परीक्षित को भी अनार्यों से लड़ना पड़ा था। अन्त में नाग जाति के तक्षक नामक एक अनार्य ने परीक्षित की हत्या कर दी। अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए परीक्षित-पुत्र जनमेजय ने नाग-जाति के समस्त अनार्यों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। महाभारत में जनमेजय के नाग-यज्ञ की कथा से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

इसके बाद लगभग १ हजार वर्ष का समय भारतीय इतिहास में अन्धकार-युग कहा जाता है। क्योंकि इस बीच की घटनाओं पर प्रकाश डालने वाला कोई प्रामाणिक अथवा अर्ध-प्रामाणिक वर्णन अभी प्राप्त नहीं हो सका है।

महाजनपदों का युग :—

यह पहले बताया जा चुका है कि महाभारत-काल से पहले ही आर्यों में जन-पदों का उदय हो चुका था। कहीं इन्हें गण-संघ कहा जाता और कहीं जनपद। जो जन (गण) जिस प्रदेश में बस गये, वह प्रदेश उनका जनपद कहलाने लगा। कुरु-जन जहाँ बस गये वह 'कुरु-जनपद' तथा मद्र-जन जहाँ बस गये वह 'मद्र-जनपद' कहा जाने लगा। महाभारत-काल में कुरुक्षेत्र और मगध के बीच के जनपदों को जीतकर मगध, मथुरा और हस्तिनापुर के साम्राज्य कायम हुए थे। जो जनपद या गणराज्य प्रजातन्त्र थे उनका अस्तित्व भी खतरे में था। लेकिन महाभारत-युद्ध का परिणाम यह हुआ कि लड़ाकू और वीर क्षत्रियों की कमी पड़ गई। क्षत्रियों का कमजोर पड़ना प्रजातन्त्र के लिए अच्छा रहा। अब काफी दिनों के लिए आर्यावर्त से साम्राज्यवाद का खतरा दूर हो गया।

क्षत्रियों के कमजोर पड़ने से जिस एक अन्य वर्ग को उठने का मौका मिला, वह था—बनिया वर्ग। जगह-जगह प्रजातन्त्र-जनपदों में जहाँ क्षत्रियों का सम्मान था वहाँ अब बनियों का सम्मान भी होने लगा। ब्राह्मणों का सम्मान तो था ही।

विद्वानों का अनुमान है कि ई० पू० आठवीं-सातवीं शताब्दी में पुनः इन जनपदों को एक में मिलाने का प्रयत्न शुरू हुआ। इस प्रकार 'महाजनपदों' का निर्माण होने लगा। ऐसे सोलह महाजनपदों का उल्लेख आता है। इन सोलह की भी आठ जोड़ियाँ थीं। उनके नाम हैं—(१) अङ्ग और मगध, (२) काशी और कोशल, (३) वृजि और मल्ल, (४) चेदि और वत्स, (५) कुरु और पांचाल, (६) मत्स्य और शूरसेन, (७) अश्मक और अवन्ति, तथा (८) गांधार और कंबोज।

महाजनपदों में सामन्तों का प्रभुत्व :—

ये सभी महाजनपद यद्यपि प्रजातांत्रिक थे, चुनाव के द्वारा ही सरकारें बनाई जाती थीं, किन्तु इनमें प्रधानता धनी लोगों की ही रहती। इनके सभी सदस्य राजा या राजन्य कहे जाते थे। महाजनपदों में परस्पर युद्ध भी हुआ करता था। फलस्वरूप लड़ाकू सरदारों का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस प्रकार समाज में सामन्तवाद का बोल-बाला हो चुका था। वृजि-(वज्जी) संघ के शासन-परिषद् में ७७०७ सामन्त या राजे थे। कृषकों और दासों को मत देने का कोई अधिकार न था।

महाजनपदों में सांस्कृतिक प्रगति :—

विद्वानों का अनुमान है कि वेदों के वे हिस्से जिन्हें ब्राह्मण और आरण्यक कहते हैं, इसी काल में रचे गये। उपनिषदों की रचना भी इसी काल में हुई। * सूत्रों (कल्प-शास्त्रों) की रचना

* श्रौत-सूत्र, धर्म-सूत्र, गृह्य-सूत्र, शल्व-सूत्र।

का काल भी यही माना जाता है। इन्हीं सूत्रों के आधार पर बाद में स्मृतियों (धर्म-शास्त्रों) की रचना की गई। इन सूत्रों में वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के विधि-निषेधों का वर्णन है। इसी काल में पाणिनि जैसे प्रतिभाशाली विद्वान ने व्याकरण के अष्टाध्यायी सूत्रों की रचना की। * छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, व्याकरण और कल्प इन छः वेदांगों की रचना भी इसी काल में हुई। इस युग में गांधार देश की राजधानी तक्षशिला विद्या का सबसे बड़ा केन्द्र था। अध्ययन के लिए यहाँ आर्यावर्त से बाहर के लोग भी आया करते थे।

मगध का प्रथम साम्राज्य :—

ई० पू० छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजा अजातशत्रु के समय में मगध देश का प्रभुत्व बढ़ चला। अंग और वृजि-संघ अब तक पूरी तरह मगध-साम्राज्य में शामिल हो चुके थे। कोशल-संघ को भी मगध के सामने झुकना पड़ चुका था। बाद में मगध-साम्राज्य में मिथिला के शामिल हो जाने के बाद राजगृह से राजधानी उठाकर नई जगह ले आई गई। अजातशत्रु के पोते राजा उदयी ने गङ्गा और सोन के संगम पर नई राजधानी बसाई जिसका नाम 'पाटलिपुत्र' रखा गया। आगे चलकर पाटलिपुत्र का यह साम्राज्य सारे संसार में प्रसिद्ध और समृद्ध बन गया।

अनुमान है कि इसी काल में सांख्य और वैशेषिक दर्शन की

---

* छन्द = जिसमें पद्य-रचना के नियमों का विधान है।
ज्योतिष = नक्षत्र-विद्या और गणित-विद्या।
निरुक्त = जिसमें वैदिक शब्दों के अर्थ समझने और समझाने के तरीके बताये गये हैं।
शिक्षा = जिसमें वैदिक शब्दों के उच्चारण के तरीके बताये गये हैं।

रचना क्रमशः कपिल और कणाद ने की। महाभारत की रचना भी इसी काल में शुरू हुई।

बुद्ध और महावीर :—

ई० पू० छठी शताब्दी के अन्त में भारतीय समाज में दो महापुरुष पैदा हुए जो आगे चलकर बुद्ध और महावीर के नाम से प्रख्यात हुए। श्रावस्ती से ६० मील दूर शाक्य जाति के गणों का एक राज्य था। इसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। राजा का नाम शुद्धोदन था। शुद्धोदन की पत्नी मायादेवी के पेट से एक बालक पैदा हुआ जिसका नाम सिद्धार्थ रखा गया। १८ साल की उम्र में सिद्धार्थ की शादी यशोधरा नाम की राजकुमारी से की गई। यशो-धरा के पेट से राहुल नाम का पुत्र हुआ। बाद में सिद्धार्थ संसार से विरक्त हो चला। ज्ञान की खोज में वर्षों तक भटकता रहा। अन्त में उसे ज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञान प्राप्त होने पर उसका नाम बुद्ध पड़ गया। 'बुद्ध' का अर्थ होता है जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

बुद्ध के समय में समाज पर वैदिक कर्म-काण्ड का जोर हो चला था। यज्ञ का रूप पूरा धार्मिक बन चुका था। और यज्ञों में बड़ी मात्रा में पशुओं का वध किया जाता। इसी यज्ञवाद और हिंसावाद के विरुद्ध बुद्ध ने प्रचार शुरू किया और वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध भी। बुद्ध के उपदेशों का सार है सभी प्राणियों पर दया और अहिंसा का व्यवहार। बुद्ध को अपने प्रचार में बड़ी सफलता मिली। उनके अनुयायियों की संख्या दिनों दिन बढ़ती गई। बुद्ध ने अपने उपदेशों के व्यापक प्रचार के लिए भिक्षुओं का एक संघ भी कायम किया।

महावीर वृजि-संघ में वैशाली के पास 'कुण्ड' ग्राम में राजा सिद्धार्थ के घर पैदा हुए। इनका नाम वर्धमान था। यशोदा नामक

स्त्री से इनके एक लड़की पैदा हुई। ३० साल की उम्र में विरक्त होकर घर से निकल पड़े। वर्षों भ्रमण के बाद इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञान प्राप्त करने के बाद वर्धमान को 'महावीर' 'अर्हत' 'जिन' आदि नामों से पुकारा जाने लगा।

महावीर के उपदेशों का सार भी अहिंसा और दया है। महावीर के अनुयायियों को 'जैन' कहा जाता है। महावीर ने भी ब्राह्मणों के यज्ञवाद और हिंसावाद के विरोध में प्रचार किया।

कुछ विद्वानों का मत है कि बुद्ध और महावीर जहाँ अहिंसा और दया का खुला प्रचार कर रहे थे वहाँ उनमें छिपे तौर पर अपनी जातीय भावना भी काम कर रही थी। ये दोनों ही क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे। अर्थ और अधिकार के क्षेत्र में समाज पर जहाँ क्षत्रियों का पूरा अधिकार था, वहाँ धार्मिक क्षेत्र में वे ब्राह्मणों से नीचे पड़ते थे। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार भी ब्राह्मण उनसे ऊपर थे। बुद्ध और महावीर के धर्म-प्रचार में समाज पर से ब्राह्मणों के धार्मिक प्रभुत्व को नष्ट करने का ख्याल भी छिपे तौर पर काम कर रहा था। क्योंकि बौद्ध और जैन ग्रन्थों में ब्राह्मणों को जातिरूप से नीचा दिखाने की खूब कोशिश की गई है। बल्कि जाति रूप से क्षत्रियों को ऊपर उठाने का प्रयत्न भी किया गया है। बौद्ध और जैन ग्रन्थों के सूक्ष्म अध्ययन से इस मत की पुष्टि हो जाती है।

बाद में अनेक प्रतिभाशाली ब्राह्मणों ने बौद्ध और जैन धर्म की दीक्षा ली। अनेक ग्रन्थों की रचना कर सांस्कृतिक दृष्टि से इन धर्मों को काफी समुन्नत और सम्मानित बनाया। बुद्ध के मूल वचन उस समय की मागधी में जो आजकल 'पाली' कही जाती है, लिखे गये। और महावीर के वचन अर्ध-मागधी भाषा में। बौद्ध और जैन धर्म ने अपने प्रचार लिए उस समय के पढ़े-लिखों की भाषा 'संस्कृत' के बजाय जनता की भाषा को अपनाना ही

ठीक समझा। बाद में तो बौद्ध और जैन विद्वानों ने संस्कृत में भी अनेक विशाल और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे।

पाटलिपुत्र का साम्राज्य :—

ई० पू० छठी शताब्दी में राजा अजातशत्रु ने मगध-साम्राज्य की नींव डाली। और उसके पोते उदयी ने मगध-साम्राज्य की राजधानी के रूप में पाटलिपुत्र (पटना) नगर को बसाया। फिर ई० पू० चौथी शताब्दी में मगध पर महापद्म नन्द का अधिकार होगया। महापद्म नन्द ने छोटे-छोटे अनेक जनपदों के राज्यों को मिलाकर उन सब को अपने साम्राज्य में मिला लिया। फिर मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त ने (३२५—२९२ ई० पू०) अपने ब्राह्मण मंत्री चाणक्य की सहायता से नन्दवंशी सम्राट् को मारकर मगध साम्राज्य पर कब्जा जमा लिया। पाटलिपुत्र ही राजधानी रहा। फिर यवन राजा अलक्सान्दर (सिकन्दर) के सेनापति सेलेउकस को हराकर चन्द्रगुप्त ने यवनों से चार और नये प्रान्त प्राप्त किए, जिनसे पाटलिपुत्र के साम्राज्य की सीमा ईरान के पास हिन्दूकुश पर्वत तक पहुँच गई। हिन्दूकुश के उत्तर में कंबोज देश अर्थात् आधुनिक बदख्शाँ और पामीर के इलाके भी इस साम्राज्य के अधीन हो गये।

चाणक्य और उसका अर्थ-शास्त्र :—

चन्द्रगुप्त का प्रधान-मन्त्री ब्राह्मण चाणक्य बड़े ऊँचे दर्जे का कूटनीतिज्ञ और शासन-चतुर था। उसने भारत-वर्ष के सभी गण-राज्यों को नष्ट कर पाटलिपुत्र के मौर्य-साम्राज्य की नींव पक्की कर दी। यह उसकी बुद्धि की ही करामात थी कि इस साम्राज्य की सीमा उस समय हिन्दूकुश को पार कर पामीर तक पहुँच गई। लेकिन चाणक्य का नाम अमर है उस अर्थ-शास्त्र के

लिए जिसे उसने शासन-व्यवस्था के लिए लिखा। उसे 'कौटल्य-अर्थशास्त्र' कहते हैं।

कौटल्य-अर्थशास्त्र में पन्द्रह अध्याय हैं जिनमें प्रत्येक को अधिकरण कहते हैं। प्रत्येक अधिकरण में राज-काज सम्बन्धी एक-एक विपय का विवेचन किया गया है :—

(१) प्रथम अधिकरण का नाम है 'विनयाधिकरण' जिसमें राजा के 'विनय' अर्थात् राज-काज में राजा के सामान्य व्यवहार के वारे में वताया गया है।

(२) दूसरा अधिकरण 'अध्यक्ष-प्रचार' है जिसमें शासन के भिन्न-भिन्न विभागों के अध्यक्ष के कर्तव्य के वारे में विचार किया गया है।

(३) 'धर्मस्थीय' अधिकरण में धर्म-शास्त्र के अनुसार मामले-मुकदमे के फैसले के वारे में वताया गया है।

(४) 'कंटक-शोधन' अधिकरण में समाज को हानि पहुँचाने वाले लोगों को दंडित करने के तरीके वताये गये हैं।

(५) 'योग-वृत्त' अधिकरण में राजा के प्रति राज-कर्मचारियों के कर्तव्य तथा विश्वासघाती कर्मचारियों से निबटने के उपाय वताये गये हैं।

(६) 'मण्डल-योनि' अधिकरण में शत्रु-देशों को वश में करने के उपाय वताये गये हैं।

(७) 'षाड्-गुण्य' अधिकरण में शत्रुओं से निबटने के मुख्य मुख्य ६ तरीकों पर प्रकाश डाला गया है।

(८) 'व्यसनाधिकारिक' अधिकरण में राज्य की विपत्तियों के मूल कारणों तथा उन्हें दूर करने के उपायों का वर्णन है।

(९) 'अभियास्यत्कर्म' अधिकरण में विजय के निमित्त प्रस्थान करने से पूर्व विचारणीय विपयों पर प्रकाश डाला गया है।

(१०) 'सांग्रामिक' अधिकरण में विजय के निमित्त युद्ध-

सम्बन्धी विषयों का वर्णन किया गया है।

(११) 'संघवृत्त' अधिकरण में 'संघ-राज्यों' (गण-राज्यों) में फूट डालने के उपाय बताये गये हैं।

(१२) 'आबलीयस' अधिकरण में प्रबल राज्यों के साथ दुर्बल राज्यों के निबटने के तरीके बताये गये हैं।

(१३) 'दुर्गलम्भोपाय' अधिकरण में शत्रु के किले पर छल-कपट से अधिकार जमाने के तरीकों पर प्रकाश डाला गया है।

(१४) 'औपनिषद' अधिकरण में शत्रु को विजय करने के रहस्य बताये गये हैं, अर्थात् उसमें गुप्त रूप से शत्रु के प्रति विषैली चीजों तथा जादू-टोने के प्रयोग का विधान है।

(१५) 'तन्त्र-युक्ति' अधिकरण में अर्थ-शास्त्र का अर्थ और ३२ युक्तियों के नाम तथा अर्थ बताये गये हैं। संक्षेप में, पृथ्वी पर अधिकार करने तथा अधिकार को सुदृढ़ बनाने के उपायों का अर्थ-शास्त्र में वर्णन किया गया है।

पाटलिपुत्र के दूसरे सम्राट् :—

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बिन्दुसार गद्दी पर बैठा। चाणक्य जिस प्रकार चन्द्रगुप्त का प्रधान मन्त्री रहा इसी प्रकार बिन्दुसार का भी। बौद्ध साहित्य के अनुसार उसने १६ राजधानियाँ जीतकर पूर्व से पश्चिम समुद्र तक की सारी भूमि को बिन्दुसार के अधीन कर दिया। इस समय पाटलिपुत्र-साम्राज्य की सीमा दक्षिण में आन्ध्र और कर्नाटक तक पहुँच गई थी।

बिन्दुसार के बाद पाटलिपुत्र की गद्दी पर अशोक बैठा। आरम्भ में वह क्रूर स्वभाव का था। लेकिन जब उसने कलिंग देश पर आक्रमण कर उस पर अधिकार जमाया तो उसमें हुई खून-खराबी से अशोक में एकाएक परिवर्तन आ गया। उसने बौद्ध धर्म दीक्षा ले ली। आजीवन युद्ध न करने का संकल्प किया।

उसने अहिंसा के द्वारा संसार को विजय करने का विचार किया। अपने सारे साम्राज्य में, तथा साम्राज्य से बाहर दूर देशों में अहिंसा के प्रचार के लिए बौद्ध-भिक्षुओं को भेजा। दक्षिण में समुद्र पार सिंहल (लंका) में उसने अपने बेटे महेन्द्र और बहन संघमित्रा को बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए भेजा। उत्तर में गांधार, कश्मीर और कम्बोज आदि देशों में; पश्चिम में फिलस्तीन तक के देशों में; तथा पूर्व में हिन्द-चीन तक उसने प्रचारक भेजे। उसने अपने साम्राज्य से बाहर भी दवाखाने खुलवाये, सड़कों पर पेड़ लगवाये। जगह-जगह चट्टानों पर, पत्थर के ऊँचे खंभों पर उसने क्षमा, सहिष्णुता और अहिंसा के उपदेश लिखवाये।

इस युग में भवन-निर्माण की कला में खूब विकास हुआ। अशोक के खम्भों की कला की कारीगरी आज भी लोगों को आश्चर्य में डाल देती है। इस युग में बौद्ध धर्म और साहित्य की खूब उन्नति हुई। कुछ समय के लिए लड़ाई-झगड़े बन्द हो गये। भारतीय संस्कृति दूसरे देशों में भी अपनी श्रेष्ठता साबित करने लगी।

मौर्यों के बाद पाटलिपुत्र के साम्राज्य पर शुंगवंशी ब्राह्मण पुष्यमित्र ने अधिकार कर लिया। इसने अपने साम्राज्य में ब्राह्मण-धर्म अर्थात् वैदिक कर्मकाण्ड को खूब प्रोत्साहित किया। इसने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। पाणिनीय व्याकरण के महाभाष्यकार तथा योग-दर्शन के प्रणेता पतंजलि इसी युग में पैदा हुए थे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सुप्रसिद्ध वाल्मीकीय रामायण की रचना भी इसी काल में हुई। और इसी समय से पुराणों की रचना की ओर भी विद्वानों का ध्यान जाने लगा।

शुंगों के युग में ही न्याय, वेदान्त आदि दर्शनों की रचना हुई। मीमांसा-सूत्रों की रचना इससे बहुत पहले ही हो चुकी थी। चरक और सुश्रुत का, जो आयुर्वेद के सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ माने

जाते हैं, रचना-काल भी यही माना जाता है। मनु-स्मृति की रचना भी इसी काल में हुई।

शुंगों के बहुत दिन बाद ईसा की चौथी शताब्दी में पाटलिपुत्र पर गुप्तवंशी समुद्रगुप्त ने अधिकार कर लिया। समुद्रगुप्त भारतीय इतिहास का बड़ा प्रतापी सम्राट् गिना जाता है। इसने सारे भारतवर्ष की दिग्विजय करके अश्वमेध यज्ञ किया था। दो सौ वर्ष से अधिक समय तक गुप्त-साम्राज्य कायम रहा। इस समय ब्राह्मण-धर्म को बड़ा प्रोत्साहन मिला। महाकवि कालिदास गुप्तों के समय में ही हुए। इस युग में कला-कौशल का खूब विकास हुआ। इस युग को भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग कहा जाता है। प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट्ट भी गुप्त-काल में ही पैदा हुए। 'पंच-तन्त्र' की रचना भी इसी युग में की गई। राजगृह के पास नालंदा विश्व-विद्यालय की नींव भी गुप्त-काल में ही डाली गई।

दूसरे भारतीय साम्राज्य :—

जब उत्तर भारत में शुंगवंशी ब्राह्मण पुष्यमित्र ने अपना साम्राज्य कायम किया, उसी समय के आस-पास दक्षिण (महाराष्ट्र) में सिमुक नामक ब्राह्मण ने अपना राज्य स्थापित किया। सिमुक के वंश का नाम 'सातवाहन' था। बाद में सातवाहनों का साम्राज्य आंध्र और फिर उत्तर भारत में मगध तक फैल गया। इसी युग में शकों का आक्रमण शुरू हुआ। सातवाहन राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि ने उज्जैन जीता और शकों का ई० पू० ५६ में संहार किया। इस विजय के उपलक्ष में उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की और विक्रम-सम्वत् चलाया।

शुंग और सातवाहन काल में बौद्ध धर्म के मुकाबले फिर

से वैदिक धर्म को उज्जीवित करने का प्रयत्न किया गया। वैदिक धर्म तो असली रूप में उज्जीवित न हो सका, किन्तु एक नया 'भागवत-धर्म' जिसे पौराणिक धर्म भी कहते हैं, प्रगट हुआ। इस काल में संस्कृत-साहित्य का विकास खूब हुआ। महाकवि कालिदास को भी बहुत से विद्वान इसी काल का बताते हैं। राजा विक्रमादित्य के दरबार के 'नवरत्न' काफी प्रसिद्ध हैं। चरक, सुश्रुत, अमर-कोश, न्याय-दर्शन, वेदान्त-दर्शन, योग-दर्शन, मनुस्मृति ये सब इसी काल में रचित बताये जाते हैं।

मौर्य, शुंग, सातवाहन और गुप्त साम्राज्य के बाद उत्तर भारत में हर्षवर्धन का साम्राज्य सबसे प्रबल माना गया है। इसी के राज्य-काल में प्रसिद्ध चीनी यात्री 'युवान च्वांग' भारतवर्ष में आया था। कादंबरी और हर्ष-चरित नामक संस्कृत गद्य-काव्य का प्रसिद्ध रचियता बाणभट्ट भी इसी के समय में हुआ था। यह काल भी भारतीय समाज की समृद्धि का माना गया है।

भारत में अन्य जातियों का आगमन :—

चन्द्रगुप्त मौर्य से पहले ही यूनान के राजा अलक्सांदर (सिकन्दर) का हमला हुआ था। अलक्सांदर तो वापस चला गया किन्तु अपने जीते हुए प्रदेश पर शासन करने के लिए अपने यवन सरदारों को वह छोड़ता गया। युनानियों को भारतीय लोग यवन कहा करते थे। बाद में इन यवनों में अनेक प्रतापी राजा हुए। ये लोग भारतीय समाज में इस प्रकार घुल-मिल गये कि उनका पृथक अस्तित्व जाता रहा।

यवनों के बाद ई० पू० दूसरी सदी के आस-पास शक लोग भारत में आये। इनमें भी बड़े-बड़े प्रतापी राजा हुए। शकों में 'कनिष्क' नाम का राजा बहुत प्रसिद्ध है। कनिष्क बौद्ध था। इसने बौद्ध-धर्म का खूब प्रचार किया। ये शक लोग भी धीरे-धीरे

भारतीय समाज में पूरी तरह घुल-मिल गये।

शकों के बाद भारत में आने वाली जातियों में हूणों का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। ये हूण लोग बड़े ही क्रूर और लड़ाकू थे। इन्होंने भारतवर्ष के अनेक नगरों और ग्रामों को बरबाद कर दिया। छठी शताब्दी के आरम्भ में हूणों के राजा तोरमाण ने पंजाब से मालवा तक के प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। तोरमाण के बेटे मिहिरकुल ने स्यालकोट (पंजाब) में अपनी राजधानी बनाई थी। इस समय हूणों का अत्याचार और बढ़ गया। फिर यशोधर्मा नामक व्यक्ति ने इन हूणों को परास्त कर विक्रमादित्य की पदवी धारण की। यह अपने समय का बड़ा प्रतापी राजा हुआ। हूण लोग हिमालय के जंगलों में खदेड़ दिये गये, और जो शेष रहे वे भारतीय समाज में घुल-मिल गये।

भारत में इस्लाम का प्रवेश :—

सन् ७११ ई० में मुहम्मद-इब्न-कासिम नामक एक अरब सेनापति ने सिन्ध के ब्राह्मण राजा दाहिर को हराकर वहाँ अधिकार जमा लिया। इसके साथ ही इस्लाम ने भारत में प्रवेश किया। अरबों से पहले भारत में आने वाले विदेशियों का एक मात्र उद्देश्य था देश जीतना और राज्य करना। किन्तु अरबों के सामने देश-विजय के साथ एक बहुत बड़ा उद्देश्य था—अपने मजहब 'इस्लाम' का प्रचार करना भी। फलस्वरूप जहाँ भारतीयों और अरबों में युद्ध-क्षेत्र में सामना हुआ वहाँ सामाजिक क्षेत्र में हिन्दू-धर्म और मुस्लिम-धर्म में भी। यह संघर्ष सैकड़ों वर्षों तक चलता रहा। भारतवर्ष पर मुसलमानों के अनेक हमले होते रहे। उनके साम्राज्य कायम होते रहे। ये मुस्लिम विजेता भी भिन्न-भिन्न देशों से आये। कोई अरब से आया, कोई ईरान और

अफगानिस्तान से, और कोई मध्य एशिया से। ये सब-के-सब भारतीय समाज में मिलते गये। इस्लाम पर भी भारतीयता की छाप पड़ती गई, किन्तु न मुसलमान हिन्दू बन सके, न इस्लाम हिन्दू-धर्म में घुल-मिल सका। क्योंकि हिन्दू-धर्म की पाचन-शक्ति अब काफी कमजोर पड़ गई थी। दूसरे, इस्लाम यहाँ तलवार के जोर पर आया था, और तब तक उसका खूब प्रचार होता रहा जब तक कि उसके पीछे तलवार की ताकत मौजूद थी। भारतीय साहित्य और समाज को भी मुसलमानों ने बहुत कुछ प्रभावित किया है। भारतीय कला-कौशल पर भी इस्लाम की गहरी छाप पड़ी है।

भारत में ईसाई धर्म का आगमन :—

रोमन साम्राज्य के दिनों में भारत और रोम में बाकायदा व्यापार होता था। लेकिन इसके बाद भारत और युरोप का सम्बन्ध टूट गया। युरोप के लोग भारत को बिल्कुल भूल गये। लेकिन युरोप में १५ वीं सदी के शुरू में जब छापेखाने का चलन हुआ, और मार्कोपोलो की यात्रा-पुस्तक छापी गई तो वहाँ के लोगों का भारत की ओर ध्यान गया। लेकिन भारत पहुँचने का रास्ता किसी को मालूम नहीं था। भारत का ही पता लगाने के लिए इटली-निवासी कोलंबस ने १५ वीं सदी के अन्त में समुद्र की यात्रा शुरू की, परंतु वह जा पहुँचा अमेरिका में। फिर पुर्तगाली नाविक वास्को-द-गामा सन् १४९८ ई० में भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कालीकट (केरल देश) बन्दरगाह में आ पहुँचा। पुर्तगालियों ने व्यापार के लिए वहाँ कई कोठियाँ खोलीं और तब से युरोप और भारत का नये सिरे से सम्बन्ध शुरू हुआ। फिर तो युरोप की दूसरी जातियाँ भी व्यापार के लिए यहाँ दौड़ पड़ीं। डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज लोगों ने भी व्यापार करना शुरू किया।

इन व्यापारियों के साथ ईसाई पादरी भी आ पहुँचे। यद्यपि इतिहासज्ञों का कहना है कि भारतमें दूसरी-तीसरी शताब्दी से ही ईसाई-पादरियों का आगमन आरंभ हो चुका था, किंतु वहु-संख्या में उनका आगमन १५ वीं सदी के वाद से ही आरंभ हुआ। इन सवों ने वड़ी तत्परता और लगन से अपना धर्म-प्रचार शुरू किया। फिर वाद में सारे भारत पर अंग्रेजों का साम्राज्य कायम हो जाने पर ईसाई धर्म के प्रचार को काफी वल मिला। इस्लाम की तरह ही यहाँ का ईसाई-धर्म भी भारतीय वन गया अर्थात् भारतीय समाज का एक अंग वन गया। यद्यपि वह हिन्दू-धर्म में घुल-मिल न सका।

भारत में अंग्रेजी राज :—

भारत की अन्दरूनी फूट से फायदा उठाकर यूरोप के नवागंतुक व्यापारियों ने इस देश पर कब्जा जमाना चाहा। पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों, डचों और अंग्रेजों में इस वात के लिए होड़ मच गई। पर इस कार्य में सफलता मिली अंग्रेजों को। सन् १७५७ ई० में पलासी के मैदान में अंग्रेज सेनापति 'क्लाइव' ने वंगाल के नवाव 'सिराजुद्दौला' की सेना को हराकर भारतवर्ष में अंग्रेजी राज की नींव डाल दी। फिर तो सौ साल के अन्दर-अन्दर लगभग सारे भारत पर अंग्रेजों का पंजा मजवूती से चिपक गया। सन् १८५७ में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारतीयों ने एक भयानक विद्रोह कर दिया, जिसे अंग्रेजों ने वड़ी निर्दयता से कुचल डाला। फिर तो अंग्रेजी शासन की नींव यहाँ पाताल तक पहुँच गई। लेकिन भारतीयों के वर्षों के काफी आन्दोलन और प्रयत्न के वाद १५ अगस्त सन् १९४७ को भारतवर्ष से अंग्रेजी राज समाप्त हो गया।

अंग्रेजी राज का भारतीय समाज पर प्रभाव :—

अंग्रेजी शासन ने भारतीय समाज को हर क्षेत्र में प्रभावित किया। सन् १८५७ के विद्रोह से पहले ही सती-प्रथा जैसी निष्ठुर

रोमांचकारी प्रथा को कानून के जोर से दबा दिया गया। लार्ड मेकाले के प्रयत्न से भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का निर्णय किया गया। इसके लिए स्थान-स्थान पर स्कूल और कालेज खोले गये। यद्यपि मेकाले की इस योजना का उद्देश्य था अंग्रेजी राज के लिए भारतीय क्लर्क तैयार करना, किन्तु इस क्लर्क-कारखाने में ही कई महान भारतीय भी उत्पन्न हुए, जिन्होंने देश से अंग्रेजी शासन को समाप्त करने के प्रयत्न शुरू किये।

अंग्रेजी पढ़े लिखे भारतीयों का युरोप की साहित्यिक सम्पत्ति से परिचय प्रारंभ हुआ। उस साहित्य से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी भाषाओं में साहित्य-सृजन आरम्भ किया। जहाँ सामाजिक क्षेत्र में अनेक पुरानी रूढ़ियों की कड़ियाँ टूटनी शुरू हुईं, वहाँ साहित्यिक क्षेत्र में भी रूढ़ियों से पृथक होकर लोग अपनी रचनाओं में युग की भावनाओं और प्रवृत्तियों को चित्रित करने लगे। लोगों में चाह पैदा होने लगी कुछ नवीन, कुछ सुन्दर निर्माण करने की। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से भारत ने कुछ अच्छे वैज्ञानिक पैदा किये, अच्छे साहित्यिक, अच्छे देशभक्त, अच्छे राजनीतिज्ञ, अच्छे विद्वान भी। और अब तो अंग्रेजी राज का प्रभाव इतना गहरा पड़ा दिखाई दे रहा है कि देश के आजाद होने के बाद भी हर क्षेत्र में अंग्रेजियत की ही धूम मची हुई है। अंग्रेजियत का ही प्रभाव दिखाई दे रहा है।

लेकिन इस अंग्रेजी शिक्षा से यदि कई क्षेत्रों में कुछ लाभ हुआ, तो हानि भी कम नहीं हुई। अंग्रेजी शिक्षा का सबसे बड़ा दुष्परिणाम हुआ है सर्वधारण के चरित्र में पतन। हर जगह झूठ, दगा, फरेब और स्वार्थ का बोल-बाला। ये सारे दुर्गुण भारत में अंग्रेजों के आने से पहले बहुत ही कम थे। और देश के उन क्षेत्रों में आज भी बहुत कम हैं जहाँ अंग्रेजी शिक्षा का प्रकाश नहीं पहुँच सका है।

भारतीय समाज में पूँजीवाद का प्रवेश :—

अंग्रेजी राज से पहले यहाँ स्वदेशी (घरेलू) उद्योग-धन्धे खूब फूल-फल रहे थे। अंग्रेजों से पहले जितने भी विजेता यहाँ आए, वे सब यहाँ स्थायी रूप से बस गये थे। भारत उनका अपना देश बन चुका था। इसलिए देश की हर तरह की समृद्धि में ही उनकी अपनी समृद्धि थी। लेकिन अंग्रेज यहाँ केवल राज करने आये थे। और वे राज भी इसलिये कर रहे थे कि अंग्रेजी माल की खपत यहाँ बेरोक-टोक होती रहे। और यह तभी हो सकता था यदि यहाँ के स्वदेशी माल की पैदावार खत्म कर दी जाय। इसलिए यह आवश्यक था कि देशी उद्योग-धन्धों को जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक दिया जाय। अंग्रेजों ने यहाँ अपनी जड़ ज़माते ही यह सब कर दिखाया।

अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा तथा व्यापार को बढ़ाने के लिए भारत में रेलें बनाने का निश्चय किया। सर्व-प्रथम १८५३ ई० में बंबई में रेल की लाइन बनी और रेलें चलनी शुरू हुईं। फिर अंग्रेजी पूँजी लगाकर सारे देश में रेलों का जाल बिछा दिया गया। इसके साथ ही डाक और तार भी जारी किये गये। इससे अंग्रेजी पूँजीपतियों को खूब लाभ हुआ। भारत के अन्य उद्योग-धन्धों में भी पूँजी लगाने की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। १६ वीं सदी के अन्त में कलकत्ता में जूट की मिलें खुल गईं, और बम्बई तथा अहमदाबाद में कपड़े की मिलें भी। फिर बीसवीं सदी के शुरू में बंगाल और बिहार में कोयले खोदने का काम भी चालू हुआ। अब भारतीय व्यापारियों ने भी अंग्रेजी पूँजीपतियों के साथ हाथ बँटाना शुरू कर दिया। पारसी व्यापारी जमशेदजी ताता की ओर से बिहार में (जमशेदपुर-तातानगर) में लोहे और इस्पात का बहुत बड़ा कारखाना खोला गया।

बाद में कई भारतीय व्यापारी उद्योग-धन्धों की ओर आकृष्ट हुए। सीमेंट के कारखाने, चीनी की मिलें, चमड़े के कारखाने, ऊनी और सूती वस्त्रों की कई बड़ी मिलें खोली गईं। ताता, बिड़ला, डालमिया आदि पूँजीपतियों का सितारा चमक उठा। अब अंग्रेजी पूँजीपतियों और भारतीय पूँजीपतियों में प्रतिद्वन्द्विता चलने लगी। देश की राजनीति पर कब्जा जमाने के लिए अनेक कुचक्र भी इन पूँजीपतियों की ओर से रचे जाने लगे। व्यापक पैमाने पर पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तक-प्रकाशनों के द्वारा समाज के दिल और दिमाग पर कब्जा जमाने की साजिस भी रची जाने लगी। राष्ट्रीय आन्दोलन के अनेक नेताओं को खरीदने के अनेक प्रयत्न भी होने लगे। यह कोई छिपा रहस्य नहीं कि इन पूँजीपतियों के अनेक गुर्गों ने भारत की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था राष्ट्रीय कांग्रेस पर भी अधिकार जमाने की खूब कोशिश की। इस प्रकार भारत में पहले अंग्रेजी पूँजीवाद प्रविष्ट हुआ और फिर उसके सहयोग से देशी पूँजीवाद। और अब यह देशी पूँजीवाद नाना छल-छन्दों से इस प्रयत्न में लगा हुआ है कि भारत के स्वदेशी सरकार पर पूरी तरह कब्जा जमाकर देश के सारे साधनों का उपयोग पूँजीवाद के ही हित में किया जाय।

यह सच है कि भारतीय समाज में पूँजीवाद के प्रवेश से समाज को अनेक लाभ भी हुए। वैज्ञानिक स्तर पर उद्योग-धन्धों का जो कुछ प्रसार हुआ और हो रहा है, उसके लिये पूँजीवाद को श्रेय देना ही होगा। किन्तु, साथ ही पूँजीवाद के प्रसार से समाज में जो बुराइयाँ प्रविष्ट हो चुकी हैं उनकी ओर से आँखें भी बन्द नहीं की जा सकतीं। अन्य पूँजीवादी देशों की तरह आज भारत में भी बेकारी, भुखमरी, शोषण और भ्रष्टाचार का जो बोलबाला हो चला है उस ओर से कैसे कोई ईमानदार और समझदार उदासीन रह सकेगा ?

तो, इस प्रकार भारतीय समाज अब तक विकास की चार अवस्थाओं को देख चुका। अब से पाँच छः हजार वर्ष पहले तक, जब आर्य लोग सिन्धु उपत्यका में पहुँच चुके थे, आर्यों के समाज का स्वरूप 'आदिम साम्यवादी' रहा। उसके बाद वह 'दास्यवाद' में प्रविष्ट हुआ। महाभारत-युद्ध के समय तक वह दास्यवादी बना रहा। महाभारत-युद्ध के बाद वह 'सामंतवादी' अवस्था में प्रविष्ट हुआ। भारत में अंग्रेजी राज कायम होने तक सामंतवादी अवस्था कायम रही। और भारत के देशी रियासतों में तो यह अवस्था १६४७ तक ज्यों-की-त्यों कायम थी। अंग्रेजी राज में अंग्रेज व्यापारियों के द्वारा 'पूँजीवाद' भारतीय समाज में प्रविष्ट हुआ और अब स्वतन्त्र भारत में स्वतन्त्र रूपसे पूँजीवाद और पूँजीपतियों का सितारा चमक उठा है।

यह आशा करनी ही चाहिये कि पूँजीवाद यदि अपनी अच्छाइयों और अनुकूल परिस्थिति के कारण इस समाज में स्थान पा सका है, तो इसमें भी कोई संदेह नहीं कि अपनी बुराइयों तथा प्रतिकूल परिस्थिति के कारण वह विनष्ट भी होके रहेगा। और वह दिन सचमुच भारतीय समाज के लिये बड़ा ही शुभकारक होगा, जब वह पूँजीवाद के पाश से मुक्त होकर नया जन्म और नया सुन्दर रूप ग्रहण करेगा।